मनोरंजन पुस्तकमाला-२८

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

प्रकाशक

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

कृषि-कौमुदी

लेखक

दुर्गाप्रसाद सिंह एल० ए-जी०

१९१९

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस में मुद्रित।

मूल्य १)

श्रीगणेशाय नमः ।

पूर्वाभास ।

कृषि इस पुण्यभूमि भारतवर्ष का प्रधान व्यवसाय सहस्रों वर्ष से चला आता है। इस पुनीत व्यवसाय से करोड़ों जीवों का पालन पोषण होता है जिसमें विद्वान, राजा, रंक, चतुर, मूर्ख सभी शामिल हैं। भारतवर्ष की कृषि की अवस्था किसी समय उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँची हुई थी जिसके चिन्ह अभी तक वर्तमान हैं। धरती को साफ करना, उसको कई बार जोतना, अच्छा बीज बोना, कृषक अभी तक भूल नहीं गए हैं।

पैरी पर पशुओं द्वारा भूसा और दाना अलग करना, ओसाई, निराई तथा पानी में सनई या पटुए को भिगो कर उसके डाँठ को पानी पर पीट कर सन सरल रीति से अलग कर लेने की रीतियां आजतक विद्यमान हैं। इन सुगम और सरल अनेकानेक रीतियों को बिना विद्या और गुन के एक दिन में किसी ने स्थापित न कर लिया होगा। इन मंत्रों के सिद्ध करने में बहुत समय लगा होगा क्योंकि आज दिन लों दुःखी दरिद्र धनी सभी कृषक इनके आश्रित देखे जाते हैं।

परंतु समय तथा आवश्यकताओं में अंतर पड़ने से यदि ऐसे लोग आजकल के कृषि व्यवसाय में उन्नति के प्रयोगों को हुमाईंकी, और आडंबरपूर्ण कहें तथा मशीनों के

प्रयोग के संबध में शंका प्रगट करे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। समय के परिवर्तन से प्राकृतिक, राजकीय और व्यापारी अवस्था में घोर अंतर पड़ जाता है।

हमारे यहां के लोग प्रायः गाँव में रहकर खेती करते चले आए हैं। प्रति ग्राम के पुनीत स्वर्गतुल्य जीवन वृतांत की कथा विस्तीर्ण है। रही सही शिक्षा-रहित यादगार भी इस पुण्य भूमि के उच्च आदर्श की याद दिलाती है। हर गाँव की आवश्यकता के अनुसार जो कुछ वहां उत्पन्न होता था उससे लोग अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण करते थे। करीब करीब हर एक गाँव अपनी आवश्यकता पूर्ण कर लेता और संतुष्ट रहता था। अब हर गाँव में नाना प्रकार की वस्तुएँ जो उस गाँव में उत्पन्न नहीं होती हैं, आती हैं और गाँव अपनी आवश्यकता से बची वस्तु बाहर भेजता है। आवागमन के सुभीतों की बरकत से काल पीड़ित क्षेत्रों में अनाज और पशुभोजन घास तथा भूसा पहुँचाया जाता है।

परंतु अनेक कारणों से कृषि की बहुत कुछ अवनति हो गई है तथा पशुओं की अवस्था संतोषजनक नहीं है। साथ ही कृषि विभाग के उपयोगी अनुभवों ने सिद्ध कर दिया है कि इस देश में कृषि कार्य्य और कृषि विद्या के प्रचार का बड़ा क्षेत्र है। विद्वान्, दूरदर्शी और लोकहितैषी सज्जनों ने इस उपयोगी और पुनीत कार्य्य की महत्ता विचार कर सरकार का हाथ बटाया है और इस ओर वे दत्तचित हुए हैं

प्रजा को बाधित करना, अर्थात् पीड़ा देना, उन्नति नहीं है। उनको इस विद्या का चाव उत्पन्न करा के इसकी ओर प्रवृत्ति

कराना, उनमें परिश्रम का अभ्यास करा के, उनको उचित रीति से और उचित समय पर अपना कार्य्य करने को प्रेरित करना जिससे उनको अपने परिश्रम का फल प्राप्त हो, उन्नति का मूल मंत्र है, मोकदमें बाजी की बुरा आदतें, भूलभूलैयां की सी निविड़ पेचदार कार्रवाइयां, षडयंत्र, घर की बरबादी, विद्या का अभाव, लाग डाँट, ऊपरा चढ़ी में समय का नष्ट करना, शराब और गांजा इत्यादि तथा उनके सहायक दुर्व्यसन, शौकीनी के निविड़ और नाजुक रास्ते पर अपनी शुद्ध और कष्ट से प्राप्त की हुई सम्पत्ति की आहुति देना, कृषि पर कुठारघात करना है। इस ओर से शुद्ध पथ पर आकर परिश्रम से शुद्ध जीवन निर्वाह करना कृषि में उन्नति का मार्ग है।

शुद्ध और पुनीत नीअत कृषि में अत्यंत बरकत देती है। इससे ईश्वर पर विश्वास करके अपने कर्तव्य से मुँह न मोड़ना चाहिए। समय पर संतोष और परिश्रम से अपना कार्य्य करना उचित है।

शिक्षित समाज के महानुभाव प्रायः कृषि की ओर से नाक भौं सिकोड़ना अपनी मर्य्यादा समझते हैं। इसकी ओर नजर करना वे अपनी मानहानि ही समझते हैं। विद्याविहीन कृषक से बात करने में उनका सिर दर्द करता है, उन्हें चक्कर आने लगता है, यदि काम पड़ने पर पीछा छूटा तो 'जान बची लाखों पाए' की हालत होती है। शिक्षित और अशिक्षित एक दूसरे से तने और खिंचे रहते हैं। कृषि का रोजगार मोटा

और भद्दा कह कर उसका तिरस्कार किया जाता है। इन० आशास्तंभों से निराशा! कृषि की कैसे उन्नति हो!

अनुभव ने पहले से और पुनः इस कठिन युद्ध ने इस पुनीत और आवश्यक व्यवसाय की महत्ता स्थापित करदी है।

पूर्व समय से प्रायः लोग गाँव इलाका खरीदने में अपना रुपया लगाना लाभदायक समझते आए हैं। परंतु उसका प्रबंध उपरोक्त कारणों और अवस्थाओं में कारिंदों की अवस्था के अनुसार चला आया है। अपने अज्ञान से केवल इलाके की आमदनी की तादाद के उसकी पूरी हालत नहीं मालूम नहीं होती और न तो उसमें विशेष दिलचस्पी ली जाती है।

कृषि की उन्नति इन अवस्थाओं में कृषि के उचित ज्ञान द्वारा ही हो सकती है। यह ज्ञान पुस्तक द्वारा नहीं आ सकता। समय समय पर खेतों में जाना होगा। नेत्रों से देखना होगा कि किस समय कौन सा काम कैसे और कब किया जाता है।

यह मूल मंत्र हृदयपट पर स्वर्णाक्षरों में अंकित रहे कि 'हर काम के करने की रीति होती है'। यह रीति विद्या द्वारा प्राप्त होती है। छोटे से छोटे काम के करने की विद्या होती है। काम की विद्या सब लोग नहीं रखते। जो विद्या विहीन होता है वह धोका खाता है। रस्सी बनाना, रस्सी से पगहा बनाना, गंडास चलाना इत्यादि सरल काम है परंतु सब लोग इसको नहीं कर सकते! उन्हें क्यों करना नहीं आता!! यदि किसी से यह करवाना हो तो, जब स्वयं ही नहीं जानते उसे सिखलावें कैसे!!

झाड़ू देना एक सरल काम है। एक मनुष्य से झाड़ू देने

के लिये कहा गया। उसने झाड़ू दिया। परंतु उसको झाड़ू देने नहीं आता था ! झाड़ू दिया पर काम ठीक न कर सका, फर्श पर बहुत सी गर्द रह गई, बीच बीच में जहां झाड़ू बराबर नहीं पड़ा था गर्द देख कर बुरा मालूम होता था !! इसी काम को एक जानकार आदमी से कराया गया। उसने कितनी सफाई, सरलता और जल्दी से बिना परिश्रम फर्श साफ कर दिया !!!

केवल पुस्तक पढ़ना और गढ़ी, छीली, साफ सुथरी भाषा लिख कर उच्च विद्या प्रगट करना विद्या नहीं है, और न इसी पर विद्या खतम हो जाती है। झाड़ू देना, जूता सीना, भोजन बनाना, इत्यादि भी विद्या के आश्रित हैं। इन उपयोगी कामों का जिन्हें हमें हर वक्त काम पड़ता है भली भांति सीखना, न आवे तो पुनः सीखना, फिर फिर सीखना उपयोगी विद्या है, जो समय पर गुणकारी होती है। हम रोज उस काम को छोटा समझ कर न करें अथवा उसे हमको करने की आवश्यकता उससे महान् कामों के आगे न पड़े, परंतु इन कामों को जानना और हर व्यक्ति को जिसे ये काम पड़े उसे अच्छी तरह सिखाना हमारा कर्तव्य है। उठते बैठते जो काम हम देखते हैं उन पर हमें बिचार करना चाहिए कि कितने आदमी उस काम को जानते हैं और अच्छी तरह कर सकते हैं। यह विद्या प्रचार बिना स्कूल के ही होता है और बड़ा गुणकारी है। ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और हर प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है।

कृषि की उन्नति में लोग प्रायः अपने तत्कालीन लाभ ही

को उन्नति समझ कर उसको तृष्णा के साथ ढूँढ़ते हैं। अधिक परिश्रम ही से केवल यह लाभ नहीं मिल जाता। उसकी रीति और उस काम के करने की विद्या जब तक प्राप्त नहीं कर ली जाती इच्छित फल नहीं प्राप्त होता। विचारवान् और विद्यावान् पुरुष अपने नेत्रों से देखता रहता है और सोच विचार से उस काम के करने की रीति निकाल लेता है।

कृषि की उन्नति में कृषि का प्रबंध और उसकी रीति का भी पता रखना चाहिए।

उदाहरणार्थ एक रियासत को लीजिए। यह देखना चाहिए कि यहां के कृषक अच्छी रीति के अनुसार पूर्ण परिश्रम से कृषि करते हैं? आलसी तो नहीं हैं? धनाभाव से कृषि के पात्र, बीज और बैल, तथा मजदूरी की मदद का अभाव तो नहीं है? पानी मिलता है या नहीं? यदि ये बातें हैं तो प्रबंध में तो खराबी नहीं है, रेआया मोकदमेबाजी तो नहीं करती, हिसाब किताब सही रखा जाता है, रिआया पीड़ित तो नहीं है। यदि कृषि का ज्ञान होते हुए स्वयं मौके पर जाकर कोई साधारण बुद्धि का व्यक्ति इनके कार्य्य और कारणों के प्रश्न करेगा तो उसके उत्तर मिलने के लिये उसे अधिक न ठहरना पड़ेगा। बहुत सी बातें जो दूर से विचित्र पेचीदा, मालूम होती है वे स्थान पर सरल और साधारण प्रतीत होती हैं।

इस पुस्तक में कृषि करने की साधारण रीतियों का जो इस प्रांत में व्यवहृत हो रही हैं दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की गई है।

पाठक इन बातों को अपने सफर में तथा अपने पास के गाँव में देख कर अनुभव प्राप्त करके अपने बंधुओं के उत्साह को बढ़ावेंगे। उनको ज्ञात होगा कि किस कष्ट से मिट्टी से अन्न वस्त्र उत्पन्न होते हैं। सजे हुए कमरों में अथवा खस की टट्टियों तक में खेतों और उनकी उपज से संबंध नहीं टूटता। अधिक और अधिक ज्ञान से हम एक दूसरे के सुख को बढ़ा सकते हैं।

कृषि से अनेक विद्याओं का संबंध तथा उनके द्वारा कार्य्य का वर्णन यथास्थान पर किया गया है। इसके पूर्व हमको याद रखना चाहिए कि मानसिक और व्यावहारिक विद्या का काम जीवन यात्रा में हर जगह पड़ता है। साधारण कृषक इसको नहीं जानते और न जान सकते हैं। अच्छी तरह काम की पतवार को चलाने के लिये इनका जानना लाभदायक होता है। विद्वान और परिश्रमी परंतु उत्साहहीन तथा मूर्ख और डरपोक व्यक्ति अधिक काम नहीं कर सकता। कार्य्यक्षेत्र में कार्य्य-कुशल और साहसी पुरुष का काम पड़ता है। जिसका जीवन शुद्ध है, जो पुनीत कार्य्य का व्यवसायी है उसे किसी का क्या डर है। बड़ों के बीच में बैठने और यात्रा करके जगह जगह कार्य्यों को देखने और उनपर विचार करने से कोई व्यक्ति कार्य्य-कुशल हो सकता है। बाजार का आदमी गांव के रहने वालों से अधिक जानता है, क्योंकि वह हर प्रकार के पुरुषों से संबंध रखता है। अल्पज्ञानी से अज्ञान अच्छा होता है। विचारों में प्रौढ़ता तथा ज्ञान की अधिकता द्वारा मनुष्य उच्चपद को प्राप्त होता है। आज दिन हर गाँव या उसके आस पास ऐसे

व्यक्ति पाए जाते हैं जिनके शुद्ध जीवन और कार्य्य-कुशलता द्वारा अनेक व्यक्तियों को फायदा पहुँचता है। उनमें अभिमान का लेश नहीं, वे सरल रीति से काम को काम के हेतु करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

पूर्व पीढ़ी के ऐसे सरल शुद्ध आचरणयुक्त व्यक्तियों के सीमाबद्ध ज्ञान के आगे नवीन रोशनी के लोग अपने ज्ञान से परिपूर्ण हो कर अधिक उन्नति कर सकते हैं।

विनीत
दुर्गाप्रसाद सिंह।

कृषि-कौमुदी।

पहला परिच्छेद।

कृषि।

कृषि पर विचार करने से ज्ञात होता है कि जब से मनुष्य ने सभ्यता की ओर धीरे धीरे उन्नति करना प्रारंभ किया तभी से उसने पहले पहल अपना ध्यान कृषि की ओर दिया। आदि में वह जंगल के कंद मूल फल ही पर अपना जीवन निर्वाह किया करता था, परंतु उनका मिलना सब समय निश्चित न था। समय तथा स्थान के अनुकूल होने पर उसे वे प्राप्त होते थे। इस कारण उसने पशु पालन पर अवलंबन किया। कुछ समय व्यतीत होने पर उसे कृषि-कर्म्म के तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त हुआ और राबिनसन क्रूसो के दानों के समान उसने अपने शस्यों को बोना और बढ़ाना आरंभ किया। उसने शिकार के अनिश्चित कर्म्म को भी छोड़ कर कृषि की ओर अधिक ध्यान दिया। कुछ समय तक वह पत्थर के औजारों पर आश्रित रह कर कृषि करता रहा पर जब धातु के औजार बने तब उसने पत्थर के औजारों को त्याग कर उनसे सहायता ली। क्रमशः धातु के

औजारों और कृषि संबंधी विचारों की उन्नति होती गई, यहां तक कि आज बिजली और भाप की सहायता अनेक कृषि कर्म्मों में ली जाती है, उनसे पानी उठाया जाता है, हल चलाए जाते हैं, दाना माड़ा जाता है, शस्य काटे जाते हैं इत्यादि। कृषि की पैदावार निश्चित करने के लिये कृषि के तत्त्वों पर विचार करके पौधों की आवश्यकता के अनुसार खादों का प्रयोग किया जाता है। जहां एक पत्ती पैदा होती थी वहां दो पत्ती पैदा करने का प्रयत्न किया जाता है। जहां दस मन पैदावार थी वहां बीस मन की आशा की जाती है। भारतवर्ष में सब से प्राचीन दशा की रीति पर कृषि करनेवाले मध्यदेश के असभ्य गोंडों तथा भीलों की प्रथाओं से लेकर प्रयोगालयों (Experimental Farms) में अथवा शिक्षित जमींदारों के यहां उन्नत रीति पर खेती की रीतियों तक की प्रथाएँ देखने में आती हैं। हर साल बहुत सी ज़मीन जोत में बढ़ती चली जाती हैं और अधिक शस्य उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है।

कृषि-कर्म्म से आशय पृथिवी को जोतना है। परंतु साधारण रीति से कृषि-कर्म्म में उन सब कर्म्मों की भी गणना है जिनसे पृथिवी से वनस्पति तथा पशुओं से पशु-पदार्थ अर्थात् घी, दूध, मक्खन, ऊन इत्यादि उत्पन्न हो सकें। इसमें खेत संबंधी तथा पशु-पालन संबंधी अनेक क्रियाएँ सम्मिलित हैं। भोजन के पदार्थ, वस्त्र के पदार्थ, रंग इत्यादि, पौधों तथा पशुओं के द्वारा प्राप्त होते हैं। पौधे पृथिवी पर उत्पन्न होते हैं और पशु उनके भोजन पर आश्रित रहते हैं।

गेहूँ, चावल, रूई, नील, शक्कर, पौधों से प्राप्त होते हैं। दूध, मक्खन, घी, रेशम, ऊन पशुओं से प्राप्त होते हैं।

भारतवर्ष एक कृषिप्रधान देश है। यहां दस में छः आदमी केवल कृषि पर आश्रित हैं; बाकी चार में से कुछ व्यवसायी, दस्तकारी तथा व्यापार और वाणिज्य करनेवाले हैं; एक उनमें से पढ़ा लिखा और अनस्थिर रोजगार नौकरी चाकरी पर आश्रित है। यहां कुछ जातियाँ जो कि कृषि में निपुण समझी जाती हैं, काछी कोयरी, खटिक इत्यादि हैं। उच्च वर्णवालों की कृषि के प्रबंध का रंग मजदूरों के मिलने न मिलने के अनुसार बदलता रहता है। कुछ जातियाँ पशुपालन में दक्ष हैं, जैसे गऊ और भैंस अहीर या ग्वाल लोग पालते हैं और उनकी सेवा टहल करते हैं, दूध बेचते हैं तथा घी और मक्खन निकालते हैं। कृषि करनेवालों को काश्तकार, कृषक अथवा रैयत कहते हैं। कानूनी विभाग के अनुसार जमींदार और काश्तकार स्वत्व में दो श्रेणियों में समझे जाते हैं। यदि व्यवसाय एक है, तो व्यवसाय के अनुसार उनमें कोई भेद नहीं। वर्ण-व्यवस्था के भेद के अनुसार कृषि करने से कृषि की उन्नति पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। उच्च जातियाँ कृषि की मजदूरी बढ़ने से बड़ी बुरी दशा में पड़ जाती हैं। दस्तकारी की मजदूरी और कृषक की मजदूरी के मुकाबले का प्रश्न कृषि-कर्म के सामने उपस्थित है जो संपत्ति शास्त्र का एक गूढ़ विषय है।

यों तो आधुनिक विज्ञान की वृद्धि की सहायता से मनुष्य सब प्रकार की वनस्पति उनकी आवश्यकताएँ कृत्रिम रूप से

एकत्रित करके उत्पन्न कर सकते हैं परंतु कृषि का मुख्य कर्तव्य पृथिवी से शस्य उत्पन्न करना है। कृषक का अभिप्राय सर्वदा यही रहता है कि मेरी धरती का बल कम न होने पावे और मैं बराबर फसल पैदा कर सकूँ जिससे कुछ लाभ हो। कृषक के व्यवसाय को कृषि-कर्म कहते हैं। किसी समय भारतवर्ष में यह एक अत्यंत श्रेष्ठ कर्म समझा जाता था और उसके अनुसार एक कहावत भी प्रचलित है " उत्तम खेती मध्यम बान। निकृष्ट चाकरी, भीख निदान"। कृषि के आश्रित ज्ञानी, मूढ़, पंडित, धनी, दरिद्र, राजा, प्रजा सभी हैं और यह एक अत्यंत मासूम रोजगार है। कृषि अमेरिका आदि देशों में जहां कि शिक्षा और धन की अधिकता है अब भी उसी आदर की दृष्टि से देखी जाती है जैसा कि उसका आदर पहले भारतवर्ष में होता था, जब कि यहां भी धन और विद्या का बाहुल्य था।

कृषिकार साथ ही साथ अपनी आवश्यकता के अनुसार पशुपालन भी करता है। बाजारों के निकट कस्बों और शहरों में कृषक तरकारियों की खेती से अधिक लाभ उठा सकता है। इसी प्रकार वह दूध के रोजगार से भी अधिक लाभ की आशा कर सकता है। बाग लगाना कृषि के अंतर्गत है। उसमें पेड़ों की अधिक सेवा जतन की आवश्यकता पड़ती है। फूल के बाग से मालियों का संबंध है। बिक्री के अनुसार फूल से अधिक लाभ होता है। फल का व्यवसाय करके कृषक अपनी आमदनी बढ़ा सकता है, जैसे अमरूद, नीबू, नारंगी, शरीफा इत्यादि। बड़े वृक्ष जैसे आम, जामुन,

, शीशम, बबूल, फल तथा लकड़ी के काम में आते हैं। कुछ काल की सेवा के बाद वे दीर्घ काल तक लाभ पहुँचा सकते हैं। भेड़ बकरी से, पालने की विधि के अनुसार, लाभ की आकांक्षा की जाती है।

जो कर्म साधारण कृषक करता है अच्छा जमींदार उसे अधिक सुगमता तथा बड़े विस्तार से करके अधिक लाभ उठा सकता है। वह अपने कृषक की दशा सुधारने, उसे अच्छा बीज पहुँचाने, उसकी जमीन की हैसियत बनाने में सहायता दे सकता है। जमींदारों के कृषि-विद्या के तत्वों पर ध्यान देने से उनका बहुत लाभ हो सकता है। उनकी जमीन का अच्छा प्रबंध हो सकता है, उनकी आमदनी बढ़ सकती है, अच्छी फसलें उत्पन्न हो सकती हैं, पैदावार अच्छी हो सकती है, नवीन और मूल्यवान फसलों का चलन हो सकता है, जिनसे लाभ और सुगमता की वृद्धि हो सकती है।

कृषि-विद्या के अंतर्गत संसार की बहुत सी विद्याएँ हैं, जिनसे कृषक को काम पड़ता है। उसे रसायन से पृथिवी और शस्य संबंधी तत्वों का ज्ञान होता है। वनस्पति और पशु-शास्त्र से उसे वनस्पति और पशु की बनावट, उत्पत्ति, बाढ़, रहन सहन इत्यादि उनके संबंधी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। इंजिनीयरी विद्या (Engineering) से कल और पुर्जों का ज्ञान होता है। सर्वे (Survey) से पृथिवी की नाप और काट का काम चलता है। मिटीरीआलोजी (Meteorology) से आकाश की घटनाओं—आंधी पानी का विवरण मालूम होता है। पशु और वनस्पति रोग शास्त्र

(Plant Diseases and Remedy) द्वारा उनके रोग, चिकित्सा और निदान का पता चलता है। कीटपतंगशास्त्र, भौतिक शास्त्र (Physics), गणित (Mathematics), रेखागणित (Geometry), हिसाब किताब, इत्यादि अनेक उपयोगी विद्याएँ कृषक को अत्यंत उपयोगी होती हैं।

यह हमें भली भांति विचार करना उचित है कि कृषि विज्ञान शास्त्र और जमींदारी का प्रबंध—ये दो अलग अलग विषय हैं। कृषि विज्ञान में कृषि किस प्रकार उत्तम रीति से की जाती है अथवा उसका आदर्श रूप इस समय क्या है, इसके वर्णन करने की चेष्टा की गई है। जमींदारी का प्रबंध एक अन्य गूढ़ विषय है। यदि कृषि-विज्ञान का अच्छे से अच्छा विद्वान प्रबंध में दक्ष नहीं है तो उसके व्यवसाय के लाभ-दायक होने में कसर रह जाती है।

बुरे प्रबंध से आय-व्यय का हिसाब नहीं रहता, आपस में लड़ाई झगड़ा हो जाता है, मुकद्दमेबाज़ी होने लगती है, शुरू किए हुए काम अधूरे अथवा बेकाम या अल्पायु होते हैं। कृषक को साधारण ज्ञान की वृद्धि से तथा जगह जगह घूमने वा यात्रा करने से इस काम में दक्षता प्राप्त हो सकती है।

दूसरा परिच्छेद।

खेतों की परिचर्या।

अच्छे या बुरे खेतों के अनुसार कृषिकार को हानि या लाभ होता है। यदि खेत उपजाऊ है, पानी निकट है, खेत समतल है, पानी का निकास उत्तम है, उसमें कंकड़ पत्थर नहीं हैं, कांस या पेड़ों की जड़ें और गहरी जड़ोंवाले पौधे नहीं हैं, पेड़ों की साया नहीं पड़ती है, रेह जमा नहीं है, जलवायु अच्छी है, सिंचाई के लिये पानी मौजूद है, तो दैव की कृपा से विधिवत् खेती करने से खेती की पैदावार अच्छी हो सकती है तथा किसान और उसके पशु खुशहाल रह सकते हैं।

कृषि के प्रतिकूल जो जो बाधाएँ पड़ती हैं और जिनका निवारण हो सकता है, यथाशक्ति उनको हटाना चाहिए। इन बाधाओं के हटाने में यद्यपि व्यय और परिश्रम पड़ता है परंतु ऐसा करने से खेत और अच्छी कृषि की सामग्रियाँ अनुकूल हो जाती हैं और धीरे धीरे लाभ से खर्चा पूरा हो जाता है।

१—खेतों का बनाना।

खेतों का स्थल—यदि धरती बिलकुल ढालू है या बिलकुल खड़ी है, तो उस पर कृषि नहीं हो सकती। यदि ढाल काबू में लाने योग्य है तो सुविधा के अनुसार छज्जों अर्थात्
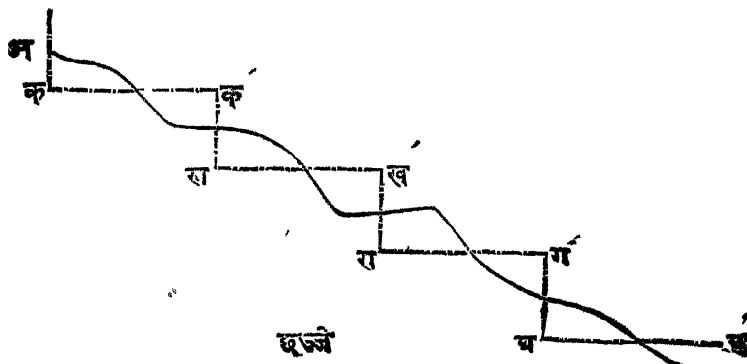
सीढ़ियों में काटने से खेती करने में बड़ी सुविधा होती है। कुछ समय के बाद मेहनत और दाम उबर सकते हैं। ढालू खेत पर पानी नहीं ठहरता, हल चलाने और पाटा देने तथा क्यारी बनाने में परिश्रम करना और कष्ट उठाना पड़ता है। यह परिश्रम और कष्ट अधिक या कम ढाल के अनुसार अधिक या कम होता है। ढाल को छांट कर उभरी हुई धरती से खाली धरती को पाट देना चाहिए और एक दो या तीन जैसा अवसर हो छज्जे या सीढ़ियाँ चौड़ाई में हल या पाटा चलाने की सुविधा के अनुसार बनानी चाहिएँ। इसमें दो या तीन समतल सीढ़ियों की धरती मिल जायगी। समतल धरती पर कृषि करना अच्छा होता है। पानी यदि ऊपर से लगता है तो बहुत सुभीता है, और यदि नीचे से ऊपर चढ़ाना है तो ढालू स्थल की अपेक्षा समतल को पानी से अधिक लाभ प्राप्त होता है और पानी ऊपर चढ़ाने का फल प्राप्त हो जाता है।

खेतों में गढ़हों के, ऊभड़-खाभड़ धरती के, या बीच में छोटे छोटे मिट्टी के ढेरों के होने से कृषि-कर्म्म अच्छी तरह नहीं होता। इनसे कृषि संबंधी औजार पर जोर पड़ता है और वे टूट जाते या खराब हो जाते हैं। नीची ऊँची धरती की अपेक्षा समतल धरती पर कृषि करना लाभदायक होता है। समतल धरती पर जोताई, बोआई, सिंचाई, कटाई, इत्यादि कृषि-कर्म्मों में सुविधा होती है, पौधों को खूराक बराबर मिलती है और उनकी देख-भाल में आसानी होती है। इस प्रकार खेती के लिये चौरस धरती चाहिए। चौरस धरती पर आवश्यकतानुसार एक एक या दो दो बीघे के खेत बनाने चाहिएँ। खेतों के ऊपर गाड़ियों के वास्ते मेंड बनाने की आवश्यकता नहीं। समतल खेत में शस्य काटने पर गाड़ी आ सकती है। सारी धरती जोत में लानी चाहिए।

कंकड़ पत्थर इत्यादि—पहाड़ी जिलों की धरती में या जहां पर कोई मकान गिर पड़ा हो या भीटा रहा हो और धरती नई तोड़ी गई हो ऐसे स्थानों के खेतों में कंकड़, पत्थर, बजरी, ईंट इत्यादि वस्तुएँ मिलती हैं। इनसे खेतों की हैसियत खराब हो जाती है, हल, फावड़ा, या कृषि के अन्य औजार खराब हो जाते हैं, जोताई तथा खोदाई में अधिक परिश्रम और व्यय पड़ता है। कहीं कहीं कंकड़ों के रहने से नीचे की धरती पोली रहती है। ऊपर से जब भव (दरार) फूटती है तो उसमें सिंचाई का जल भरता है और पानी का नुकसान होता है। धरती में कंकड़ पत्थर होने से पौधों की

जड़ों को फैलने और भोजन प्राप्त करने में कठिनाई पड़ती है, और वे नहीं पनपते।

कंकड़ पत्थर यदि अधिक हैं और उन्हें हटाने में अधिक व्यय लगता हो तो उन्हें पहले खेतों के किनारे एकत्रित करना चाहिए जिससे जब तक वे हटाए न जायँ उनसे चारदीवारी का काम निकले। यदि थोड़े बहुत छोटे छोटे कंकड़ हैं तो उनसे खेतों को हानि नहीं पहुँच सकती, क्योंकि इनसे पृथिवी खुल जाती है और उसमें हवा जाने का अच्छा सुभीता हो जाता है और कुछ कंकड़ों और ठीकरों से पौधों को भोजन भी प्राप्त होता है।

जड़—नई धरती का खेती के वास्ते तैयार करना एक बहुमूल्य कार्य है। नई धरती जब साफ और समतल नहीं होती तो उस पर खेती करने से लाभ का होना निश्चय नहीं होता। इसके लिये जंगलों तथा झाड़ियों का काटना और बड़े पेड़ों का गिराना आवश्यक हो जाता है। परंतु उससे भी अधिक कठिन और मूल्यवान काम उनकी जड़ों का निकालना है। जड़ें बहुत दूर तक धरती में फैली हुई रहती हैं। उनसे कृषि के औजारों के चलने में बाधा पड़ती है तथा बहुत सा भोजन पदार्थ व्यर्थ नष्ट हो जाता है। पहाड़ों पर चाय और कहवा की खेती के लिये खेत बनाने में प्रायः इस कठिनाई का अधिक सामना करना पड़ता है, या मैदानों में उस समय जब कि बाग़ खेती के काम में लाए जाते हैं, अथवा जब खेतों के किनारे के पेड़ निकट होते हैं और बढ़ जाते हैं तब उस कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इनके हटाने में यद्यपि व्यय अधिक पड़ता

है, तथापि ऐसा कर देने से कृषि-कर्म निश्चित हो जाता है। कुछ समय में लाभ से व्यय पूरा हो जाता है।

हानिकारक पौधे, जिनकी जड़ें धरती के भीतर बहुत गहराई तक चली जाती हैं, अपना भोजन आसपास से खींचते हैं। कुछ पौधे जैसे कांस, बांसवारी प्रभृति बड़े वेग से बढ़ते हैं और खेतों पर अपना पूरा अधिकार जमा लेते हैं। उन्हें अकसर लोग ऊपर से काट कर फेंक देते हैं। पेड़ और पत्तियाँ तो अलग हो जाती हैं, पर जड़ धरती के भीतर मौजूद ही रह जाती है, जिससे थोड़े काल में पौधा फिर बढ़ जाता है। जहां तक जल्द मुमकिन हो उन्हें जड़ मूल से खोद कर निकाल बाहर कर देना चाहिए क्योंकि ऐसे हानिकारक पदार्थ को बढ़ने देना उचित नहीं है।

ऐसे पौधों में कांस एक घास है, जिसकी जड़ें बड़ी शीघ्रता से धरती में बढ़ती हैं। जब कभी यह किसी खेत में देख पड़े उसी दम उसे जड़ मूल से निकाल देना चाहिए, क्योंकि यदि इसका रुकाव नहीं किया जायगा तो कुछ समय में यह खेत को छेंक लेगी और साधारण कृषिकार को इसे निकालना यदि असंभव नहीं तो अत्यंत दुस्तर प्रतीत होगा। जिन खर पतवारों की जड़ें धरती में गहराई तक गई हैं उनको प्राय: फावड़े, कुदाल, रंबे या खुर्पी से निकालते हैं। इस काम के लिये नवीन कई प्रकार के हल और कलें भी बनाई गई हैं जिनके प्रयोग से मेहनत की बचत होती है।

रेह—रसायन-तत्त्व-वेत्ताओं ने पृथिवी की जाँच से यह सिद्ध कर दिया है कि धरती में बहुत से खार हैं, जो

पानी में घुल जाते हैं। इनमें से बहुत से खार पौधों के भोजन के आवश्यक अंश हैं। उनके न रहने से पौधों को पूर्ण भोजन नहीं प्राप्त होता। जिस खार की पौधे को जितनी आवश्यकता होती है यदि वह उन्हें न प्राप्त हो तो पौधे नहीं पनपते या मर जाते हैं और पृथिवी अनुपजाऊ हो जाती है। इन खारों का आवश्यक प्रमाण में होना लाभकारी होता है, पर इनका या इनमें से किसी एक का आवश्यकता से अधिक प्रमाण में होना हानिकारक है जिसके कारण से पौधे न तो जमते और न बढ़ते हैं। इनमें से सोड़ा मुख्य है। यदि १००० में एक अंश से अधिक सोडा होता है तो वह पृथिवी के लिये हानिकारक होता है।

रेह इसी प्रकार के कई खारों के मिश्रण से बनती है, जिसके कारण बहुतसी धरती अनुपजाऊ हो जाती है। संपूर्ण भारतवर्ष में एक बहुत बड़ा क्षेत्रफल रेह के कारण कृषि के अयोग्य पड़ा हुआ है। ऐसी धरतियों को कृषि के योग्य बनाना एक महत्वपूर्ण कार्य है और यह गहन समस्या कृषि-विज्ञान-वेत्ताओं के सामने उपस्थित है जिस पर वे विचार कर रहे हैं।

कुछ विद्वानों ने इसके विषय में प्रयोग किया है जिससे सिद्ध होता है कि यदि उस पृथिवी की जिस पर रेह प्रभृति हानिकारक खार मौजूद हैं, रासायनिक मीमांसा कर ली जाय, जिससे यह ज्ञात हो जाय कि इस धरती में कितनी रेह है, अथवा अन्य खार के प्रमाण क्या हैं; आस पास की हालतों पर विचार कर लिया जाय, कि कोई नदी नाला या और

पानी का कोई निकास है या नहीं; कई जमींदार लोग एक मत हो कर सहायता पर तत्पर हों और काफी धन एकत्रित कर लिया जाय, तो रेह की धरती को उर्वरा करने की यह रीति है, कि धरती को पानी से भर देवे और पानी का निकास किसी नाले या नदी द्वारा करे। इस प्रकार धरती की कुल रेह धुल कर पानी के द्वारा बह जायगी और बार बार धोते धोते दस पंद्रह वर्ष में धरती धुल जायगी और रेह निकल जाने पर धरती कृषि के योग्य हो जायगी। क्रमशः ऐसी धरतियों से लाभ होने लगता है और कुछ काल में व्यय की पूर्ति हो जाती है।

थोड़े क्षेत्रफल के लिये जहां धरती की ऊपरी सतह में रेह पाई जाती है, कृषिकार ऊपरी सतह की धरती को खोद कर बाहर फेंक देता है और गर्भतल की सतह पर खेती करता है। उसमें अधिक खाद देता है और पानी पहुँचाता है। कहीं कहीं ऊपरी तल की धरती को पानी के बहाव से धोकर उसका रेह से भरा हुआ पानी किसी गढ़हे में बहा देते हैं। पूर्वोक्त महती प्रक्रिया का यह एक छोटा रूप है।

अथवा रेहयुक्त धरती में मेंड बाँध कर उसमें वर्षा का जल एकत्रित करते हैं, और जब पानी सूख जाता है तो रेह ऊपर की सतह पर जमा हो जाती है। इसके जमा करने में आसानी होती है। दो चार वर्ष बराबर ऐसा करते रहने से धरती इस योग्य हो जाती है कि उस पर पौधे जम सकें। इस अवस्था में कुछ वर्षों तक अधिक खाद देने की आवश्यकता पड़ती है। गोबर और घूर की खाद इस अवस्था में अच्छी होती है।

रेह की जमीनों के वास्ते धाकर * (जिसको परास का पेड़ कहते हैं), केला, बबूल, शीशम, मदार प्रभृति पेड़ों का बोना लाभदायक होता है। रेहयुक्त धरतियों पर कुछ ऐसे पौधे उगते हैं जो खार में कमी करते हैं। उसे पंजाब में 'लाना'† कहते हैं और इस सूबे में "उसरहटा" घास कहते हैं। ऐसी घासें रेह प्रभृति खार में कमी करती हैं।

धान कुछ रेह रहने पर भी धरती में पैदा हो सकता है। कुछ वर्ष तक धान की खेती होने के पश्चात् मकई, ज्वार प्रभृति पौधों की खेती भी होने लगती है।

छांही मारना—यदि खेतों पर आस पास के पेड़ों का साया पड़ता है तो उनके निकट के पौधे आरोग्य नहीं रह सकते और न अच्छी तरह से बढ़ते और न फूलते फलते हैं। इसका कारण यह है कि पौधों को काफी प्रकाश और धूप नहीं मिलती। पेड़ों की गहरी जड़ें कुछ दूर तक खेतों में नीचे नीचे पहुँची रहती हैं और पौधों का भोजन खींच लेती हैं। इस अवस्था में यदि पेड़ काट डाले जायँ तो समीप के खेतों को लाभ होगा। पर यदि किसी कारण से पेड़ न काटे जा सकें तो उनका साया निवारण करने के लिये यह रीति ग्रहण कर सकते हैं। खेत के पास जिस ओर पेड़ों का साया पड़ता हो उस ओर गड्ढे खोदने चाहिएँ जिससे पेड़ों का साया गड्ढों में रह जाय और दूर तक न फैल सके।

---

* Butea Frandosa.

† Salsola Soda Plant or Scientifically Salicornia Fruticosa (Pagson).

अनुपजाऊ, परती, बंजर और ऊसर धरतियां — फसलों के बोने से विदित होता है कि खेत उपजाऊ है या नहीं। यदि पैदावार अच्छी और पौधे निरोग और हरे भरे पैदा होते हैं तो खेत उपजाऊ समझना चाहिए; इसके विपरीत जिस पर पौधे पीले छोटे छोटे मुरझाए हुए होते हैं उन्हें अनउपजाऊ खेत कहते हैं।

यदि उपरोक्त कारणों में कोई मुख्य कारण बाधक नहीं है तो विचार करना चाहिए कि पौधों के भोजन की कमी, खेती करने की रीति, दूषित बीज अथवा खराब जलवायु, कोई रोग अथवा कोई दैवी दुर्घटना के कारण तो खराबी नहीं है। इन कारणों के निवारण में यथासंभव दत्तचित्त होना कृषक का मुख्य कर्तव्य है।

परती धरती वह है जिस पर खेती नहीं होती। गाँव में बहुत सी धरती परती पड़ी रहती है जिसमें से बहुत सी धरतियों पर यथारीति खेती करने से फसलें पैदा हो सकती हैं। ऐसी कृषियोग्य धरतियों को बंजर कहते हैं। इसके विपरीत कृषि-कर्म के अयोग्य धरती को जिसपर किसी प्रकार का कोई पौधा नहीं पनप सकता "ऊसर" कहते हैं।

गाँवों में गाय बैल के चरने के लिये गोचारण छोड़ा जाता था। प्राचीन काल में गोचारण एक कानूनी विषय था। इस समय कोई कानून बाध्य नहीं करता है कि हर गांव में इतना क्षेत्रफल गोचारण के लिये छोड़ना पड़ेगा।

खेत अलग करना—सुभीते के अनुसार खेतों को एक एक बीघे के क्षेत्रफल में अलग कर लेना चाहिए। उनकी मेड़

होनी चाहिए जिससे एक खेत दूसरे खेत से अलग हो सके।

धान के खेतों में मजबूत मेड़ें होती हैं। इन मेड़ों की आवश्यकता होती है क्योंकि खेतों में पानी इन्हीं के द्वारा थमता है। परंतु रबी के खेतों में पानी थामने के लिये क्यारियों की आड़ काफी होती है। इस हालत में मेड़ों का काम केवल खेत का हद निर्वाचन करना ही होता है। कहीं कहीं सरपत या कुस अथवा घास के जुट्टों (समूह) के द्वारा हद का पता लगाया जाता है, पर मेड़ों के न रहने और पास में अन्य लोगों के खेत रहने के कारण प्रायः भारी झगड़े हुआ करते हैं। इससे निश्चित मेड़ों का होना लाभदायक होता है।

जहां अपनी ही धरती है और किसी की सरहद का झगड़ा नहीं है वहां विचारणीय क्षेत्र-फल मेड़ों से बचाए रहना अच्छा है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि नाम मात्र को एक या दो इंच मेंड़ होती है। कहीं कहीं मुख्य फसल से परे कोई दूसरी फसल किनारे किनारे बोई जाती है जिससे अपने अपने खेतों की हद मालूम हो जाती है।

२—खेतों की परिभाषा।

कृषिकार प्रायः, गाँव में रहते हैं। आबादी के पास वाले खेतों को गोइंड, गोहान, गोयंड तथा बाड़ा कहते हैं। इन खेतों में अधिक और हर साल खाद पड़ती है। प्रायः इन खेतों में लाभदायक फसलें बोई जाती हैं। गाँव के समीप रहने से उनमें खाद देने में सुगमता होती है।

गाँव से कुछ दूरवाले खेतों को मांझा अथवा बीच के खेत कहते हैं। इनमें साल में थोड़ी खाद पड़ती है।

गाँव से दूरवाले खेतों को पालो कहते हैं। इनमें कभी कभी खाद पड़ जाती है। कहीं कहीं मांझा की बजाय 'अच्छी पालो' और 'खराब पालो' अथवा पालो एक, पालो दो, पालो तीन यथाश्रेणी पैदावार के विचार से नाम रखते हैं।

धनकर या कयारी धान के खेतों को कहते हैं। कहीं कहीं अच्छे धान के खेतों को कयारी और मोटे अथवा बिना खादवाले खेतों को धनकर के नाम से कहकर भेद प्रकाशित करते हैं।

नदी के तीर जिस धरती पर खेती होती है उसे 'कछार' कहते हैं। प्रायः यह धरती नदी के बढ़ने या घटने से कम या ज्यादा होती रहती है। नदी के साथ बहुत से उपजाऊ अंश आते हैं जिनसे कछार धरतियों पर पैदावार अच्छी होती है। परंतु कभी कभी ऐसा भी देखने में आता है कि उपजाऊ कछार पर नदी के साथ बहती हुई बालू जमा हो जाती है जिससे धरती अनुपजाऊ हो जाती है। ऐसी ही अवस्था में उपजाऊ अंश जमा होने से बलुई धरतियाँ उपजाऊ हो जाती हैं और उपजाऊ धरतियाँ अनुपजाऊ हो जाती हैं। ऊसर धरती उसे कहते हैं जिस पर कुछ पैदा नहीं हो सकता; उसे बांझ धरती भी कहते हैं।

परती और बंजर धरतियों का भेद पहले लिखा जा चुका है।

पलिहर उस धरती को कहते हैं जिसमें फसलें बोई जाती हैं और कुछ काल के विश्राम के लिये बिना बोए छोड़ दी जाती हैं। पलिहर धरती प्रायः एक ही फसल बिना बोई छोड़ी जाती है। इससे अधिक बिना बोई छूटी हुई धरती को

परती कहते हैं। पळिहर खेत रखने का यह आशय होता है कि खेत को भोजन संचित करने का अवसर मिले। प्राय: पळिहर धरती में दूसरे फसल में कोई लाभदायक और जोरदार फसल बोते हैं।

ऊख बोने के लिये जो धरती पळिहर रखते हैं उसका विशेष नाम "ऊखाव" या "पांडारा" है।

सिवान खेतों के उस समूह को कहते हैं जहां एक या कई प्रकार की धरती होती है। प्राय: सिवानों के कई नाम होते हैं जैसे "नोनिया पार", "डीह पार" इत्यादि।

३—कुँआँ बनाना।

खेतों की सिंचाई के लिये दो एक कुँएँ बना लेने से खेतों की हैसियत अच्छी हो जाती है। जब ताल पोखर और नहरें सूख जाती हैं उस समय अच्छे कुएँ का पानी नहीं सूखता। अच्छा कुआँ कृषक के लिये बहुत उपयोगी है। कुआँ बनाने के लिये समय समय पर सरकार तक़ावी देती है, अथवा सहकारी बंकों से कम सूद पर रुपया मिल सकता है। कुआँ बनाने की रीति का वर्णन यथा-स्थान किया जायगा। कहीं कुएँ पक्के और कहीं कच्चे बनाए जाते हैं। इनारा बड़े और पक्के कुएँ को कहते हैं जिनमें अधिक पानी होता है।

जिन स्थानों पर ताल और पोखरे अधिक हैं और उनसे सिंचाई के लिये पानी मिल सकता है उनसे बहरवान और नहरें बनाना सिंचाई के लिये लाभदायक होता है। स्थान के अनुसार कुएँ की अपेक्षा पोखरा या बांध डालने में सुविधा होती है।

४–चारदीवारी बनाना।

अपने खेतों को जानवरों, चोरों तथा अधिक हवा से बचाने के लिये चारदीवारी बनाना चाहिए। चारदीवारी मिट्टी या कच्ची ईंट की कच्ची अथवा पक्की ईंट या पत्थर की पक्की बनाई जाती है। मिट्टी की नीची चारदीवारी कहीं कहीं मिट्टी छोप कर बनाते हैं। इसे "खांवा" कहते हैं। इनसे पशुओं का निवारण होता है। पक्की चारदीवारी में अधिक व्यय होता है परंतु उससे अधिक काल के लिये छुट्टी भी हो जाती है। इसकी बार बार मरम्मत नहीं करानी पड़ती। पक्की चारदीवारी बागों में शोभा और हिफाजत के मतलब से भी बनाई जाती है।

खेतों को लोहे के कांटेदार तारों से घेर कर पशुओं और चोरों से रक्षित कर सकते हैं। कांटेदार पेड़ जैसे सेंहुड़, नागफनी, हाथी-चिग्घाड़ इत्यादि को चारदीवारी के काम निकालने के अभिप्राय से भी लगाते हैं।

विलायती बबूल, बिगोनिया इत्यादि वृक्षों की घनी बोआई चारदीवारी के काम में आती है। पर इन वृक्षों को खेतों के किनारे लगाने से यह हानि है कि कुछ दूर तक खेतों की नमी और पौधों का भोजन ये अपनी जड़ों द्वारा खींच लेते हैं जिससे खेत का कुछ अंश कम उपजाऊ हो जाता है।

किसी विशेष बल की आवश्यकता न होने पर केवल आड़ के लिये बांस की कैन (पतली डालियाँ), बबूल की कांटेदार डालियाँ, अरहर, एरंड, सनई, पटुवा, ज्वार, नील प्रभृति

पौधों के डंठल, सरपत इत्यादि वस्तुओं की सूखी टट्टियाँ बांध कर खड़ा कर देने से हवा और पशुओं से बचाव हो सकता है। लकड़ी की थूनी गाड़ कर बेड़े बेंड़े बांस बांध कर भी चारदीवारी बनाते हैं जिनसे पशुओं से बचाव होता है। पर दीमक और चोरों से चारदीवारी की हिफाजत करनी पड़ती है क्योंकि ईंधन के लिये जिसकी दिक्कत प्रायः देखने में आती है लोग लकड़ी चुरा ले जाते हैं।

फसलें बोने के साथ खेतों के किनारे पर अलसी, सरसों, रेंडी, पटुवा प्रभृति फसलें जिस की हिफाजत के लिये बोते हैं जिनसे कुछ हद तक चारदीवारी का मतलब निकलता है। जैसे जौ के खेतों के किनारे अलसी की फसलों की एक कतार डाल देते हैं। गाय बैल अलसी कम खाते हैं। जौ तक पहुँचने में उन्हें आगे बढ़ना पड़ता है।

ऊख के खेतों में कभी कभी किनारे के ऊख को एक दूसरे से उनकी फुनगी पकड़ कर बांध देते हैं जिससे बीच बीच में जानवर न घुसें।

गाँव के बाहरी निकास की चारदीवारी अथवा किसी जंगल के समीप खेतों की बचत के लिये चारदीवारी बनाने में अधिक व्यय की आवश्यकता होती है। उन्हें पक्का बनाना पड़ता है जिससे सूअर, सियार, साही, हरिन और नीलगाय के झुंड से फसलों की हिफाजत हो। ऐसे कामों में यदि गाँव के सब लोग थोड़ी थोड़ी मदद करें तो अच्छा हो।

तीसरा परिच्छेद ।

वे हालतें जिनका प्रभाव कृषि पर पड़ता है ।

भारतवर्ष की कृषि का विस्तार इतना बड़ा है कि इस के भीतर संसार भर का समस्त ज्ञान आ जाता है। यहां की जलवायु, पहाड़ी, मैदानी, रेगिस्तानी स्थानों के अनुसार भिन्न है। स्थान स्थान के अनुसार कृषि संबंधी आवश्यकताएँ रीतियां और सुभीते भी भिन्न हैं।

भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है, जहां कृषि की सुविधाओं के होने से हर एक प्रकार की फसलें उत्पन्न होती हैं। संसार भर में खेती के अनुकूल इससे बढ़ कर दूसरा देश नहीं।

अधिकांश भारतवर्ष में कृषि-कर्म्म बैलों और भैंसों की सहायता से अथवा अपने हाथों से किया जाता है। कुछ समय से थोड़ी बहुत सहायता कल और इंजन से मिलने लगी है। कृषि के लिये बैल अत्यंत उपयोगी जीव हैं और इन पर कुछ भी अत्याचार का होना सर्वथा अन्याय है।

साधारणतः भारतवर्ष का कृषक एक अत्यंत मितव्ययी और संतोषी प्राणी होता है। उसकी आवश्यकताएँ अति सूक्ष्म और सीमाबद्ध होती हैं। वह अपने कुटुंब के साथ गाँव में रहता है और खेती करता है। अधिकांश उसका मन खेती में लीन रहता है। उसकी रहन सहन साधारण और आडंबर-शून्य होती है। प्रायः वह निरक्षर और मूर्ख होता है और

प्राचीन व्यवहारों का अनुसरण करता है। उसकी हैसियत तथा आवश्यकताएँ और उसके विचार उसकी खेती और परिचार के पसार तथा शिक्षा के अनुसार बढ़े हुए या संकुचित होते हैं।

गाँव के प्रबंध, रीतियाँ और रिवाज स्थान स्थान पर भिन्न देखे जाते हैं जिनका असर लोगों के विचारों और रहन सहन पर पड़ता है। खेती का व्यवसाय प्राचीन समय से भारतवर्ष में हो रहा है। बहुत से स्थानों के कृषक अपने व्यवसाय मे दक्ष हैं यहां तक कि उनको उन्नति की रीतियाँ बतलाने की आवश्यकता नहीं, परंतु कितने ऐसे स्थान हैं जहां अज्ञानता के कारण कृषि की दशा शोचनीय और प्रारंभिक अवस्था में पड़ी हुई है।

कृषिकार कुछ फसलें अपनी जीविका के लिये बोता है जिस पर कि वह अपने परिवार सहित गुजारा करता है। अच्छी फसलें और अच्छा अनाज तथा तेलहन और रेशे की फसलें बोकर वह जो द्रव्य उपार्जन करता है उससे वह पहरन के लिये कपड़े खरीदता है, लगान अदा करता है और अन्य ऐसी ही छोटी जरूरतें—नमक, तंबाकू, सुर्ती और दवा आदि—खरीद कर पूरी करता है। इसके उपरांत करजा चुकाता है या बुरे दिन के लिये कुछ बचा रखने की चेष्टा करता है।

कुसमय पड़ने पर कृषिकार का धन अथवा उसके सहायक बैल, गाय, भैंस बिक जाते हैं। प्रायः बुरी अवस्था में उन्हें कम क़ीमत पर अलग करना पड़ता है। उसका खेत रेहन हो जाता है और धीरे धीरे वह ऋण के निबिड़ जाल में

फँस जाता है। उसको कभी बीज के लिये क़र्ज़ लेना पड़ता है, कभी बैल खरीदने के लिये, कभी सिंचाई के प्रबंध के लिये। ऐसी अवस्था में जब उसके खाने के अन्न की कमी हो जाती है वह क्षुधा से सपरिवार पीड़ित हो दुःखी हो जाता है।

दुर्दिन में उसे क़र्ज़ के निविड़ पंजे से बचाने अथवा उसे क़र्ज़ दिलाने—क्योंकि कितने ही कड़े सूद पर भी कभी कभी उसे क़र्ज़ नहीं मिलता—उसको खेती करने के लिये बैल, बीज, इत्यादि एकत्रित करने के लिये द्रव्य की आवश्यकता पूर्ण करने का प्रश्न हमारे समाने उपस्थित है। यह समय और स्थान के अनुसार भिन्न है। कहीं जमींदार, कहीं महाजन और कहीं गवर्नमेंट सहकारी बैंकों द्वारा उसे मदद पहुँचाते हैं।

१–ज़मीन।

कृषिकार की प्रथम आवश्यकता धरती, हल और बैल हैं। जिस हैसियत की धरती उसके पास है वैसी ही उसको हानि या लाभ हो सकता है। वह भूमि की हैसियत धीरे धीरे बढ़ा सकता है।

पूर्व परिच्छेद में जमीन का दिग्दर्शन कराया गया है। आगामी परिच्छेद में पृथिवी का वर्णन, उसकी बनावट, जोत, पौधों की आवश्यकता, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति, तथा उनके अभाव से विदित हो जायगा कि जमीन से कृषिकार कितना और कैसा लाभ उठा सकता है।

जमीन से शस्य उत्पन्न करना और उसका बल क़ायम रखना कृषिकार का मुख्य उद्देश है। यदि पृथिवी अधिक फसल

लेने से कमज़ोर हो गई है तो उसको खाद देकर अथवा परती छोड़ कर या उस पर अदल बदल कर फसल बोने से कृषि की उन्नति हो सकती है। बहुत दिनों तक खेती करने और उसके बदले खेतों को खाद न देने से जमीन कमज़ोर हो जाती है। देश की आय व्यय, जलवायु, पानी इत्यादि कारणों का जमीन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

ज़मीन कृषिकार की पूँजी है; इसी पर कृषिकार का दारोमदार है। ज़मीन को रेहन से बचाने के निमित्त क़ानून बनाए गए हैं, पर कुसमय में बैल के अलावा रुपया पाने का और कोई ज़रिया नहीं; इस लिये कृषिकार को अच्छे समय में अपने परिश्रम पर पूर्ण विश्वास कर के बुरे दिन के लिये यथाशक्ति कुछ बचाना चाहिए। उसे मुक़द्दमों मे तथा कु-व्यवसायों में अपनी गाढ़ी कमाई का रुपया न फूँकना चाहिए।

२—मौका।

कृषिकार खेती के अलावा यदि उसे समय मिलता है तो सुतली बनाता है और उससे टाट तथा रस्से बना कर बेंचता है। कुछ लोग रेशम के कीड़े पालते हैं अथवा अन्य व्यवसाय अपनी रीति के अनुसार करके लाभ उठा सकते हैं।

जो लोग शहर अथवा बाजार के निकट हैं उन्हें तरकारियों का व्यवसाय अधिक लाभकारी होता है। साल भर आवश्यकता की फसलें, साग सब्जी, गोभी, आलू, ककड़ी, तरबूज इत्यादि बोकर वे लाभ उठाते हैं। जहां साहेब लोग रहते हैं वहां उनकी आवश्यकता की चीजें जैसे स्ट्राबेरी, विलायती

भांटा (टोमैटो), मीठी मटर, इत्यादि बोकर अच्छा लाभ हो जाता है। जिन्हें इस बात से परहेज नहीं है, अंडे और मुर्गी के व्यापार से खटिक प्रभृति जातियाँ लाभ उठाती हैं।

बाजारों के समीप तिजारती माल, गेहूँ, चना, गुड़, तेलहन, रेशे की फसलें, पोस्ता, तमाखू से भी अच्छा लाभ प्राप्त होता है। उनके ग्राहक अधिक मिलते हैं और चढा ऊपरी में दाम अच्छे मिलते हैं। बाजार से दूर यदि व्यापारी घर पर जाता है तो वह उठाने के खर्चे के बहाने अधिक लाभ करके दबाता है। माल बेचने के लिये बाजारों का होना आवश्यक है। जमींदार लोग अपने यहां बाजार स्थापित करके तिजारत का बड़ा उपकार कर सकते हैं।

जिस फसल की मांग अधिक होती है उसके दाम भी अच्छे लगते हैं और उसकी जल्दी बिक्री भी होती है।

शहरों के नजदीक पशुशाला से अच्छा लाभ हो सकता है। जहां दूध की मांग है वहां दूध का प्रबंध करना और कृषि-कार्य के निमित्त अच्छे बैल उत्पन्न करना कृषि का एक मुख्य अंग है।

भारतवर्ष में कृषि के सुधार के लिये बड़े बड़े विद्वान, दूरदर्शी, हितैषी वैज्ञानिकों तथा शासन-वेत्ताओं के ध्यान देने की आवश्यकता है। उन्हें गांव में रहनेवाले कृषिकारों की कठिनाइयों का ज्ञान होना चाहिए और उनपर विचार करके यथासाध्य उनको हटाने की कोशिश करनी चाहिए। उनके व्यवसाय को मोटा और गँवार समझ कर उनपर हँसना और मुँह मोड़ना उचित नहीं। वरन् उनके प्रति सहानुभूति दिखानी

चाहिए। समय और काल के अनुसार कृषि पर भार अधिक बढ़ता जाता है। जिन जातियों का रोजगार टूट जाता है वे भी अपना अवलंबन गिरती पड़ती कृषि में ही ढूँढ़ते हैं। धरती की शक्ति कायम रखने, बुरे समय के लिये कुछ बचा रखने का प्रश्न अथवा जहाँ एक पत्ती थी वहां दो उत्पन्न करने का महान् प्रश्न स्वतः आ उपस्थित होता है।

कोई गरू लगान की शिकायत करता है, कोई कृषि की खराब प्रणाली पर रोता है। कोई अतिवृष्टि या अनावृष्टि इत्यादि से दु;खी हो जाता है। कहीं न कहीं अकाल विद्यमान रहता ही है। अच्छे समय में जो खींच तान बराबर भी हुई तो भी अकाल पड़ते ही दिवाला निकल जाता है, घर में एक छटांक अन्न तथा एक पाई भी नहीं रह जाती। जिनके पास कुछ बचा रहता है वे अच्छे रहते हैं।

एक स्थापित राज्य जिसकी बरकत हमें भोगने का सौभाग्य है कृषि के हेतु अत्यंत लाभदायक है। लूट के अंदेशे और चोरी के खतरे से बचाव करने की परेशानी पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं रहती। हमें अपनी प्रजापालक गवर्नमेंट से अपनी आवश्यकताएँ कहने पर उसका समाधान होते दीख पड़ता है। हमारे प्रतिनिधि कृषि संबंधी ज्ञान से परिपूर्ण होने चाहिएँ।

२—जल-वायु।

निम्नलिखित कारणों के विचार करने से किसी स्थान की जल-वायु का पता चल सकता है।

उस स्थान की ऊँचाई, समुद्र तथा अन्य जलाशय से दूर या निकट होना, जंगल से दूर या निकट होना, बदली रहना या आसपास साफ होना, पानी का बरसना, जमीन की दशा, भूमध्य रेखा के निकट या दूर होना इत्यादि।

भारतवर्ष में एक प्रकार की आबोहवा नहीं है। इसमें भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न प्रकार की आबोहवा है। इसलिये भिन्न भिन्न प्रांतों की आबोहवा के विचार से कृषि-कर्मों तथा फसलों का विचार करना आवश्यक होता है। बहुत काल से कृषि करते करते इसके कायदे और फसलें बोने का समय और रीतियाँ इतनी निश्चित होगई हैं कि उनमें परिवर्तन की बहुत ही कम आवश्यकता होती है। नवीन वैज्ञानिक रीतियों के अनुसार कृषि की उन्नति का मार्ग खूब खुला हुआ है।

भूमध्य रेखा के निकट के देशों में गर्मी अधिक पड़ती है क्योंकि वहां सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। समुद्र तथा अन्य जलाशयों के निकट रहने से आबोहवा मातदिल होजाती है क्योंकि पानी देर में गरम और देर में ठंढा होता है जिससे गरम देशों की गर्मी और ठंढे देशों की ठंढक कम हो जाती है। जो प्रांत समुद्र तथा अन्य जलाशयों के तट से दूर हैं उनपर उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। वे गर्मी में अधिक गरम और सरदी में अधिक ठंढ रहते हैं। धूप में पत्थर और बालू इत्यादि जल्द तपने लगते हैं और सरदी पाकर जल्द ठंढे हो जाते हैं परंतु पानी की गरमी सरदी बहुत देर में कमोबेश होती है। इसलिये समुद्रतट की आबोहवा बारहो मास मातदिल रहती है। इसके विपरीत

मैदानों में जाड़े में सरदी और गरमी में तपन खूब होती है। देश की ऊंचाई का प्रभाव आबोहवा पर पड़ता है जैसे भूमध्य रेखा के निकट मद्रास के समीप नीलगिरि पर्वत पर गरमी के दिनों में भी जाड़ा पड़ता है। भूमध्य रेखा से दूर बनारस और लाहौर इत्यादि नगरों में जाड़े में अधिक जाड़ा और गरमी में अधिक गरमी पड़ती है।

वृक्षों तथा जंगलों का होना देश के लिये अत्यंत उपयोगी है क्योंकि इनमें देश की गरम और ठंढी हवा से रक्षा होती है जिसका आबोहवा पर बड़ा असर पड़ता है। कुछ काल तक बेपरवाही से वृक्ष गिरा दिए गए जिसका परिणाम लाभ की अपेक्षा हानिकारक हुआ। वृक्ष जो उपस्थित हैं उन्हें काट डालना सहज है पर उनके बढ़ने में बहुत काल लगता है। वृक्षों के रहने से पानी का वेग अधिक तथा आबोहवा मातदिल हो जाती है। जहां वृक्ष नहीं हैं वहां की आबोहवा सूखी होती है। वहां गरमी मे अधिक गरमी और जाड़े में अधिक जाड़ा पड़ता है। पशुओं और आदमियों को शरण नहीं मिलती। वृक्षों से मकान, हल, हेंगा गाड़ी बनाने को लकड़ी मिलती है। दुःसह काल में पीपल, गूलर इत्यादि पेड़ों की पत्तियों से पशुओं की प्राण रक्षा होती है। सरकार ने जंगल-विभाग क़ायम करके वृक्षों की रक्षा की है। इसके अतिरिक्त रेल की सड़कें, नहरों के किनारे, परती जमीन, ऊसर धरती, सड़कों के किनारे और ऐसे ही स्थान वृक्ष लगाने के लिये ठीक हैं।

जल-वृष्टि और बदली का प्रभाव देश की आबोहवा पर पड़ता है। पानी का अधिक बरसना कृषि दशा के अनुकूल

नहीं कहा जा सकता। एक या दो दफे में अधिक पानी का बरसना नदी नालों के बढ़ने तथा ताळाब पोखरों के भरने के लिये लाभकारी है। इस प्रकार अकस्मात् अधिक वृष्टि के होने से और अधिकतर पृथिवी के सूर्य की किरणों से तपने से उसमें नमी कायम नहीं रहती। पौधों को पानी की तृष्णा बनी ही रहती है। एक स्थान पर सत्तर अस्सी इंच पानी बरस सकता है परंतु यदि इतनी जल वृष्टि दो तीन बेर हुई है तो ऐसी अवस्था में देश में समय समय पर सूखा और बाढ़ की आपत्ति का भय बना रहता है। अधिक जल से खेत कट जाते हैं। पृथिवी पर नाले बन जाते हैं, अच्छी मिट्टी बह जाती है और खाद्य पदार्थों की हानि होती है तथा देश की आबोहवा शीत-पूर्ण हो जाती है जिससे नाना प्रकार के ज्वर तथा अन्य रोग उत्पन्न होते हैं।

४—जल-वृष्टि।

कृषि के लिये मातदिल आबोहवा और समय समय पर थोड़ी थोड़ी जल-वृष्टि अनुकूल होती है।

इस प्रांत में मई, जून, जूलाई के महीनों में अच्छी जल-वृष्टि की आशा की जाती है जिससे तृषित पृथिवी तृप्त हो और जल सोख कर नरम हो जावे ताकि खेत की जोताई और बोआई हो सके। समय समय पर आकाश का खुला रहना कृषि-कर्म्मों के लिये अच्छा होता है। समय समय पर जल-वृष्टि होती रहनी चाहिए जिससे नवीन फसलें बढ़ती रहें।

रेन-गेज अर्थात
बरसात का पानी नापने का यन्त्र
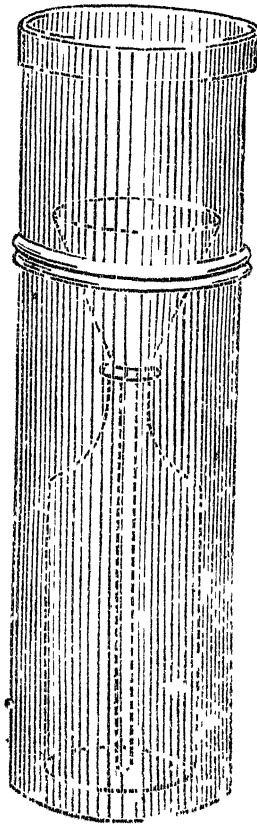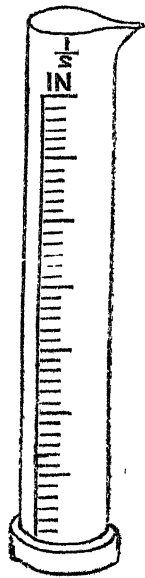
बीच सितंबर और अक्तूबर के महीने में रबी के लिये जल-वृष्टि की आवश्यकता होती है। जिससे रबी के खेत तैयार किए जाते हैं और फसलें बोई जाती हैं, पिछले धान को फायदा पहुँचाता है। अगस्त और सितंबर में अधिक वृष्टि से खरीफ की तैय्यार फसलों को जो खेत में खड़ी रह जाती हैं हानि पहुँचती है। नवंबर के महीने में निराई और सोहाई होती है। मध्य दिसंबर तथा शुरू जनवरी तक फिर पानी की आश की जाती है जिससे बढ़ती फसलों को लाभ पहुँचता है और सिंचाई की मेहनत बच जाती है। इस समय

जल वृष्टि से पाले का भय कम हो जाता है। अधिक बदली से फसलों में गिरूई लगने का भय होता है। इस समय पाला पड़ने से कृषि की हानि होती है। आगे चल कर पानी हानिकारक होता है। फूलती फसलों में दाना नहीं पड़ने पाता। मार्च, अप्रैल में पानी की आशा नहीं की जाती। इस समय शस्यों के पकाने के लिये पछुवाँ हवा और खुले आकाश सहायक होते हैं। इस समय खेत काट लेने पर खेत में जो कुछ नमी बाकी रहती है उसी समय उन्हें जोत डालने से बड़ा लाभ होता है। हानिकारक गुबरैले तथा पतिंगों के अंडे नाश हो जाते हैं और उनका आक्रमण आगामी फसलों पर कम हो जाता है। पृथिवी खुल जाती है जिससे वर्षा काल में अच्छी तरह जल सोखती है।

भारतवर्ष की जल-वृष्टि एक प्रकार की वायु पर निर्भर है जो समुद्र की ओर से बहती है और अपने साथ बहुत सा जल बादलों में लाती है। इसे अंग्रेजी में मॉनसून कहते हैं। अप्रैल, मई, जून गरमी के महीनों में मैदान की हवा गरम हो कर तप जाती है और ऊपर उठती है, क्योंकि हलकी वस्तु ऊपर को उठती है तो ठंढे देशों और समुद्र के ओर की वायु जो ठंढी होती है मैदान की ओर बड़े वेग से बढ़ती है। यह हवा भारी होती है और इसमें पानी के अदृश्य अणु भरे होते हैं। सैकड़ों मील समुद्र तल पर होते हुए यह हवा हिंद महासागर से उठती है और अरब की खाड़ी पार करते हुए पश्चिमी घाट पर आक्रमण करती है जहां पहाड़ों की ठंढी हवा के मेल से जलवृष्टि होती है। इसे नैर्ऋत्य अथवा

दक्षिणी-पश्चिमी मॉनसून वायु कहते हैं। इसके प्रभाव से भारतवर्ष के दक्षिणी और पश्चिमी भागों को जल वृष्टि मिलती है। इसी प्रकार बंगाल की खाड़ी से होते हुए अग्निकोण अथवा पूर्व-दक्षिण कोण की मॉनसून हवा पानी लाती है जिससे बंगाल तथा उत्तरी भारतवर्ष को जल मिलता है। गरमी में प्रांतों के तपने तथा इस मॉनसून के शीघ्र तथा विलंब से उठने पर हमारे भागों में समय तथा कुसमय पर जलवृष्टि होती है। तीसरी हवा ईशान कोण से उठती है जिससे मध्य भाग को जल मिलता है। नैर्ऋत्य और अग्निकोण की वायु जून, जूलाई, अगस्त, और सितंबर चार महीने बहती है। उत्तरी पश्चिमी हवा से जब हिमालय पर्वत की बरफ गलती है उस समय बहुत सा जल उत्तरी भारतवर्ष को प्राप्त होता है जो रबी की फसलों को लाभकारी होता है। भारतवर्ष के पश्चिमी भाग राजपूताना, सिंध, गुजरात, बिलोचिस्तान में इन वायुओं की गुजर नहीं, इस कारण वे देश अनावृष्टि के कारण सूखे रह जाते हैं।

भारतवर्ष की कृषि में केवल किसी नवीन चमत्कार ही का दिखला देना कृषि की उन्नति नहीं है। यह विशेष रूप की उन्नति अवश्य है। परंतु जिस पर साधारणतः करोड़ों प्राणियों का जीवन निर्भर है और जो इस भूमंडल के अनेक देशों को अन्न वस्त्र की देनेवाली है उस कृषि की उन्नति पर विचार करना और उसकी यथासाध्य सहायता करना सब का प्रथम कर्त्तव्य है।

इस बात का जान लेना आवश्यक है कि कहां वर्ष में कितनी औसत जलवृष्टि होती है। इस ज्ञान से खेती के

काम में बड़ी सुगमता हो जाती है। एक साधारण सा चोंगा होता है जो खुले मैदान में गाड़ दिया जाता है। इसमें एक छोटा सा गिलास होता है। इस पर इंच के निशान बने रहते हैं। जब पानी बरसता है तो इस छोटे गिलास में उसकी बूंदें इकट्ठी होती जाती हैं। पीछे से देखने पर यह जाना जाता है कि अमुक दिन की वृष्टि में कै इंच पानी बरसा। सभी मुख्य मुख्य स्थानों में ये यंत्र रहते हैं और इनका लेखा बराबर अखबारों में छपता रहता है। इन लेखों से जाना जा सकता है कि वर्ष में कहां पानी अधिक और कहां कम बरसा।

चौथा परिच्छेद ।

पौधा ।

१—पौधों की बनावट ।

कृषिकार का मुख्य उद्देश्य पौधों की बढ़ती करने का है । वह नाना प्रकार के पौधे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार बोता है । दाना, रेशा, शक्कर, रंग, पत्तियाँ, फूल लकड़ी इत्यादि के पौधे प्रति दिन उसके काम में आते हैं । इस कारण हम उनकी बाहरी और भीतरी बनावट, उनका जमना और बढ़ना, उनके भोजन और भोजन की विधि पर विचार करेंगे।

कृषिकार पौधों की खेती कुछ तो उनकी जड़ जैसे मूली, गाजर, शलगम इत्यादि पदार्थों के लिये; कुछ पेड़ी के लिये जैसे पौंड़ा, ईख, आलू इत्यादि पदार्थ; कुछ छाल के लिये जैसे पटुआ, हाथी चिग्घाड़ इत्यादि; कुछ दाने के वास्ते जैसे गेहूँ, जौ, चना, चावल इत्यादि; कुछ उनकी पत्तियों के लिये जैसे चाय, तंबाखू इत्यादि; कुछ रेशे के लिये जैसे, रूई, मदार इत्यादि के लिये, करते हैं । इनमें से मनुष्य अपने भोजन, वस्त्र और अन्य आवश्यकताओं की सामग्री और अपने पशुओं के लिये चारा एकत्रित करता है ।

किसी साधारण पौधे को लीजिए । जाड़े में सरसों के पौधे हर जगह प्राप्त होते हैं । सरसों के पौधे के पास खड़े होकर देखने से ज्ञात होता है कि इसका एक अंग पृथिवी के भीतर है जिसके बल से वह जमीन के ऊपर खड़ा है । इस—

सरसों
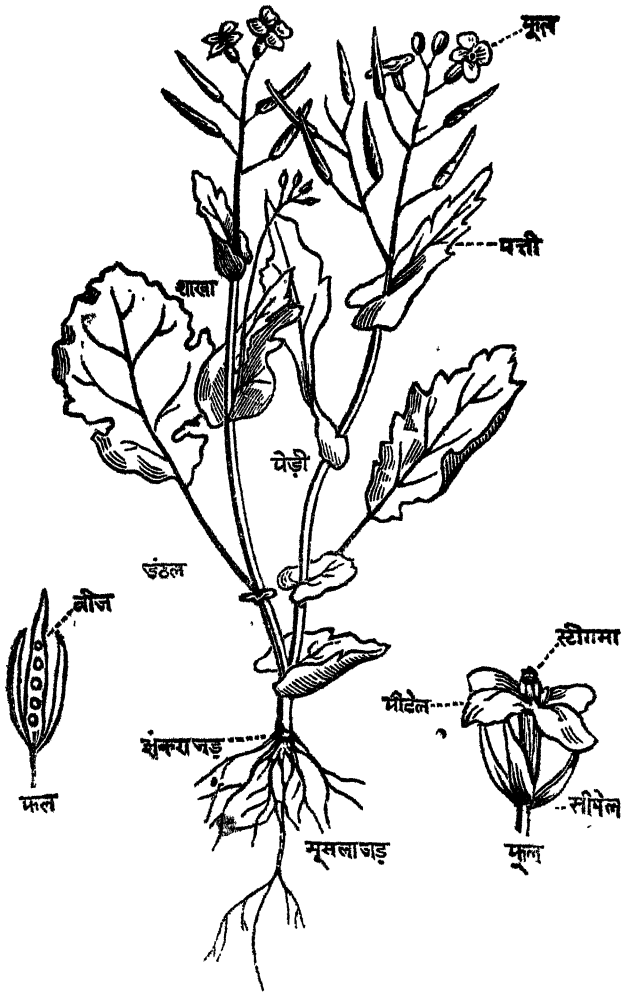
अंग को जड़ कहते हैं। जमीन के ऊपरी हिस्से को, जिसमें, डालियाँ, पत्तियाँ और फूल लगे हुए हैं, पेंड़ी कहते हैं।

सावधानी से पौधे को पृथिवी से अलग करने पर और उसकी जड़ को पानी में धो डालने से उसकी मिट्टी अलग हो जाती है। तब देखने से ज्ञात होता है कि जड़ कितनी लंबी है जो जमीन के भीतर चली गई थी। जड़ में कितनी ही शाखाएँ हैं जिनमें कुछ बहुत पतली और धागे के समान हैं। इन जड़ों के सिर पर बाल के समान बहुत छोटे रेशे हैं। इन्हें जड़-केश (Root-Hairs) कहते हैं। ये अत्यंत उपयोगी हैं क्योंकि इनके द्वारा पौधे को भोजन पृथिवी से प्राप्त होता है। ये बाल के समान जड़ें धरती के अणुओं में लिपट कर अपना भोजन प्राप्त कर लेती हैं जो ऊपर जड़ों की शाखाओं, तना और डालियों में होते हुए पत्तियों तक पहुँचता है।

इस प्रकार जड़ें पौधों को भोजन पहुँचाती हैं और उसे जमीन पर एक स्थान पर थाँबे रहती हैं जिससे कि पौधा हवा पानी से उड़ या बह नहीं जाता। जड़ें पौधे के अनुसार कई आकार प्रकार की होती हैं। कितनी जड़ें जमीन में पौधों के आकार से कई गुना भीतर फैली होती हैं। मुख्य दो प्रकार की जड़ें होती हैं एक 'मूसला' और दूसरी 'झंकरा'। मूसला जड़ जमीन में सीधी चली जाती है, जैसे अरहर सरसों इत्यादि पौधों की। झंकरा जड़ रेशे के समान कुछ उलझी हुई होती हैं, जैसे गेहूँ, और जौ के पौधों की। ऊसर और कंकड़ीले स्थानों में जड़ें बहुत दूर तक फैलती हैं क्योंकि उन्हें बहुत दूर तक अपने भोजन की तलाश में जाना पड़ता है।

पेड़ी—यह साधारण अवस्था में पृथिवी तल पर सीधी हवा में बढ़ती है। यह पौधे का मुख्य अंग है जिसमें से शाखाएँ, पत्ते, फूल, और फल निकलते हैं। पेड़ी अनेक आकार प्रकार की होती है। कोई कोई तो जड़ों के समान पृथिवी के भीतर बढ़ती है। जड़ों और पेड़ी में अंतर यह है कि जड़ पौधों का भोजन प्राप्त करती है पर पेड़ी यह नहीं कर सकती। पेड़ी से न नए पौधे उत्पन्न होते हैं। आलू, अदरख इत्यादि पौधों की इस प्रकार की पेड़ियाँ होती हैं। कोई कोई पेड़ी पत्ते के समान चपटी होती है जैसे नागफनी; कोई पेड़ी हवा में सीधी खड़ी रहती है जैसे अरहर; कोई जमीन पर फैलती हैं जैसे दुधिया घास, नोनिया साग इत्यादि; कोई जड़ द्वारा दीवार पर चढ़ती हैं, जैसे दोदुनिया; कोई गुच्छों द्वारा ऊपर चढ़ती है, जैसे लौकी कोहड़ा इत्यादि, कोई पेड़ी खोखली होती हैं जैसे गेहूँ, जौ, बांस इत्यादि पौधों की और किसी किसी पौधों में ठोस पेड़ी होती हैं जैसे मकई, अरहर, शीशम, आम इत्यादि में।

डाल—पेड़ी से डालियाँ निकलती हैं और डालियों पर पत्तियाँ लगती हैं। फूलदार पौधों में फूल लगते हैं।

पत्तियां पौधे का भोजन बनाने और उसकी परवरिश करने के लिये मुख्य अंग हैं। इनमें अनेक क्रियाएँ होती हैं जिनसे पौधे का भोजन बनता है। जड़ों द्वारा जो रस पौधा प्राप्त करता है वह तत्काल ही पौधे के काम लायक नहीं होता, वह पौधे में आकर समपदार्थों में परिवर्तित होता है तब पौधा उसको अपने काम में ला सकता है जिससे उसके

अंग बनते हैं, दाना बनता है और उनकी परवारिश होती है।

पत्तियों में अगणित नलियाँ होती हैं जिनके द्वारा भोजन तैयार होकर पौधे के अंगों में घूमता है। कुछ तो पौधे के काम में आता है और कुछ पौधे के भाविष्य के काम के निमित्त जमा होता है। ये भोज्य पदार्थ कई प्रकार और गुण के होते हैं। स्टार्च एक भोज्य पदार्थ है जो आलू में जमीन के भीतर जमा होता है; जौ, गेहूँ, मकई इत्यादि के दानों में स्टार्च पाया जाता है। इसी प्रकार कई तरह के और भोज्य पदार्थ हैं जिनको इन्युलीन; तेल, शकर, कहते हैं। ये पौधो के किसी भाग में एकत्रित होते हैं। कुछ पौधे भोज्य पदार्थ एकत्रित नहीं करते।

पत्तियों में सब से मोटी नली बीच में होती है। इसकी बहुत सी शाखाएँ पत्ती भर में फैली होती हैं। क्रमशः वे फैलती हुई पतली हो जाती हैं यहां तक कि आंख से नहीं दिखाई पड़तीं।

अधिकांश पत्तियों में नीचे की ओर बहुत छोटे छोटे छेद होते हैं। इन्हीं छेदों द्वारा पौधा सांस लेता है और जड़ द्वारा पानी लेता है जिसमें पौधे के भोज्य पदार्थ घुल कर पौधे को प्राप्त होते हैं और वह पृथिवी से पौधे की पत्तियों तक चढ़ते हैं। यह पानी यदि पौधे की आवश्यकता से अधिक होता है तो पौधा इन्हीं छेदों द्वारा उसे त्याग देता है। इन्हीं छेदों द्वारा पौधा वायु भी त्याग देता और ग्रहण भी करता है। इन छिद्रों को अंगरेजी भाषा में स्टोमैटा कहते हैं। रोशनी में ये छेद खुलते और अँधियारे में बंद हो जाते हैं।

पौधों में हरा रंग क्लोरोफिल द्वारा आता है। क्लोरोफिल एक पदार्थ है जो पोधों के समस्त अंगों में पाया जा सकता है। खुर्दबीन से देखने में यह हरे दाने के समान दिखाई देता है। रोशनी की मौजूदगी और क्लोरोफिल के द्वारा पौधा कार-बन डी आक्साइड का प्रयोग कर सकता है। क्लोरोफिल के अभाव से पौधा सफ़ेद अथवा पीला पड़ जाता है।

मुख्य वायु जो पौधा वायु-मंडल से ग्रहण करता है कार्बन डि आक्साइड है। इस वायु द्वारा पौधे की परवरिश होती है और पौधों के अंग निर्मित होते हैं। वायु-मंडल के अगाध कोश में वायु दो पदार्थों के मिलने से पाई जाती है। इन्हें कार्बन और आक्सिजन कहते हैं। जब पौधा इन्हें ग्रहण करता है, उस समय ये संयुक्त अवस्था में होती हैं।

दोनों पदार्थ पौधे की गर्मी से टूट कर अलग अलग हो जाते हैं। पौधा कार्बन को अपने काम में लाता है और आक्सिजन को आवश्यकता से अधिक होने पर त्याग देता है।

पौधा कार्बन डि आक्साइड रोशनी में अपने हरे अंगों ही द्वारा ग्रहण कर सकता है। अँधेरे में यह क्रिया बंद हो जाती है। यह वायु मनुष्यों और अन्य पशु प्राणियों के लिये हानि-कारक है। इसी कारण रात्रि के समय पेड़ों के नीचे सोना हानिकारक है; क्योंकि रात्रि के समय पौधे अधिक कार्बन त्याग करते हैं। यह वायु मनुष्यों और अन्य प्राणियों के सांस लेने से बाहर आती है और मरुत-कोष में मिल कर वनस्पति तथा प्राणियों को उपयोगी होती है। अग्नि के जलने और पदार्थों

के सड़ने से भी प्रतिदिन बहुत सा कार्बन डि आक्साइड़ मरुत-कोष में मिलता है।

कार्बन साधारण कोयले को कहते हैं। जब इसका संसर्ग आक्सिजन वायु से होता है तो इस संयुक्त पदार्थ को कार्बन डि आक्साइड कहते हैं। कार्बन और अन्य पदार्थों से जिन्हें पौधे ने पृथिवी से ग्रहण किया है, पौधे अपनी पत्तियों द्वारा भोज्य पदार्थ तैयार करते हैं और इन्हें अपने उन अंगों में भेजते हैं जहां बाढ़ होती है। इनसे पौधों के अंग बनते हैं अथवा वे इन्हें अपने किसी अंग में अपने आगामी काम के लिये एकत्रित करते हैं।

फूल—जब पौधा तरुण अवस्था को प्राप्त होता है उसमें फूल आने लगते हैं। फूलों से दाना बनता है। अच्छा और अधिक दाना उत्पन्न होने के निमित्त अधिक और निर्दोषित फूलों की आवश्यकता है। साधारण अवस्था में फूलों के चार अंग होते हैं। इन्हें अंग्रेजी मे क्रमशः सीपेल, पीटल, ऐंड्रोशियम और गायनीशियम कहते हैं। क्रमशः ये चारों अंग एक डंठल पर घेरे के आकार में एक के ऊपर एक करके बैठे होते हैं। बाहर की ओर पहले सीपेल का घेरा होता है इसके भीतर पीटल का घेरा, इसके भीतर ऐंड्रोशियम और इसके भीतर गायनीशियम का घेरा होता है। उदाहरण के निमित्त हम सरसों का फूल देखें। साधारण सरसों का फूल पीला होता है। पीला अंश जो तुरंत ही दृष्टिगोचर होता है बहुत ही मुलायम पत्तियों का बना होता है। यह फूल का दूसरा घेरा है इसे पीटल कहते हैं। पहला घेरा इसके

बाहर वाला है, जिसकी पत्तियाँ छोटी पतली और पीटेल घेरे की पत्तियों से कुछ कड़ी होती हैं। इस घेरे को सीपेल का घेरा कहते हैं। प्रत्येक पत्ती को सेपेल कहते हैं।

पीटेल के भीतर तीसरी कटोरी को एँड्रोशियम कहते हैं इस कटोरी पर सरसों के फूल में बहुत ही सूक्ष्म छः मुलायम डंठल होते हैं और इन छः डंठलों पर छः थैलियाँ लगी होती हैं। इन थैलियों को अंग्रेजी भाषा में ऐंथर कहते हैं जिनमें पराग केसर होता है। पराग केसर आटे के समान होता है और सरसों में पीले रंग का होता है। इन डंठलों को थैलियों समेत स्टैमन कहते हैं।

पराग, केसर की छान बीन यदि खुर्दबीन से की जाय तो प्रति दाना गोलाकार दिखाई देता है। इन पराग केसर का अधिक होना अति आवश्यक है, जिससे वे हवा में उड़ कर तथा मधुमक्खियों द्वारा गर्भ तक पहुँच सकें और उनके संयोग से दाना बनें। पराग केसर को अंगरेजी में पोलेन ग्रेन अथवा पोलेन कहते हैं।

फूल का चौथा अंग गर्भ का है। यह चौथी कटोरी तीसरी कटोरी के भीतर होती है। इसे अंगरेजी भाषा में गाय-नीशियम कहते हैं। बढ़ने पर यह गर्भ फली, फल तथा बीज बन जाता है।

पूरे तौर से तैयार हुए गर्भ को बीज कहते हैं। वास्तव में बीज एक छोटा पौधा है जो बढ़ कर एक दूसरी सूरत धारण कर लेता है। यदि हम किसी फल के दाने को देखें तो हमको ज्ञात होगा कि उस पर छिलका चढ़ा है। यह

कई तह में होता है। छिलके का काम बचाव करना होता है। बीज के दो हिस्से होते हैं। एक संचित भोज्य पदार्थ जो भावी पौधे के काम में आता है। दूसरा अंकुर जो बीज का जीवित भाग है और जिसमें से आगामी जड़ और पेड़ी पैदा होती है। गेहूँ, चावल, मकई में संचित पदार्थ (Food material) को हम आटे के काम में लाते हैं।

अंकुर को अंग्रेजी में एमृब्रिओ कहते हैं। एमृब्रिओ के दो भाग होते हैं, प्लीम्यूल (Plimule) और रेडिकल (Radical), प्लीम्यूल से भावी पेड़ी और पत्ते और रेडिकल से भावी जड़ पैदा होती है। बीज में दो छेद होते हैं। एक हाइलम कहलाता है, दूसरा माइक्रोपिल। हाइलम वह स्थान है जहां पर पहले बीज की परवरिश करनेवाला अंश जुड़ा हुआ था। माइक्रोपिल वह छेद है जिसमें से आगामी अंकुर निकलता है। बीज को पानी में फुला देने से अथवा उसे उबाल कर कपड़े से पोंछ डालने पर जब बाहरी पानी सूख जाता है तब दबाने से इन छिद्रों द्वारा पानी निकलता है, जिससे उनकी स्थिति का ज्ञान होता है।

२—बीज से नए पौधे का जमना।

बीज के जमने के लिये हवा, गरमी, और नमी की आवश्यकता पड़ती है। इन पदार्थों के एकत्रित होने पर अच्छे बीज का जमना संभव होता है। जब बीज पृथिवी में तथा और किसी स्थान पर जहां आवश्यक गर्मी हवा और नमी है रख दिया जाय तो वह पहले फूलता है। उसमें से जड़-

वाला अंकुर बीज के छिलके को तोड़ कर बाहर आता है और पृथिवी की ओर चल कर भीतर धँस जाता है । पेड़ीवाला अंकुर धीरे धीरे बढ़ कर हवा में ऊपर उठता है और उसी से पत्ती और पेड़ी बनती हैं ।

बीज को बोते हुए इस बात का ध्यान रखना अति आवश्यक है कि बीज बहुत गहराई में न पड़े, नहीं तो उसका अंकुर जो बाल्यावस्था में अत्यंत कोमल होता है नीचे दब जाने के कारण ऊपर न आ सकेगा, वह नीचे ही दब जायगा और मर जायगा । यदि नीचे की मिट्टी बहुत सख्त होगी तो जड़ उसमें नहीं धँस सकेगी और पौधे को भोजन न प्राप्त होगा जिससे पौधा मर जायगा । इस कारण जमीन तैयार करके तब बीज बोया जाता है । प्रकृति अपने नियम के अनुसार "पहले भोजन का सामान एकत्रित करके तब उसके भोगनेवाले को पैदा करती है" । जड़ पहले से पौधे के लिये भोजन प्राप्त करती है और पौधे के अंगों तक पहुँचा कर उसे बढ़ने का अवसर देती है । पौधा जब बहुत छोटा रहता है और इसकी जड़ें इस योग्य नहीं होतीं कि पृथिवी से भोजन प्राप्त कर सकें, उस समय जैसे मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों के लिये प्रकृति ने दूध एकत्रित किया है उसी रीति से उनके लिये भोज्य-पदार्थ (Food material) पौधे के लिये बीज में जमा रहता है । यह भोजन का पदार्थ बीज में कलल अथवा काटलीडान के भीतर तथा बाहर जमा रहता है जिससे दो प्रकार के बीज होते हैं, जिन्हें क्रमशः एल्ब्यूमिंस और एक्स-अल्ब्यूमिंस कहते हैं । यह कलल बीज से दो प्रारंभिक पत्तियों के समान

निकलते हैं और पौधे के जमने के अवसर में कभी जड़ के पास जमीन ही में रह जाते हैं जैसे मकाई के बीज में और कहीं कहीं ऊपर पृथिवी पर पौधे की पेड़ी के साथ हाईपोकाटिल के बढ़ने से ऊपर चले जाते हैं जैसे लौकी और करेले में। उन बीजों को जिनमें कलल पृथिवी में रह जाते हैं हापोजियल कहते हैं और दूसरे को जिनमें कलल ऊपर आ जाते हैं एप-जियल कहते हैं।

जड़ धीरे धीरे पृथिवी में बढ़ती जाती है और स्वयं पृथिवी से भोजन प्राप्त कर लेती है। जड़ में अनेक शाखाएँ निकलती हैं और वे अपना काम करती हुई पौधे का पालन पोषण करती हैं। पृथिवी के ऊपर पेड़ी बढ़ती है और उसमें शाखाएँ, पत्तियाँ, फूल, फल लगते हैं। हम कह आए हैं कि बीज में भोजन पदार्थ जमा रहता है। प्राय: यह स्टार्च, इन्यूलिन, तेल, शक्कर इत्यादि पदार्थों की हालत में जमा रहता है। पौधे के प्रयोग के निमित्त इन पदार्थों का घुल जानेवाली हालत में होना आवश्यक है। ये पदार्थ हवा, पानी, गरमी से रासायनिक क्रिया द्वारा घुल जानेवाली अवस्था में परिवर्तित हो जाते हैं जिसमें वे एक प्रकार की शक्कर की हालत में आ जाते हैं। इस प्रकार पौधा उनका प्रयोग करता है। यदि जमते हुए मटर, गेहूँ अथवा चने को चूसिए तो उसका स्वाद मीठा मालूम होगा।

२—पानी में घुले हुए पदार्थ।

पौधा अपना भोजन पानी ही द्वारा प्राप्त करता है। पानी में पौधे के भोजन के पदार्थ घुले रहते हैं, जैसे नमक अथवा

चीनी घुल जाती है। यदि उसे जबान से न चखें तो वह दिखलाई नहीं देती।

पानी में घोलने की इतनी शक्ति है कि साधारणतः शुद्ध जल का मिलना असंभव होता है। शुद्ध जल के निमित्त पानी को भपके से उतारते हैं जिसे डिस्टिल्ड वाटर अथवा उतारा हुआ पानी कहते हैं। पानी जो बरसता है उसमें कई प्रकार की वायु घुली रहती है। कुँवा और तालाब के पानी में पृथिवी के बहुत से अंश कई प्रकार के खार इत्यादि घुले हुए होते हैं। घुले हुए पदार्थ आवश्यक परिमाणों में पौधों का भरण पोषण करते हैं।

४—पौधों की भीतरी बनावट।

जड़, पेड़ी, पत्ते, फूल, फल पौधे के हर एक अंग नाना आकार प्रकार के छोटे छोटे खानों से बने हुए हैं। इस एक खाने को अंगरेजी में (Cell) सेल कहते हैं। इनमें से कुछ सेल मक्खी के छत्तों के समान होते हैं और उनका मिलाव भी एक दूसरे से उसी प्रकार होता है जैसा कि मक्खी के छत्ते का। इसी कारण इसका नाम सेल पड़ा।

खुर्दबीन द्वारा पौधों के भिन्न भिन्न अंगों को देखने से उनकी बनावट में अंतर मालूम हो जाता है। किस प्रकार उनका निर्माण हुआ, वे कैसे नष्ट होते और बढ़ते हैं इत्यादि बातें वनस्पतिशास्त्र के गूढ़ विषय हैं। कृषि महाविद्यालय तथा वनस्पति भवन में पौधों के अंश कोई समझदार आदमी खुर्दबीन के द्वारा देखकर समझ सकता है। इन्हीं सेलों के द्वारा पृथिवी के नीचे जड़ से लेकर ऊपर फुनगी तक पौधे को

भोजन पहुँच जाता है और इन्हीं में होकर उसके प्रत्येक अंग मे पहुँचता है।

सेल द्वारा पौधे निर्मित होते, बढ़ते और टूटते हैं। कुछ सेल खाली होते हैं; कुछ सेल द्वारा भोज्य पदार्थ पौधे के एक अंग से दूसरे अंग में आते जाते हैं; कुछ सेल में भोज्य पदार्थ जमा होते हैं, कुछ सेल में भोज्य पदार्थ छनते हैं, इत्यादि अनेक क्रियाएँ होती हैं जो देखने और समझने में बड़ी मनोरंजक हैं। एक सेल से दूसरे सेल में किस प्रकार भोजन पदार्थ जाता है यह एक साधारण प्रयोग से समझ में आ जायगा। एक नलिका, जिसमें कोई गाढ़ा तरल पदार्थ भरा हो और उसके मुँह पर एक झिल्ली लगी हो, पानी के ऊपर रक्खी जाय तो देखने में आवेगा कि गाढ़ा तरल पदार्थ पानी पर उतर रहा है और पानी नलिका में चढ़ रहा है। इस विधि को ओसमैटिक प्रोसेस (Osmatic process) कहते हैं।

५—पौधा किन वस्तुओं से बना है।

पौधे में बहुत बड़ा हिस्सा जल का होता है। हरे बढ़ते हुए नवीन पौधे में आठ हिस्से में सात हिस्से तक पानी हो सकता है। तरुण अवस्था में चार हिस्से में तीन हिस्से जल के होते हैं और पौढ़ बीज में आठ हिस्से में एक हिस्सा जल पाया जाता है।

पौधे के सूखने का कारण यह होता है कि उसमें का पानी सूख जाता है। उसे जला देने से केवल थोड़ी सी राख रह जाती है। बहुत सी वायु धुएँ के रूप में निकल कर,

मरुत-मंडल में मिल जाती है। राख में पौधे के वे अंश शामिल हैं जो उसने पृथिवी से प्राप्त किए हैं।

यदि राख की रासायनिक मीमांसा कर के देखा जाय तो राख में फास्फोरस, पोटाश, सोडा, मैंगनीशिया, चूना, आयरन आक्साइड, सीलिका, गंधक, खनिज पदार्थ आदि शामिल हैं। यह मरे हुए पौधे की मीमांसा है। जीवित पौधे में सेल काम करते हैं। सेल में एक लिबलिबा पदार्थ होता है जिसे प्रोटोप्लाज्म अथवा जीवन-रस कहते हैं। बहुत से वैज्ञानिकों का मत है कि जीव इसी लिबलिबे पदार्थ में रहता है। जीवित अवस्था में प्रोटोप्लाज्म की मीमांसा नहीं हो सकी है। मरी अवस्था में इसकी रासायनिक मीमांसा से विदित होता है कि इसमें पौधे के करीब करीब सब अंश शामिल हैं। पौधे तथा अन्य जीवधारी इसी के आज्ञानुसार काम करते हैं।

६—पौधे का भोजन।

पौधे की बाढ़ और परवरिश करने पर कृषिकार को सदा दत्तचित्त रहना चाहिए। उसे उन पदार्थों को जिनसे पौधे को भोजन प्राप्त होता है बचाने की चेष्टा करनी चाहिए और किसी लाभ को उनकी रक्षा के लिये अधिक न समझना चाहिए।

पौधा, जैसा कि कहा जा चुका है, पानी के द्वारा अपना भोजन प्राप्त करता है। जिन वस्तुओं से पौधा अपना भोजन प्राप्त करता है वे पदार्थ मिश्रित दशा में जमीन से जड़ द्वारा पानी में घुल कर पत्तियों तक ले जाए जाते हैं। पत्तियों में कई क्रियाओं द्वारा ये सब पदार्थ पौधे के सम-पदार्थ में

तबदील होते हैं और उन स्थानों पर लाए जाते हैं जहां बाढ़ होती है। फुनगी, कली, इत्यादि कोमल अंगों में बाढ़ बड़े वेग से होती है। हम कह आए हैं कि पौधे कई पदार्थों से बनते हैं। इससे यह मालूम होता है कि पौधे को बढ़ने के निमित्त किन किन पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। यह आवश्यकता उस समय से प्रारंभ हो जाती है जब कि पौधा बीज में जमा किया हुआ भोजन खा चुकता है। पौधे को (अ) आक्सिजन, हाइड्रोजन, कार्बन नाइट्रोजन और क्लोरीन की आवश्यकता पड़ती है। ये पदार्थ वह हवा से ग्रहण करता है। (ब) वह पोटाश, फ़ासफ़ोरस, मैगनिशिया, चूना, सोडा, लोहा, गंधक फासफोरिक एसिड, सल्फ्यूरिक एसिड, सीलिका, क्लोरीन, कुछ आइओडीन पृथिवी से ग्रहण करता है। इनमें से पहले छः पदार्थ आवश्यक हैं परंतु बाकी के रहने से पौधों को लाभ पहुँचता है। पहले छः पदार्थों के बिना पौधा भली भांति नहीं बढ़ सकता, वह रोगी रहता और भूखों मर जाता है।

पौधों के बढ़ने के लिये पृथिवी का होना आवश्यक नहीं है। बहुत से वनस्पति-शास्त्र के विज्ञान-वेत्ताओं ने इस बात की कृत्रिम रूप से परीक्षा की है कि पौधा बिना किसी पृथिवी पर लगाए हृष्ट पुष्ट, बढ़ता, फलता और फूलता है परंतु कृषि कार्य्य के लिये बिना पृथिवी के यह एक कठिन क्या असंभव बात है कि गिनती में इतने ज्यादा पौधों के लिये असाधारण रूप से भोजन पहुँचाया जाय। प्रकृति पृथिवी द्वारा यह पदार्थ बड़ी सुगमता से पौधों को पहुँचाती है और वे बढ़ते और फलते

फूलते हैं। बिना पृथिवी के पौधों का भोजन एकत्रित करने में और उनकी देख भाल करने में बहुत खरचा और परिश्रम पड़ेगा।

हम पर यह विदित हो गया कि पौधा प्राकृतिक हालतों में भोजन कहां से प्राप्त करता है, इसके लिये—

(१) हवा,

(२) पानी और

(३) पृथिवी मुख्य पदार्थ है।

प्राकृतिक दशा में हवा का कोष आगाध है जो कभी खाली नहीं होता। इस ओर से कृषक निश्चिंत रहता है।

पौधे के निमित्त पानी का प्राप्त होना अति आवश्यक है। बिना इसके वनस्पति जीवन असंभव है।

प्राकृतिक अवस्था में सब स्थान ऐसे नहीं मिलते जहां पृथिवी में पौधे के सब भोज्य पदार्थ प्राप्त होते हों। कृषिकार का कर्त्तव्य अनेक रूप में इस ओर है जिसके द्वारा वह अच्छा तथा बुरा कृषक समझा जाता है। अच्छा कृषक पौधों की कुल आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। अमेरिका के उन्नति के शिखर पर पहुँचे हुए कृषकों से लेकर जो आधुनिक रसायन और वनस्पति विद्या का प्रयोग करते हैं पृथिवी की ताकत और उसकी कमी को जान लेते हैं तथा उन्हें पूरा करते हैं, अफ्रीका के कृषिकार्य में नौसिखुए अपनी विद्या और पुरुषार्थ के अनुसार कृषिकर्म्म करते हैं। भाफ, बिजली, सूर्य की ताक़त तथा बारूद इत्यादि मेहनत बचाने के काम में लाए जाते हैं और उनसे पृथिवी और कृषि की आवश्यक दशाओं को अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा की जाती है।

७-हवा से प्राप्त पौधे का भोजन।

वायुमंडल कई वायुओं का मिश्रण है। इसमें अधिकांश नाइट्रोजन और आक्सिजन वायु का है। नाइट्रोजन सौ में ७९ हिस्सा पाई जाती है और शेष में आक्सिजन, कार्बोनिक एसिड गैस और अन्य वायुएँ हैं। पौधे की बाढ़ और परवरिश के लिये इन वायुओं का होना अत्यंत आवश्यक है। पौधा वायु-मंडल से केवल कार्बोनिक एसिड गैस सीधे ग्रहण करता है। इसकी क्रिया पहले कही जा चुकी है। पौधा मरुत-मंडल के अगाध कोष से नाइट्रोजन इस प्रकार ग्रहण नहीं कर सकता, किंतु नाइट्रोजन दूसरी वस्तुओं के संयोग में संयुक्त-नाइट्रोजन (अथवा कंबाइंड नाइट्रोजन) के रूप में पौधों को प्राप्त होता है। नाइट्रोजन पौधों के लिये बहुत उपयोगी है। यह करीब करीब सभी दानों में पाई जाती है। दाल की सभी फसलों में नाइट्रोजन का अंश रहता है। पशु प्राणियों के लिये नाइट्रोजन बड़ी पौष्टिक है। नाइट्रोजन का अधिक प्रयोग करने में फलीदार पौधों में विशेषता होती है। फलीदार पौधों की जड़ों में पुत्तियाँ होती हैं जिनमें छोटे छोटे कीड़े रहते हैं जो उन पौधों की जड़ों पर रहते हैं, वे हवा से नाइट्रोजन को प्राप्त करके पौधों को पहुँचाते हैं। दूसरे पौधे नाइट्रोजन खार (नाइट्रेट्स Nitrates) तथा अमोनिया के रूप में ग्रहण करते हैं।

आक्सिजन गैस को पौधा पानी द्वारा प्राप्त करता है। शुद्ध पानी आक्सिजन और हाइड्रोजन वायु के मेल से बना

हुआ है। जल जो बरसता है शुद्ध होता है, केवल उसमें कुछ मरुत-मंडल की वायु मिली होती है। जब पानी पृथिवी पर पड़ता है वह उसमें घुल जाती है।

अमोनिया एक प्रकार की संयुक्त वायु है। यह नाइट्रोजन और हाइड्रोजन दो तत्त्वों से मिलकर बनी है। अगर नौसादर और चूना मिलाया जाय और उस पर थोड़ा सा पानी डाला जाय तो उसमें से एक प्रकार की वायु निकलेगी। यह वायु अमोनिया वायु (Ammonia Gas) कहलाती है। यह बहुत जल्द उड़ कर हवा में फैल जाती है। पौधों के लिये यह अत्यंत उपयोगी होती है, क्योंकि इसके द्वारा पौधों को नाइट्रोजन प्राप्त होती है। इसका एकत्रित रखना परम आवश्यक है। घूरों में, खाद के ढेरों में, पशु के मूत्र में, यह गैस बनता और इसके उड़ जाने से खाद की कीमत कम हो जाती है, इस प्रकार खाद का एक उपयोगी भोजन का अंश नष्ट हो जाता है। खाद का भली प्रकार प्रबंध करने से यह गैस उसमें से अधिक नहीं उड़ने पाता और इस प्रकार हानि नहीं होती। इसके बनाने के तत्वों की जो उसमें मौजूद होते हैं हिफाजत रहनी चाहिए ताकि अमोनिया न बन सके और नाश न हो। अमोनिया पानी में बहुत जल्द घुल जाता है। कभी कभी यह इतना नीचे चला जाता है कि पौधा इसे प्राप्त नहीं कर सकता।

८—पानी से प्राप्त पौधे का भोजन।

पानी का काम पौधे में अधिकतर उसके भोजन पदार्थों को पहुँचाना है। इसके द्वारा पौधा आक्सिजन और हाइ-

ड्रोजन प्राप्त करता है, क्योंकि पानी इन्हीं दोनों तत्वों के मेल से बना है। पौधे को बाढ़ की अवस्था में तथा जब इसमें फूल लगने लगते हैं अधिक आक्सिजन की आवश्यकता होती है। अधिक जल जो पौधा प्राप्त करता है वह अपनी पत्तियों द्वारा या अन्य अंगों द्वारा त्याग देता है।

९—पृथिवी द्वारा प्राप्त पौधे का भोजन।

पौधा जिन पदार्थों से बना है, उनके खनिज अंश वह पृथिवी से प्राप्त करता है। उनमें से फासफोरस, पोटाश, अत्यंत आवश्यक हैं। सोडा, चूना, लोहा, सीलिका, मगेनिशिया, सलफर (गंधक) क्रमशः आवश्यक हैं। ये पदार्थ पौधा सलफेट, फासफेट, नाईट्रेट इत्यादि रूप में प्राप्त करता है। इस दशा में ये पानी में नहीं घुल सकते हैं। जो अंश पानी में नहीं घुल सकता वह पौधे में से निकले हुए एक प्रकार के तेजाब में घुल कर पौधे के भोजन के काम में आता है। यह तेजाब पौधा अपनी जड़ों द्वारा स्रवता है।

फासफोरस—दियासलाई पर जो लाल अंश रहता है वह फासफोरस पदार्थ है। दियासलाई पर लगा हुआ फासफोरस रासायनिक रीति से इस अवस्था में होता है कि बिना रगड़े नहीं जलता। शुद्ध फासफोरस हवा में तुरंत जल उठता है। इस कारण इसे पानी में रखते हैं। यह पदार्थ हड्डी में अधिक पाया जाता है। पशु इसका अंश वनस्पति प्राणी से प्राप्त करते हैं और वनस्पति प्राणी इसे पृथिवी से एकत्रित करते हैं।

पोटाश—यह पदार्थ राख में अधिक पाया जाता है। खास कर तंबाकू के पौधे में इसका अंश अधिक होता है। नाईट्रिक ऐसिड के संयोग से पोटाश से शोरा बनाया जाता है। इस कारण उन फसलों को जिन्हें पोटाश की आवश्यकता होती है शोरे और राख की खाद दी जाती है।

सोडा—क्लोरीन के संयोग से सोडियम नाईट्रेट अथवा साधारण नमक बनता है। यह पदार्थ पृथिवी में बहुत होता है। शायद ही किसी पृथिवी में इस खाद के देने की आवश्यकता पड़ती है। आग, तेल तथा लंप में पीला रंग, इसी पदार्थ की मौजूदगी के कारण दिखाई देता है। पृथिवी तल पर उगनेवाले पौधों मे अधिकांश पोटाश का होता है और सागर में उगनेवाले पौधों में सोडा अधिक पाया जाता है।

सीलिका—चकमक पत्थर तथा बालू सीलिका पदार्थ के रूप हैं। यह पदार्थ, जौ, गेहूं, तथा बाँस इत्यादि पौधों में अधिक पाया जाता है और इसी पदार्थ के कारण चमक होती है। बालू रूप में यह पदार्थ पृथिवी में प्रायः अधिक पाया जाता है।

आयरन—लोहा पौधों के बढ़ने के लिये अत्यंत उपयोगी है। बिना इसके पौधा हरा नहीं रह सकता और न अच्छी तरह उगता बढ़ता है।

सलफ़र—गंधक पौधों में विशेष रूप से पाया जाता है जैसे सरसों, लहसुन, प्याज, मूली इत्यादि में।

१०—पौधा कैसे भोजन करता है।

पौधे की भोजन करने की रीति उसकी भीतरी बनावट

को भली भांति समझने पर निर्भर है। यह विषय वनस्पति शास्त्र का है। यहां हम केवल यह कहना चाहते हैं कि पृथिवी में पौधे के भोजन संबंधी खनिज पदार्थ वर्तमान रहते हैं। जब पानी पृथिवी में सूख जाता है वे पदार्थ उसमें थोड़ी मात्रा में घुल जाते हैं, जैसे पानी में नमक घुलता है और हम उसे घुलता हुआ नहीं देख सकते जब तक कि उसे न चखें। पानी के साथ अमोनिया या नाइट्रेट्स और कार्बोनिक एसिड भी शामिल रहते हैं। जब ये पदार्थ घुल जाते हैं तो वे मूल–केश (Root Hair) द्वारा पौधों में चढ़ते हैं और क्रमशः पौधों की जड़ों में हो कर पेड़ी द्वारा पत्तियों में जाते हैं और वहां पौधे के सम पदार्थों में तबदील होते हैं और तब पौधे में नालियों द्वारा उन स्थानों को जाते हैं जहां बाढ़ होती रहती है और उनसे पौधों के अंग निर्मित होते हैं।

सब पौधे एक ही मात्रा में खनिज पदार्थ नहीं ग्रहण करते और न एक ही प्रकार के खनिज पदार्थ सब पौधों को आवश्यक हैं। एक ही स्थान और एक ही पृथिवी में कई प्रकार की वनस्पतियां होती हैं। वे अपनी प्रकृति और आवश्यकता के अनुसार अपना भोजन ग्रहण करती हैं। भिन्न भिन्न फसलों की प्रकृति और आवश्यकता को समझना आवश्यक है। वनस्पति और रसायन शास्त्र द्वारा इन बातों का ज्ञान होता है। साधारण अनुभव से उनकी प्रकृति और अवस्था का भी बोध होता है।

पाँचवाँ परिच्छेद ।

पृथिवी, उसकी उत्पत्ति और बनावट ।

वैज्ञानिकों का मत है कि पहले धरती जिस पर हम लोग रहते हैं सूर्य्य से अलग हुई और आकर्षणशक्ति द्वारा वर्त्तमान दशा में है । पहले यह एक जलते हुए पदार्थ का गोला थी, धीरे धीरे यह ठंडी होने लगी । लाखों वर्ष में ठंढी होने पर इसके ऊपर का हिस्सा ठंढा हुआ और गर्मी भीतर होती गई जैसा कि ज्वालामुखी पर्वतों, गरम चश्मों और अन्य उदाहरणों से साबित है कि पृथिवी के भीतर गर्मी मौजूद है । पृथिवी के ठंढा होने पर गला हुआ अंश जम कर सख्त और कड़ी हो गया । इस सख्त भाग को चट्टान कहते हैं । ये चट्टाने बराबर बनती और नाश होती रहती हैं । इनकी उत्पत्ति, बनावट, और पतन भूगर्भ विद्या का गूढ़ विषय है । यह पृथिवी जिस पर हम लोग रहते हैं और खेती करते हैं इन्हीं चट्टानों के टूटने से बनी है । सख्त से सख्त चट्टाने कई घटनाओं के अधीन टूटती चली जाती हैं और इनसे नवीन पृथिवी बनती चली जाती है । ये क्रियाएं बहुत धीरे धीरे होती हैं यहां तक कि साधारण तौर पर जान नहीं पड़तीं परंतु धीरे धीरे ये क्रियाएं जारी हैं । इनका एकत्रित परिणाम बहुत दिखलाई पड़ता है जैसे गंगाजी के दहाने पर सुंदर बन की धरती । चट्टानें भी कई प्रकार

की हैं। जैसी चट्टान होती है उससे उसी प्रकार की धरती बनती है। कुछ चट्टानें ऐसी होती हैं जो बलुई हैं अथवा जब वे टूटती हैं उनके अणु दरदरे रहते हैं, बहुत बारीक नहीं होते। कुछ ऐसी हैं जो क्रमशः बहुत बारीक हो जाती हैं जिनसे चिकनी मिट्टी बनती है। बालू के दाने बहुत सख्त होते हैं। वे बड़ी कठिनता से पीसे जा सकते हैं। इससे उनमें बहुत दरदराहट रहती है। चिकनी मिट्टी में दरदराहट नहीं होती क्योंकि उसके अणु बहुत बारीक होते हैं।

चट्टानों के भेद से धरतियों में भी भेद होता है। एक मुल्क की धरती दूसरे मुल्क की धरती से, एक ज़िले की धरती दूसरे ज़िले की धरती से, एक खेत की धरती दूसरे खेत की धरती से भिन्न होती है। इस भेद से ज़मीनों की प्रकृति और मूल्य में भी बड़ा अंतर पड़ता है। एक प्रकार की मिट्टी पर एक प्रकार की फसल को सुभीता होता है, दूसरे पर किसी और को, और किसी किसी पर सब प्रकार की फसलें बढ़ती हैं। स्थान और समय के अनुसार पृथिवी की अनेक हालतें होती हैं।

प्रायः चट्टानें खनिज पदार्थों की बनी होती हैं। उनमें जीवित प्राणी (Organic Matter) का बहुत कम अंश होता है। चट्टान के चूरे और खेत की मिट्टी का मुकाबला करने से ज्ञात होता है कि खेत की मिट्टी का रंग अधिक काला है। यदि दोनों तौल कर जलाए जायँ तो खेत की मिट्टी का तौल कम हो जायगा और चट्टान का चूर्ण वैसा ही रहेगा। इससे ज्ञात होता है कि खेत की मिट्टी का कुछ अंश जल गया है। यह जला

हुआ अंश वनस्पति तथा पशु प्राणी का अंश था। बिना जला हुआ अंश खनिज पदार्थ का था जो नहीं जला। जले हुए अंश को जीवित अंश अर्थात् अंगरेजी में आरगैनिक मैटर (Organic Matter) कहते हैं और बिना जले अंश को खनिज अथवा इन-आरगैनिक अंश (Inorganic Matter) कहते हैं। इससे पृथिवी की मोटी मीमांसा में—

(१) चट्टान का चूरा अथवा बालू और चिकनी मिटी

(२) जीवित पदार्थ (Organic Matter) और

(३) पानी का अंश अंश होता है।

चट्टानें कई कारणों से टूटती और भुरकुस होती हैं। उनके टूटने के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं।

गर्मी और सरदी का हेर फेर—मौसिमों के अदल बदल तथा दिन की तेज गर्मी और रात की सरदी से क्रमशः बड़ा भारी असर चट्टानों पर पड़ता है। वे इनके प्रभाव से कड़क जाती हैं और टूट कर टुकड़े टुकडे हो जाती हैं।

बिजली के गिरने से चट्टानें फूट कर टुकड़े टुकडे हो जाती हैं।

पानी—पानी के बरसने से चट्टाने भीग कर मुलायम हो जाती हैं। इन पर दूसरे प्राकृतिक कारण जैसे गर्मी सरदी का प्रभाव पड़ता है। इस कारण से चट्टानें टूट जाती हैं। जहां पर बरफ और पाला पड़ता है वहां पानी चट्टानों के बीच की दरारों में जमा हो कर जम जाता है। जमने पर बरफ फैलती है और उसके प्रभाव से दो पास की चट्टानें एक दूसरे से टकरा कर टूट जाती हैं। पानी का प्रबल प्रभाव हवा के

संयोग में होता है। पानी के बहाव के वेग से भी चट्टानें घिस जाती और कट जाती हैं। पानी में चट्टानों का कुछ न कुछ अंश अवश्य घुल जाता है। इस प्रकार बहुत सी चट्टानें झंझरा हो जाती हैं। इस अवस्था में आसानी से अन्य कारणों के प्रभाव से वे टूट जाती हैं।

हवा—पानी के संयोग में हवा का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। हवा जिन पदार्थों द्वारा बनी है उसमें से आक्सिजन के प्रभाव से चट्टानों पर मुर्चा लग जाता है। कार्बोनिक एसिड गैस के संयोग में एक हलका तेज़ाब बनता है जिसका प्रभाव चट्टानों पर पड़ता है। हवा का प्रभाव लोहे पर मुर्चा लगने पर देखा जाता है। जैसे चमकती हुई छुरी अगर बरसात में रख दी जाय तो थोड़ी देर में उस पर मुर्चा लग जाता है। यह मुर्चा लोहे से छुटता है। मुर्चा लग कर प्रायः लोहे के गगरों में छेद हो जाता है अथवा उनके पेंदे घिस जाते हैं।

पौधों का प्रभाव—बहुत से पौधे थोड़ी मिट्टी पा कर चट्टानों पर तथा चट्टानों के दरारों में उगते हैं। उनकी जड़ें दरारों में घुसती हैं, बढ़ती हैं और समय के अनुसार फैलती और मोटी होती जाती हैं, इनके जीवित बल से चट्टानें दब कर टूट जाती हैं। प्रायः इमारतों में खुदरो पीपल तथा बरगद के पेड़ों के उगने और उन्हें धार्मिक विचारों के अनुसार न काटने से उनका प्रभाव इमारत पर देखने में आता है। कहावत प्रसिद्ध है जहाँ लोहे के रंबे असमर्थ होते हैं वहां

पौधों की जडों तथा पेडों के प्रबल प्रभाव से चट्टानें टूट जाती हैं।

६-*पशुओं का प्रभाव*—सब पशुओं में श्रेष्ठ मनुष्य सुरंगें लगाता है, रेल निकालता है, कंकड़ कूटता है, नहरें काटता है। इसके अलावा पशु अपने रहने को मांद बनाते हैं चट्टानों पर चलते फिरते और उन पर रास्ता बनाते हैं। अपना शरीर घिसते हैं।

स्थानी और प्रस्थानी धरतियां।

स्थानी धरती--प्राय: ऐसा कम होता है कि जहां पर चट्टानें टूटती हैं वहीं पर धरती पडी रहे। परंतु कहीं कहीं चटानें फूट कर बारीक हो जाती हैं और अपने ही स्थान पर पड़ी रहती हैं। ऐसी धरती को स्थानी धरती अथवा अंगरेजी में सिडेंट्री सॉयल (Sedentry soil) कहते हैं। स्थानी धरती अच्छी किस्म की जमीन नहीं होती। उसकी सतह बहुत कम होती है जिससे पौधों की जडें उनके भीतर दूर तक अपने निमित्त काफी भोजन नहीं प्राप्त कर सकतीं। उन पर वृक्ष भी नहीं थम सकते। पानी के प्रभाव से प्राय: छोटे टुकड़े तो बह कर चले जाते हैं। बडे बडे कंकडीले टुकडे, बजरी या थोडी सी मिट्टी वहां पर रह जाती है। हिंदोस्तान में पच्छिमी घाटों की ओर ऐसी पृथिवी बहुत है। संयुक्त प्रांत में बुंदेलखंड तथा हिमालय पर्वत पर कहीं कहीं ऐसी जमीनें हैं। जब जडें उनकी सतह पार कर चट्टानों तक पहुंचती हैं तो वहीं रह जाती हैं। इन धर्तियों में पानी

भी नहीं थम सकता। वह जैसे ऊपर पड़ता, बह जाता है, और पृथ्वी सूख जाती है। जहां देश के ऊँचे भागों में इस प्रकार की धरतियां हैं प्राय: वे चट्टानें, जिनसे वह धरती बनी है, वर्तमान दिखाई देती हैं।

प्रस्थानी धरती।

प्रस्थानी धरती उसको कहते हैं जो अन्य स्थान से ले गए हुए पदार्थों से बनती है। प्राय: यह उन चट्टानों से, जिनसे कि यह धरती बनती है, बहुत दूर होती है। अधिक तर जितने प्रकार की धरतियां मैदानों में देखने में आती हैं वे प्रस्थानी हैं। कई कारणों से ये धरतियां पहाड़ों और चट्टानों से बह आती हैं और एकत्रित होती हैं और उनसे धरती बनती है। इसके मुख्य कारण हवा और पानी हैं।

पृथिवी के अंश आँधी तथा पवन से उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान को चले जाते हैं।

बहते हुए पानी के साथ पृथिवी के अंश बह निकलते है, और उनसे कई प्रकार की धरतियां बनती हैं। जब पानी ऊँचाई से बह निकलता है उस समय उसका वेग बहुत तेज होता है। उसके साथ बड़े छोटे कंकड़ और बजरी भी बह चलती है। कुछ दूर चलकर जब समतल मैदान पड़ता है पानी का वेग कम हो जाता है और कंकड़ वहीं रह जाते हैं। इसी प्रकार और आगे चलकर बजरी भी रह जाती है तथा और आगे चलकर बालू भी रह जाता है और पृथिवी के बहुत बारीक अंश बहकर थिरा जाते हैं।

संयुक्त प्रांत में ऐसी धरती गंगाजी के तट पर हरद्वार से लेकर इलाहाबाद तक तुलना करने से देखी जाती हैं। बंगाल की खाड़ी में जहां समुद्र और गंगाजी का संगम है वहां के बालू और सहारनपुर के बालू का मोक़ाबला करने से विदित हो जाता है कि दोनों स्थानों के बालू के अणुओं की बड़ाई में कितना अंतर है।

मैदान की धरतियां जिन में कई प्रकार के अणु मिले होते हैं प्रायः बहुत उपजाऊ होती हैं।

नदी जहां समुद्र से मिलती है और जहां पर उसकी कई शाखाएँ हो जाती हैं उसे नदी का डेल्टा कहते हैं। डेल्टा में नदी के साथ बह कर आई हुई बहुत बारीक सिल्ट जमा हो जाती है और समय पाकर उससे नई धरती बन जाती है। जीवित प्राणियों के अंशों से मिली हुई महीन मिट्टी को सिल्ट कहते हैं। यह सिल्ट बहुत स्थानों की स्थानी प्रस्थानी धरतियों का निचोड, मैदानों के धोवन, जमीन तथा चट्टानों के काटने से एकत्रित हो कर नदी के साथ बह निकलती है और जैसा ऊपर दिखाया गया है बहाव के वेग के अनुसार स्थान स्थान पर एकत्रित होती जाती है।

तालाबों में बहुत सी सिल्ट जमा होती है। जब तालाब सूख जाते हैं यह सिल्ट दिखाई पड़ती है। तालाबों की मिट्टी इस कारण बहुत उपजाऊ होती है कि उसमें बहुत से जीव, मछली, घोंघा, सिवार आदि मर जाते हैं और आस पास की धरतियों का निचोड़ धोवन बहकर उनमें आकर गिरता है।

छठाँ परिच्छेद ।

धरतियों का विभाग और उनकी परिभाषा ।

१–धरतियों के प्राकृतिक विभाग ।

भौतिक तथा रासायनिक क्रियाओं द्वारा जब चट्टानें टूट कर चूर्ण हो जाती हैं, तो उनमें बहुत कुछ परिवर्तन होता है। उनके रंग और रूप में अंतर पड़ता है और कई प्रकार की धरतियां बनती हैं। यदि टुकड़े बड़े बड़े हैं और पत्थर के टुकड़ों के आकार बेडौल हैं, तो पृथिवी पथरीली कही जाती है। यह पृथिवी कृषि-कार्य के लिये अनुपयोगी है। ऐसी पृथिवी पर न तो पौधा खड़ा ही रह सकता है और न उसमें से अपना भोजन ही प्राप्त कर सकता है। ऐसा ही अधिक या कम हाल कंकड़ीली जमीन का होता है। उनमें कुछ अंश महीन धरती का होता है परंतु उनमें भी अधिक कंकड या बजरी के होने के कारण कृषि नहीं हो सकती। इसके अलावा पोत के विचार से कुछ धरतियां महीन धरती की बनी होती हैं जिन पर अच्छी फसलें उत्पन्न होती हैं परंतु कुछ ऐसी हैं जिन पर कुछ नहीं होता। इनमें मटियार और बलुई धरती भी हैं।

२–मटियार धरती।

शुद्ध मटियार धरती छूने में चिकनी लसार होती है। उसको चुटकी में दबाने से दरदराहट नहीं मालूम होती।

जब उस पर पानी पड़ता है वह फिसलाऊ हो जाती है और पाँव में चिपकती है। प्राय: शुद्ध बालू या चिकनी मिट्टी खेतों में नहीं पाई जाती। बहुधा ये खेतों में मिली हुई पाई जाती हैं। कुछ शुद्ध बालू नदी के तीर पर ऊपर की सतह पर निकलता है और कुछ शुद्ध चिकनी मिट्टी तालाबों या अन्य जलाशयों में पाई जाती है। खेतों में इनके अधिक या कम अंश वर्तमान होने के कारण धरती बलुई या मटियार कहलाती है। यदि चार भाग में से तीन भाग चिकनी मिट्टी का हो और एक अंश या उससे भी कम या कुछ अधिक बालू हो तो ऐसी ज़मीन को मटियार ज़मीन कहते हैं, क्योंकि उसमें मिट्टी का अंश अधिक होता है।

मटियार ज़मीन जब सूखती है उसमें बड़ी बड़ी दरारें पड़ जाती हैं जिनके भीतर बहुत सा पानी भरता है। इस कारण उनकी सिंचाई निष्फल हो जाती है। मटियार धरती भींगने पर फूलती है और सूखने पर सिकुड़ती है तथा सख्त हो जाती है। गीली दशा में वह चिपकती है। हल या और कोई औजार चलाया जाय तो यह मिट्टी उसमें लगती है और उन्हें चलाने में बड़ी मेहनत पड़ती है और खींचने में अधिक बल और परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है, इस कारण मटियार जमीन 'भारी धरती' कहलाती है। इसके विपरीत बलुई जमीन 'हलकी धरती' कहलाती है, क्यों कि उसमें जोताई के औजार सुगमता से चलते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि तौलने में मटियार जमीन भारी हो और बलुई हलकी हो क्योंकि यदि सममाप जैसे एक सौ घन इंच (100 cubic

inches) बालू और एक सौ घन इंच मटियार ज़मीन अलग अलग तौली जाय तो मिट्टी का तौल १८० तोले के लगभग और बालू का तौल २५० तोले के लगभग होगा, जिससे ज्ञात होता है कि बालू मटियार जमीन से तौल में भारी होने पर भी "हलकी धरती" की गणना में है क्योंकि इसमें जोत के औजारों के चलने में आसानी होती है।

गीली मटियार ज़मीन में हल चलाने से दलदल हो जाती है जो सूखने पर टुकड़े टुकड़े नहीं हो सकती। ऐसी अवस्था में कृषिकार फसल के लिये ज़मीन जब तक कुछ सूख कर जोतने लायक न हो जावे, उसे जोतने से हानि उठाता है। बहुत सूख जाने पर हल पृथिवी पर बड़ी कठिनता से काम करते हैं। ज़मीन एक प्रकार कुछ खुरच जाती है, हल गहराई तक नहीं धँस सकता, कितने हल टूट भी जाते हैं। ऐसी पृथिवी कुम्हारों के बडे काम की है, जिससे वे अच्छे अच्छे बर्तन बनाते हैं। कृषिकार के लिये तो यह दुर्भाग्य का कारण हो जाती है।

मटियार जमीन में जल्दी पानी नहीं सोखता। बहुत पानी पड़ने पर उसमें सोखता है और अधिक समय तक उसमें रहता है। ऐसी जमीनों की सतह चाहे ऊपर सूख जाय परंतु उनके भीतर नमी मौजूद पाई जाती है। कम पानी पड़ने पर मटियार धरतियों पर असर नहीं होता। अधिकांश जल बह जाता है और उसके साथ कुछ पृथिवी भी घुल जाती है। जब पानी धीरे धीरे करके बरसता है और मटियार ज़मीन में जज्ब हो जाता है, तो वह अधिक समय तक

धरती में मौजूद रहता है। समयानुसार उससे पौधों को फ़ायदा होता है। कभी कभी जल के थमने से पृथिवी 'ठंढी' हो जाती है जिससे फ़सलों में गेरुई लग जाती है और नमी से हानि पहुँचती है, साथ ही धरती बंद हो जाती है और उसमें हवा का प्रवेश स्वच्छंदता से नहीं होता। अधिक पानी देते समय इस बात का विचार करना चाहिए। कभी कभी अधिक जल थमने के कारण धरती 'क्षार' अथवा रेहयुक्त हो जाती है।

मटियार ज़मीनों में पौधों का भोजन जिनसे वे बढ़ते हैं अधिक होता है। उनमें जो खाद दी जाती है जल्दी से नहीं बहने पाती, जैसा कि ऊपर कहा गया है। उनमें पानी को ग्रहण और धारण करने की शक्ति अधिक होती है। मटियार ज़मीनों में पौधों की जड़ें दृढ़ता से स्थापित होती हैं।

३—मटियार धरतियों के सुधारने की रीतियां।

१—बालू मिलाने से मटियार धरतियों की हैसियत सुधर जाती है। बलुए स्थान से गाड़ी पर बालू लाकर मटियार धरतियों में जोतने के समय बालू मिलाने से उनमें बालू अच्छे प्रकार से मिल जाता है। खाद के समान हर साल थोड़ा थोड़ा बालू यदि मटियार खेत में डाला जाय तो कुछ दिनों में खेतों की हैसियत सुधर जाती है।

२—खुर्चना और जलाना—इस रीति के अनुसार मटियार धरती देसी हल से तथा फावड़े से एक आध इंच खुर्च ली जाती है और जगह जगह पर घास फूस तथा जंगली खर पतवार एकत्रित करके जलाए जाते हैं। खर पतवार अधिक रखने की आवश्यकता नहीं। आंच अधिक तेज़ न होनी

चाहिए। अभिप्राय यह है कि मिट्टी किसी क़दर भुन जावे जिससे उसका चिपकना कम हो जाय और पुनः वह जोतने पर महीन टुकड़े होकर धरती में मिल जाय। आँच अधिक होने पर मिट्टी पक जाती है और खपड़े की भाँति उसका फूटना दुस्तर हो जाता है।

इस बात का विचार करना चाहिए कि तप्त धरती पर बैलों को न चलाया जाय। कुछ दिनों तक रुक रहने पर धरती जब अच्छी तरह से ठंढी हो जाय तब उसे जोतना और उस पर हेंगा चलाना उचित है। बैलों को तप्त धरती पर चलाना निर्दयता है और उससे उनको खुर की बीमारी हो जाने का भय रहता है। इस क्रिया में ज़मीन में राख की खाद मिलाने से भी लाभ होता है।

३—ताज़ा गोबर तथा लीद डालने से ज़मीन खुल जाती है और उसकी चिकनाहट कम होजाती है। ताज़ा गोबर और सड़े हुए गोबर में भेद है। सड़ा हुआ गोबर महीन हो जाता है और उसमें लसी आ जाती है। ताजे गोबर में दरदराहट होती है।

४—हरियाली खाद देने से—कोई फसल बो कर उसे धरती में जोतने और उसको उसी में सड़ने को छोड़ देने को हरियाली की खाद कहते हैं। इससे धरती खुल जाती है।

५—बहुत से खेतों में पानी एकत्रित रहने से वे 'ठंढे' हो जाते हैं, उनमें हवा का आवागमन अच्छी तरह से नहीं होता। ऐसी धरतियों में पानी का निकास करने से पृथिवी की हैसियत अच्छी हो जाती है।

६—अच्छी और गहरी जोताई से भी मटियार ज़मीनों की हैसियत सुधर जाती है, क्योंकि धरती अच्छी तरह से सूर्य की किरणों से जलती है।

४—बलुई धरतियाँ।

चट्टान के बारीक टुकड़ों को जो दरदरे और एक ही आकार के होते हैं बालू कहते हैं। शुद्ध बलुई ज़मीन अनुपजाऊ और कृषि के अयोग्य होती है। चिकनी मिट्टी बहुत बारीक अणुओं से बनी होती है जैसे यदि कुछ साधारण धरती को एक ग्लास में घोल दें और उसके पानी को निथारें तो बालू के बड़े बड़े टुकड़े ऊपर से बह कर धरती पर गिर कर जमा हो जाते हैं। छोटे छोटे टुकड़े पेंदे में जमा हो जाते हैं जो चिकनी मिट्टी के अणु होते हैं। हाथों से छूने से मालूम होता है कि उनमें चिकनाहट है।

बलुई धरतियों की अवस्था उपरोक्त वर्णित मटियार धरतियों से अधिक या कम प्रतिकूल होती है। शुद्ध बालू के अणु बहुत सख्त होते हैं। उनमें प्रायः कार्ट्रेज (Quartz), चकमक पत्थर (Flint फ्लिंट), सिलिका (Silica) और अबरख (Mica) के टुकड़े पाए जाते हैं। ये शुद्ध रूप में नदी की सतह में, कहीं कहीं समुद्र के तट पर और नदी के तीर पर, तथा अन्य स्थानों में पाए जाते हैं। इनका रंग प्रायः चमकीला सफेद होता है, यद्यपि अन्य रंगों का भी बालू होता है।

बलुई धरतियां खुली हुई धरतियां कहलाती हैं। इनमें चिपकाहट नहीं होती। ये जोत के औजारों में नहीं चिपकतीं।

ऐसी धरतियां "हलकी" कहलाती हैं क्योंकि उनमें जोतने के औज़ारों के चलने में अधिक बल और परिश्रम नहीं पड़ता। उनमें पानी नहीं ठहरता बल्कि जल्दी बह जाता है। उनमें अधिक खाद और पानी देने की आवश्यकता पड़ती है जिससे कभी कभी लोग उन्हें क्षुधित और तृषित धरतियां भी कहते हैं। उनकी सतह पर पानी नहीं ठहरता और खाद जो दी जाती है वह पानी पड़ने पर बह जाती है, अथवा उनमें सूर्य की किरणों का प्रभाव पड़ने से या हवा के आवागमन से पानी जल्दी से सूख जाता है।

मटियार और बलुई धरतियों के उपरोक्त वर्णन से विदित है कि जहाँ पर मटियार धरतियों की अवस्था अच्छी है वहां बलुई धरतियों की अवस्था खराब है। जितना ही अधिक शुद्ध बालू तथा चिकनी मिट्टी का अंश उनमें होगा उसी के अनुसार धरतियों की अवस्था में चिकनी मिट्टी तथा बलुई मिट्टी के गुण तथा अवगुण देखने में आवेंगे। यदि चिकनी मिट्टी अधिक है तो ज़मीन में भारीपन, चिकनाहट और ठोसाई पाई जायगी। यदि बालू अधिक है तो धरती हलकी, खुली हुई, क्षुधित और तृषित होगी। बलुई धरतियों में फ़ायदे के साथ खेती वहाँ होती है जहाँ 'बहाव' का पानी प्राप्त होता है, जैसे नदी, नहर, या पोखरों का पानी, क्योंकि ऐसे जल के साथ सिल्ट का बहुत बड़ा अंश बह कर आता है और धरती के साथ मिल जाता है जिससे धरती उपजाऊ हो जाती है। इसके अतिरिक्त जहाँ खाद और पानी प्राप्त होता है वहाँ की बलुई धरतियाँ भी उपजाऊ होती हैं।

इस प्रकार न तो बिलकुल बलुई और न तो बिलकुल मटियार ही धरती खेती के लिये सबसे अच्छी होती है। इन दोनों प्रकार की जितनी ही शुद्ध धरती होगी उसी क़द्र उसमें कृषि के अनुकूल गुणों का अभाव होगा। प्रायः दुमट धरतियाँ कृषि के लिये सबसे अच्छी होती हैं क्योंकि उनमें दोनों प्रकार की धरतियों के गुण पाए जाते हैं और उनकी बराबरी के मेल के कारण अवगुण कम हो जाते हैं। प्रायः मटियार दुमट से बलुई दुमट अच्छी होती है। उन पर सब प्रकार की फसलें चाहे ज़मीन के ऊपर फलने फूलने वाली हों अथवा ज़मीन के भीतर पैदा होनेवाली हों, भली भांति उत्पन्न हो सकती हैं। हर अवस्था में उद्योग तथा अधिक खाद और पानी से धरतियों की उन्नति हो सकती है।

नदी के तीर अधिक बलुई धरती पर प्रायः सब प्रकार की फसलें नहीं पैदा हो सकतीं परंतु अच्छी कछार होने पर तो उन पर गोइंड़ के सदृश खेत बन जाते हैं जिससे उन पर अति उत्तम खती होती है।

बलुई धरती पर खाद, पानी और रखवारी के बल पर खटिक, कोइरी, कहार, मल्लाह सरीखी जातियाँ खीरे, ककड़ी, तरबूज, और खरबूज़ा इत्यादि बोते हैं।

५—बलुई धरतियों के सुधारने की रीतियाँ।

निम्नलिखित रीतियों के अनुसार बलुई धरतियाँ उपयोगी हो सकती हैं—

१—जिस प्रकार मटियार ज़मीनों के सुधार के वर्णन में बालू के व्यवहार का वर्णन किया गया है उसी प्रकार बलुई

धरतियों में मटियार धरती मिलाने से बलुई धरतियों की हैसियत सुधर सकती है।

२—अच्छी तरह सड़ी हुई पुरानी खाद के प्रयोग से बलुई धरती की हैसियत सुधर सकती है।

३—हरियाली की खाद देने से अथवा और किसी रूप में सजीव अंश (Organic Matter) जैसे मैला इत्यादि की खादों के प्रयोग से।

४—पेड़ लगाने से जिससे कि उनकी पत्तियाँ गिर कर उनमें सड़ें और धरती की उन्नति हो।

५—पानी के ठहराने से—यदि पानी मेंड़ बांध कर बलुई जमीनों पर ठहराया जाय तो उससे धरती में बहुत से छोटे छोटे जानवर तथा कुछ पानी के पौधे मिल जाते हैं अथवा धरती के महीन अंश ऊपर आकर जमीन की हैसियत बढ़ाते हैं।

६—कंदवा करना (Warping)—कुछ अवस्था में जल जिनमें मिट्टी का अंश, सिल्ट इत्यादि मिला हुआ हो पानी के बहाव के साथ धरती पर लाने और पानी में मिले हुए कंदवे को धरती पर थिराने का अवकाश देने से बलुई धरतियों की हैसियत परिवर्तित हो जाती है। प्रायः ऐसा नदी के तीर पर कई बेर पानी के कंदवा रोकने और फिर थिराए पानी को निकाल देने से कंदवा इतना एकत्रित हो जाता है कि जमीन की अवस्था पर उसका प्रभाव पड़ सकता है। ताल तथा पोखरी या बाहा के पानी को सुगमता के अनुसार बलुए खेतों तक ले

जाकर उनकी उन्नति हो सकती है। इस रीति को अंगरेज़ी भाषा में वार्पिंग कहते हैं।

धरती के पोत के अनुसार हमने मुख्य दो प्रकार की धरतियों का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इन दोनों प्रकार की धरतियों के मेल से कई प्रकार की धरतियां बनती हैं। यदि बलुई और मटियार धरती का अंश बराबर रहा तो उन्हें दुमट जमीन कहते हैं। दुमट जमीन पर खाद और पानी देने से आबोहवा की तासीर के अनुसार सब प्रकार की फसलें पैदा हो सकती हैं। मैदानों में प्रायः इसी प्रकार की जमीनें पाई जाती हैं अथवा मनुष्य उन्हें अपने व्यवहारों द्वारा अपने अनुकूल बना लेते हैं। दुमट धरती को कोई कोई सिक्का धरती भी कहते हैं।

यदि सिक्का जमीन में बालू का अंश अधिक होता है तो उसे बलुई-सिक्का या बलुई-दुमट कहते हैं। यदि उसमें चिकनी मिट्टी का अंश अधिक होता है तो उसे मटियार-सिक्का या मटियार-दुमट कहते हैं। पैदावार की अधिक प्रकार की फसलें बोने के अनुसार क्रमशः दुमट अव्वल और दुमट दोयम श्रेणी की दुमट धरतियाँ होती हैं। इसी प्रकार रबी अव्वल, रबी दोयम, रबी सोयम, रबी चहारम, धनकर अव्वल, धनकर दोयम इत्यादि; पाळो एक, पाळो दो, गोंइड़ एक व दो अच्छे खेतों को कहते हैं। नंबर, रंग अथवा सजीव अंश के अनुसार नंबर एक को अच्छी श्रेणी और नंबर दो तीन को मध्यम और चार को क्रमशः घटिया श्रेणी की धरती कहते हैं। श्रेणी के

विभाग करने में खाद, पानी, फसल, गांव के नजदीक वा दूर होना इत्यादि कारणों का विचार किया जाता है।

६—धरतियों का विभाग।

पृथिवी की उपयोगिता और उस पर अच्छी फसलों के पैदा होने के लिये सजीव अंश (Organic Matter) का मौजूद होना अत्यंत आवश्यक है। सजीव अंश की अधिकता के कारण बागों की धरती बहुत उपजाऊ होती है। सजीव अंश में हवा के अदृश्य जलबिंदुओं को ग्रहण करने की और नमी को बहुत काल तक संचित रखने की ताकत होती है। पानी के संचित रहने के कारण पौधों को भोजन का अधिक लाभ होता है जिससे वे अच्छी तरह बढ़ते हैं। सजीव अंश के रहने के कारण वर्षा तथा सिंचाई के जल का भली भांति उपयोग होता है। सजीव अंश में पौधों का भोजन भी होता है जिससे वे पौधों को भोजन पहुँचाने में भी सहायक होते हैं। यदि पृथिवी में सजीव अंश अधिक हुआ तो उसे अंगरेज़ी में (Peaty Soil) पीटी सॉयल अथवा लीदू धरती कहते हैं। सजीव अंश के कारण मिट्टी का रंग काला हो जाता है।

सजीव अंश के अनुसार गोइंड़, मंझा, और पालो तीन प्रकार की धरतियाँ होती हैं।

७—धरतियों का रंग।

साधारण अवस्था में देखा जा सकता है कि यदि गोबर में सफेद चूना मिला दिया जाय तो उसका रंग तबदील हो

जाता है। उसमें बालू तथा लोना मिट्टी अथवा मटियार ज़मीन के मेल का भिन्न भिन्न असर पड़ता है। पौधों के भोजन के बयान में बहुत से खनिज पदार्थ (दवाइयों) का वर्णन है। उन दवाइयों की मौजूदगी का, हवा पानी के तासीर से बड़ा प्रभाव पड़ता है, जिससे धरतियों का रंग बदल जाता है। रंग के बदलने से धरती का पोत बदलना तथा उसकी रासायनिक मीमांसा, जिससे भोजन संबंधी परिवर्तन हो, आवश्यक नहीं। परंतु बहुत सी दशाओं में रंग के परिवर्तन के साथ इन विषयों में भी परिवर्तन होता है जैसा कि मटियारी जमीन भी काली होती है, बलुई ज़मीन भी काले रंग की देखी जाती है, दुमट धरती भी काले रंग की होती है। इसी प्रकार सफ़ेद, पीले, हिरन रंग की तथा अन्य रंग की मटियार बलुई तथा सिक्ता धरतियाँ हो सकती हैं। रंगों का परिवर्तन रासायनिक तथा भौतिक कारणों द्वारा हो सकता है।

करैल धरती—रंग के अधीन भारतवर्ष की करैल धरती का वर्णन मुख्य है। इसे अंगरेजी लेखों में बहुत लोग "करैल कपास की धरती" कहते हैं। धरती का रंग काला होने के कारण उसे करैल कहते हैं। कपास की धरती इस कारण कहते हैं कि इस पर कपास की फसल बहुत बोई जाती है और अच्छी तरह पैदा होती है। बुंदेलखंड, बरार और मध्यप्रदेश की ओर ऐसी धरती बहुत है। करैल धरती प्रायः मटियार हुआ करती है और उसीके गुण अवगुण के समान होती है। गर्मी के दिनों में इसमें दरारें फट जाती हैं और धरती बहुत सख्त हो जाती है। बरसात के दिनों में

पानी पड़ने से चिपचिपी हो जाती है। उस पर चलना कष्टदायी और जोताई कठिन होती है। यदि पानी बहुत है और कृषक ने जल्दी करके उसे जोत दिया तो गाढ़ा कंदवा हो जाता है। यदि पानी कम है तो उसे जोतने से बड़े बड़े चक्कों में टुकड़े उखड़ते हैं जिन्हें सूखने पर तोड़ना असंभव नहीं तो अत्यंत परिश्रम और व्ययसाध्य हो जाता है। ऐसी धरतियों में चाहे उसके ऊपर की सतह सूख जाय परंतु उसके नीचे की सतह में बहुत समय तक तरी बनी रहती है। इस कारण जहां पानी कम बरसता है वहां भी नमी की पूर्ति से, यद्यपि सिंचाई का अभाव हो, फसलें अच्छी पैदा होती हैं। ऐसी धरती में सजीव अंश भी बहुत होता है और प्राय: इनमें खाद नहीं दी जाती। इस पर आबोहवा के अनुसार कपास के अतिरिक्त चना, मसूर, गेहूँ, तीसी, चटरी अथवा केसारी अथवा पानी और निचास के अधीन धान की फसलें अधिक बोई जाती हैं और उनकी पैदावार भी अच्छी होती है।

हलके रंग की धरतियां—इनका रंग प्राय: सफेदी मायल तथा हलके पीले रंग का होता है। प्राय: यह जमीन बलुई और खराब किस्म की होती है। इस प्रांत की भूर और उड़नियाँ धरतियाँ इसी प्रकार की हैं। उड़नियाँ उस धरती को कहते हैं जो हवा के झोंकों के साथ उड़ा करती है और उससे बहुत धूल उठती है। इन धरतियों पर बाजरा प्रभृत फसलें पैदा हो सकती हैं। प्राय: इन धरतियों का रंग अधिक चूना मौजूद होने के कारण सफेद होता है। अधिक चूना होने के कारण फसलों को हानि पहुँचती है।

हानिकारक खारों के संबंध में घुल जानेवाले खारों का वर्णन किया गया है। इन खारों के कारण धरती का रंग बदल जाता है। प्रायः ऐसी धरतियां हलके रंग की होती हैं। इन खारों के कारण धरतियाँ कृषि के अयोग्य होती हैं।

हलके रंग की चिकनी धरती भी कृषि के योग्य नहीं होती। प्रायः उसमें भोज्य पदार्थों का अभाव होता है और चिकनी मिट्टी के अवगुण होते हैं। जहां भोज्य पदार्थ की कमी नहीं है और धरती खारों से पीड़ित नहीं है वहां साधारण फसलें बोई जाती हैं, और खाद पानी के प्रबंध से उनकी हैसियत दुरुस्त हो सकती है। ऊसर और रेहयुक्त जमीन प्रायः ऐसे ही रंग की हुआ करती है।

लाल रंग की धरतियाँ—ये भी मटियार अथवा बलुई होती है। प्रायः इस रंग की मटियार धरतियाँ उपजाऊ नहीं होतीं। जहाँ पर इस रंग की सिक्ता धरतियाँ हैं उनकी उत्पादिका शक्ति एक हद तक अच्छी देखने में आती है। लाल रंग प्रायः लोहे के वर्तमान होने के कारण होता है।

रंग के विवरण के अनुसार पृथिवी की उपज निश्चय करके नहीं कही जा सकती। एक स्थान पर एक रंग की धरती उपजाऊ है, दूसरी जगह उसी रंग की धरती अनुपजाऊ है। इस कारण रासायनिक मीमांसा से भौतिक अवस्था के अनुसार कृषि की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता निश्चित हो सकती है।

८—धरतियों का प्रांतीय विभाग ।

हमने ऊपर चट्टानों की उत्पत्ति, उनसे धरतियों की बनावट और उनके प्राकृतिक विभाग का वर्णन किया है। स्थान स्थान पर इन धरतियों के भिन्न भिन्न स्थानीय नामों का होना संभव है। जैसे, इसी प्रांत में बुंदेलखंड में रंग और पोत भेद से मार, काबर, पड़वा और राकड़ मटियार और सिक्ता धरतियों की किसमें हैं। मार, काली और मटियार धरती को कहते हैं, काबर का रंग उससे उतर कर होता है, परवा कुछ न कुछ दुमट के सदृश होती है और राकड़ घटिया किस्म की धरती है। किस स्थान पर कैसी धरती है और वह प्राकृतिक अवस्था के अनुसार किस भाग में पड़ेगी यह विचार स्थानीय विचारों के अनुसार करना ही उचित है क्योंकि प्रायः ऐसा होता है कि मटियार प्रांत के लिहाज से किसी स्थान की धरती बलुई समझी जाय परंतु उसी बलुई धरती को उस स्थान पर दुमट कहते हों।

इन्हीं धरतियों के नामकरण स्थानानुसार मध्यप्रदेश, बंबई, मद्रास, बंगदेश तथा पंजाब में भिन्न भिन्न सुनने में आते हैं। इनमें से बहुत सी धरतियों की उत्पत्ति और उनकी बनावट में भेद का होना बिलकुल संभव है। भैर, दादर, सींगा, डांगर, खटल इत्यादि प्रांतीय नाम हैं।

पहाड़ी प्रदेशों में अधिकतर कृषि का चमत्कार नहीं होता। वहां की धरतियाँ प्रायः स्थायी धरतियाँ होती हैं जिनका धरातल कुछ ही इंच मोटा होता है। उनमें जीवित-पदार्थ (Organic

matter) की कमी होती है। इन स्थानों की खेती बहुधा अनिश्चित ही होती है। बोने और काटने का समय भिन्न भिन्न होता है जो पहाड़ों की ऊँचाई पर निर्भर होता है। खेती के ढंग अपने अपने सुभीते और स्थानों के अनुसार अनोखे हुआ करते हैं। कहीं कहीं अमीरों के वास्ते तरकारियाँ उत्पन्न करके बिकने के लिये मैदानों में भेजी जाती हैं।

जहां पर अच्छी तराई भूमि है और सिंचाई के लिये जल प्राप्त है धरती के अनुसार उन पर मैदानों के सदृश अच्छी खेती होती है।

बहुत सी नदियों के तीर पर कृषिकर्म्म की सुगमता के अनुसार अच्छी फसलें उत्पन्न की जाती हैं, जैसे संयुक्त प्रांत की खादर और कछार भूमि पर।

कहीं कहीं निचास की अच्छी जमीनों पर खेती की सुगमता पाई जाती है। प्रायः वे खरीफ के मौसिम में नम रहती हैं। जब जाड़े के दिन आते हैं तो वे सूखती हैं और उन पर रबी की फसलें बोई जाती हैं। इनको प्रायः सींचने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि यद्यपि उनकी ऊपरी सतह सूखी दिखाई देती है तथापि धरातल के थोड़े ही नीचे बहुत नमी पाई जाती है। कहीं कहीं सींचने भर को पानी दो चार हाथ खोदने पर प्राप्त हो जाता है। ऐसे स्थानों पर बिना सिंचाई खेती की जाती है।

ऐसे स्थानों में यदि पानी न सूखा तो फसलें बोने में देर हो जाती है और जोताई पूरी नहीं हो सकती जिसका आगामी फसलों की पैदावार पर असर पड़ता है। उन्हें गेहूं

प्रभृति रोगों का भय हो जाता है। उस समय वेग से जोताई करके हलकी फसलें बो देते हैं कि बोआई का समय न निकल जाय। कहीं कहीं रेह ऊपर की सतह पर आ जाती है। कभी खेत परती पड़ जाने से उनमें जंगली खर पतवार अधिकता से बढ़ आते हैं। उनमें कभी कभी जंगली जानवर रहने लगते हैं और आस पास की फसलों को हानि पहुँचाते हैं। ऐसे स्थानों पर कहीं कहीं दूर तक बस्ती नहीं है। वहां मकान बना कर रहना अति कठिन है। कहीं ऊँची जमीन पर झोंपड़ी डाल दी जाती है जहां खेती करनेवाले आते और जहां से चले जाते हैं। ऐसे स्थानों पर शायद ही कोई खाद देता हो। जिन्हें खाद देना होता है वे कुछ दिनों तक अपने पशु खेतों में बाँधते हैं जिनकी पूरी हिफाजत करनी पड़ती है। पर यदि समय पर पानी सूख गया तो खेत अच्छी तरह बनाए जाते हैं जिन पर बिना सिंचाई लाभदायक खेती होती है।

जंगली अंचलों में खेती करना कठिन काम होता है। ऐसे स्थानों की धरतियाँ कहीं कहीं अच्छी होती हैं परतु कहीं कहीं की आबोहवा अत्यंत हानिकारक होती है। जंगली जानवरों, लंगूरों और बंदरों का भय होता है। जंगली तथा पहाड़ी आदमियों के हाथों में खेती रहती है जो फसल कट कर जाने पर चले जाते हैं।

९–धरातल और गर्भतल।

पृथिवी की ऊपरी सतह को जिस पर फसलें बोई जाती हैं धरातल (Soil) अथवा धरती कहते हैं। साधारण जोत में

हल से केवल धरातल ही कटता है अथवा कमजोर हलों से धरती खुरची जाती है। धरातल के नीचे कुछ इंच (लगभग छः सात इंच) की गहराई पर गर्भ-तल होता है। गर्भ-तल को अंगरेज़ी में (Sub-soil) कहते हैं।

कहीं कहीं धरातल और गर्भतल दोनों एक ही प्रकार की धरतियों के होते हैं। कहीं कहीं इन दोनों तलों की उपज और बनावट में बड़ा अंतर होता है जिसका कृषि पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

एक स्थान पर धरातल और गर्भतल की बनावट एक ही प्रकार की होती है। दूसरे स्थान पर कहीं धरातल उपजाऊ होता है, कहीं गर्भतल। कहीं धरातल की सतह पतली होती है और उसके नीचे गर्भतल के स्थान पर चट्टान होती है। जोत के संबंध में कृषि करने पर इन बातों का विचार करना अत्यंत आवश्यक है।

कभी कभी गहरी जोताई करनेवाले हलों से गर्भतल जोतने से पृथिवी की अवस्था बदल जाती है, जिससे पौधों को अधिक भोजन प्राप्त होता है और उनकी जड़ें अधिक गहराई तक पृथिवी के भीतर जा सकती हैं। जैसे, यदि गर्भ-तल सख्त मटियार है अथवा चट्टानी भूमि है तो उसमें पौधों की जड़ें दूर तक नीचे जाकर अपना भोजन नहीं प्राप्त कर सकतीं। धरातल का पानी भीतर नहीं सोखता। धरती की जल और भोज्य पदार्थों की धारणा-शक्ति कम होती है। ऐसी अवस्था में गर्भतल का जोतना लाभकारी होगा।

परंतु यदि गर्भतल बलुई अथवा कंकड़ीली धरती का है

तो धरातल का पानी वेग से नीचे चला जाता है और धरातल के खाद के अंश नीचे चले जाते हैं जिससे फसलों को कुछ फायदा नहीं होता। इसी प्रकार यदि धरातल दुमट अथवा चिकनी मिट्टी का है और गर्भतल बलुई मिट्टी का है, तो एक साथ मिट्टी पलटनेवाले हल तथा फावड़े से दोनों तलों को मिलाने से लाभ होगा जिससे दोनों तलों की हालतें सुधर जाँयगी। यदि दोनों तल खराब धरती के हैं तो उनको मटियार तथा बलुई धरतियों के अनुसार सुधारना चाहिए। यह काम परिश्रम और व्यय का है। जिसके पास दोनों बातें उपस्थित नहीं हैं वह धीरे धीरे कई वर्षों में अपनी धरती की अवस्था सुधार सकता है।

इन तलों के संबंध में खाद पानी का विचार कर लेना आवश्यक है, क्योंकि कृषक अपनी समझ में धरातल को अच्छी खाद, पानी और जोताई से परिपूर्ण करता है। परंतु गर्भतल की खराबी से पौधे पनपते नहीं अथवा यदि धरातल कठिन मटियार धरती है और उसी के नीचे उसके विपरीत बलुई धरती है तो भी अपकार नहीं हो सकता। यदि दोनों तल एक साथ जोत कर मिलाए जाँय तो पृथिवी की हैसियत अच्छी हो जाती है।

१०—कृषिकार का कर्तव्य।

इस अवस्था पर हम यह कह सकते हैं कि कृषिकार शस्य उत्पन्न नहीं करता। किंतु आवश्यक कारणों के एकत्रित होने से शस्य स्वयं ही उत्पन्न होते हैं, उसके साथ कृषिकार चाहे कुछ करे या न करे, क्योंकि यदि किसी

आवश्यकता का अभाव हो जिसकी पूर्ति कृषिकार से न हो सके तो किसी प्रकार शस्य नहीं उत्पन्न हो सकते । शस्य अपनी ही रीति पर उत्पन्न होते, बढ़ते और फूलते फलते हैं । कृषिकार का केवल यही कर्तव्य है कि वह उनकी आवश्यकताओं को जहां तक संभव हो पूर्ण करे जिससे उसकी इच्छा फलीभूत हो ।

किसी पृथिवी की प्राकृतिक शक्ति को, जिसके द्वारा शस्य उत्पन्न होते हैं, उस पृथिवी की उत्पादिका शक्ति कहते हैं ।

समस्त भूमंडल ईश्वर की कृपा से चलता है । उसकी इच्छा सर्वश्रेष्ठ है । मनुष्य जिस अवस्था में हो उसको अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए । होता सब कुछ उसी की इच्छा से है । "कर्मण्येवाधिकारस्ते" ।

सातवाँ परिच्छेद ।

जोत ।

१—जोताई की आवश्यकता ।

पौधों की भोजन विधि से हमें ज्ञात होता है कि उनके आवश्यक भोजन के अंश ऐसी दशा में हों जो पानी में घुल सकें । प्राकृतिक दशा में जैसे तैसे जो कुछ प्राप्त हो जाता है पौधा उसी पर अवलंबित रहता है । परंतु मनुष्य नियमित समय पर अपने हेतु फसलें तैयार करता है, इस कारण वह उनकी आवश्यकताएँ भली भांति पूरी करके अपने इच्छित फल को तैयार करने की चेष्टा करता है । एक पालतू और एक जंगली घोड़े की दशा पर विचार करें। पालतू घोड़े के लिये उसका स्वामी समय पर दाना और घास देता है । जंगली पशु को कभी कभी क्षुधित भी रहना पड़ता है । यदि स्वामी अपने घोड़े से काम लेना चाहता है और उसको हृष्ट पुष्ट रखना चाहता है तो वह उसकी सेवा में त्रुटि नहीं करता । यदि वह ऐसा न करे तो उसका पशु निर्बल रहेगा और वह उसकी आवश्यकता के अनुसार काम न देगा । इसी प्रकार यदि हम चाहते हैं कि गौ से अधिक और अच्छा दूध प्राप्त हो तो हमें उसकी सेवा करनी पड़ती है, उसके भोजन का प्रबंध करना पड़ता है । यदि ऐसा न किया जाय तो दूध की आशा बहुत कम अथवा बिलकुल ही नहीं रहती । इसी प्रकार यदि

पृथिवी की जोताई अच्छी नहीं होगी, खेत में पानी संचित नहीं होगा, धरती मुलायम न होगी, पौधों को भोजन कठिनता से प्राप्त होगा तो भोजन न मिलने से शस्य कमजोर और कम हो जायगा। इसके अतिरिक्त हवा, पानी और गर्मी का प्रवेश न होने के कारण धरती रोगी हो जायगी।

२–जोताई के उद्देश्य।

जोताई का मुख्य उद्देश यह है कि धरती मुलायम हो जाय, उसमें हवा और गर्मी सर्दी का अच्छी तरह से आवागमन हो सके और वह पानी सोखे तथा संचित करे।

खोदना, हल चलाना, पाटा देना और जोत के अन्य औजारों से पृथिवी का बनाना इसी के अंतर्गत है।

जोताई से जितना लाभ खेतों को होता है उतना खाद से नहीं। इस कारण जोताई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

जोताई के निम्न लिखित मुख्य उद्देश्य हैं।

१–जोताई में प्रथम कर्तव्य खेत की सफ़ाई है। उसमें से ख़र पतवार को जो मुख्य शस्य के भोजन में साझा कर लेते हैं निकाल डालना चाहिए। उस पर जोताई करनी चाहिए क्योंकि खर पतवार के बीजों का धरती में पड़ जाना हानिकारक है। यदि खर पतवार की मात्रा कम है तो जोताई कर देने ही से वे सूख जाते हैं।

२–धरती को कई बार जोतना चाहिए जिससे धरती मुलायम हो जाय, वह अधिक जल सोखे, उसमें हवा और गर्मी का आवागमन हो सके, बीज अच्छी तरह जम सके और पौधों के

बढ़ने में कठिनाई न पड़े, क्योंकि बाल्यावस्था में पौधों को अच्छे खेत की आवश्यकता पड़ती है। यदि इस समय उनको पनपने में कठिनाई हुई तो उनकी बाढ़ मारी जाती है। अनुभव से विदित होता है कि सब फसलों को एक समान बारीक जोताई की आवश्यकता नहीं। किसी के लिये अधिक बारीक खेत की आवश्यकता पड़ती है, किसी के लिये कम, जैसे गेहूँ, ऊख इत्यादि की फसलों के लिये अधिक जोताई की आवश्यकता होती है और बाजरा, मूंग, उर्द को कम। परंपरा से चले आए हुए अनुभव से ग्रामनिवासियों को, जो कृषि-कर्म करते हैं, यह भली भांति मालूम होता है कि किस फसल को कितनी जोताई की आवश्यकता है और वे इसमें कोई बड़ी चूक नहीं करते।

पुनः यह बात स्मरणीय है कि सब फसलों के बीज एक ही गहराई मे नहीं डाले जाते। कुछ ऐसे हैं जो कुछ गहराई में डाले जाते हैं जिससे उन्हें उगने में आवश्यक नमी प्राप्त हो सके और उनकी जड़ें धरती में जम जावें। इसके विपरीत कुछ फसलों पर बहुत कम मिट्टी पड़ती है अथवा पड़ती ही नहीं, वह धरती तैयार हो जाने पर कियारियों में छिड़क दिए जाते हैं। ऊपर से राख छिड़क दी जाती है अथवा उन्हें झाड़ू से अथवा हाथों से धरती में मिला देते हैं। यदि ऐसे बीज अधिक गहराई में पड़ जाँय तो उनके अँखुए इतने कोमल होते हैं कि वे धरातल तक नहीं आ सकते और बीज दब कर मर जाते हैं। ऐसी फसलों के लिये धरती बहुत बारीक बनानी पड़ती है।

३—जोताई से पृथिवी में हवा का प्रवेश होता है जिससे धरती में बहुत सी रासायनिक क्रियाएँ होती हैं और लाभ-कारी जीव-जंतु अपना काम भली भांति कर सकते हैं। हवा और गर्मी सर्दी के आवागमन से बिना प्रयास ही धरती बारीक हो जाती है।

४—जोताई का यह भी उद्देश है कि धरती में पानी भली भांति प्राप्त और संचित हो। यदि पृथिवी बिना जुती है तो वर्षा का बहुत सा जल बह जाता है अथवा बहुत कम उसमें सोखता है। धरती जुती रहने से वह बहने नहीं पाता किंतु पृथिवी में समा जाता है और संचित होता है जिससे पृथिवी मुलायम बनी रहती है और पौधे भली भांति भोजन लाभ करते हैं।

५—हानिकारक कीड़े और उनके अंडे नष्ट हो जाते हैं। ये कीड़े धरती में अंडे देते हैं जिनसे आगामी फसलों को हानि पहुँचने का भय होता है। जोताई कर देने से ये घाम और हवा में जल कर नष्ट हो जाते हैं। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो देखने में आता है कि ये कीड़े धरती में पड़े रहते हैं और दूसरी फसल की तैयारी तक उनमें से पहले से भी अधिक-तायदाद में उत्पन्न हो कर फसल को पहले की अपेक्षा अधिक हानि पहुँचाते हैं।

६—जोताई से बहुत से खर पतवार खोदे जाते हैं और उनकी जड़ें सूर्य के सामने फेंक दी जाती हैं जिससे वे सूख कर नष्ट हो जाती हैं। इस संबंध में माघ (मघवट) और जेठ बैसाख की (बैसाखी) जुताई से बड़ा फायदा पहुँचता है।

इन उद्देश्यों का प्रतिपालन जहां तक संभव हो प्राकृतिक घटनाओं तथा प्राकृतिक शक्तियों द्वारा कराना लाभदायक होता है। अच्छी तैयार नम जमीन की जोताई हल से की जाय अथवा उसे फावड़े द्वारा खोदा जाय और इस प्रकार उसे हवा के प्रभाव के अधीन छोड़ दिया जाय तो नम ज़मीन के ढेले छोटे छोटे टुकड़ों में आप ही आप भुसुर जाते हैं। प्रायः खेत कट जाने पर जिस कदर जल्द हो सके कृषिकार को अवश्य अपने खेत जोतने की चेष्टा करनी चाहिए। इस जोत का और खेत में खाद देने का दुगना प्रभाव पड़ता है।

३—छिछली और गहरी जोताई।

धरती को बारीक जोतना जिससे वह खुल जाय, उसके टुकड़े छोटे छोटे हो जाँय, उनमें हवा और पानी का अच्छी तरह प्रवेश हो, पौधों की जड़ें आसानी से नीचे जा सकें, पृथिवी मुलायम हो और भली भांति पानी धारण कर सके—इनके लिये छोटे छोटे कृषक, जिनके पास कम खेत हैं अपने खेत फावड़े से खोद कर धरती तैयार कर लेते हैं। अधिक भूमि की इस प्रकार परिचर्या करने में समय और व्यय अधिक लगता है। इस कारण हल का प्रयोग किया जाता है। फावड़े से खोदने में धरती गहरी खोदी जाती है और उलटी भी जाती है। साधारण देशी हल से जमीन खोदी जाती है परंतु बहुत कम उलटी जाती है। नवीन तरीके के बने हुए हलों में एक बाजू (Mould Board) लगा होता है। इसकी सहायता से जो जमीन खुदती जाती है वह उलटती भी जाती है। ये हल

लोहे के बने होते ह। इनसे गहरी जोताई होती है। गहरी जोताई करने में अधिक परिश्रम और बल की आवश्यकता होती है। फावड़े तथा लोहे के हलों से गहरी जोताई करने में सुगमता होती है। लोहे के हलों से गहरी जोताई करने में सुभीता होता और खर्च की भी बचत होती है। जिनके पास विस्तृत भूमि है और जो लोहे के हल खरीद सकते हैं उन्हें सुभीता होने की संभावना हो जाती है।

जब ख़रीफ़ की फसल के पश्चात् खेतों में पानी जमा रह जाता है और धरती देर में सूखती है और रबी की फसलें बोने के लिये खेत तैयार करने के लिये बहुत कम समय बाकी रह जाता है तो कृषक जल्दी में अपने देशी हल से दो तीन बांह जोत कर खेत तैयार कर के जिस बोआई के समय के भीतर बोने की चेष्टा करता है। बीज तो बो जाता है परंतु अच्छी जोताई न होने के कारण बोआई का परिणाम अच्छा नहीं होता। ऐसे समय में लोहे के हल की कीमत मालूम होजाती है, क्योंकि लोहे के हल की कम जोताई देशी हल की अधिक जोताई के समान होती है। लोहे का हल वही काम शीघ्र करता है जो देशी हल से देर में होता है। समय के अभाव से ऐसी अवस्था में लोहे के हल से अच्छा काम होता है।

कुछ पौधों की जड़ गहराई तक जाती है, उनके सड़ने से ज़मीन पोली हो जाती है और एक प्रकार से ज़मीन खुल जाती है। जोत में बहुत से कीड़े मकोड़ों द्वारा उनके स्वभाव से ही सहायता मिलती है। उदाहरण, जैसे बरसाती केंचुवा मिट्टी में मिले हुए वनस्पति-अंशों पर जीवन व्यतीत करता

है, वह मिट्टी खाता और त्याग करता है। उसकी त्याग की हुई मिट्टी बारीक हो जाती है। चींटी माटा इत्यादि भी ज़मीन के छोटे छोटे टुकड़े कर देते हैं।

पौधों की उत्पत्ति और बाढ़ के लिये जिससे धरती मुलायम हो और अधिक जल धारण कर सके गहरी जोताई लाभकारी है। ये ऊपर कहे हुए जोताई के जितने उद्देश्य हैं वे सब गहरी जोताई से अधिक पूरित होते हैं। जहां की गर्भतल की धरती खराब है अथवा जहां खाद देने में विशेष सुभीता हो छिछली जोताई से पृथिवी को लाभ पहुँच सकता है।

आठवाँ परिच्छेद।

१—जोताई के औजार।

साधारण तौर से कृषकों के पास जोताई के निम्नलिखित औजार होते हैं।

फावड़ा, कुदाली, हल, खुरपी, हेंगा अथवा पाटा, पटेला, बखर या सरावन।

फावड़ा—जिन कृषकों के पास कम खेत हैं अथवा जिनमें वे कोई मूल्यवान फसल बोना चाहते हैं तो वे अपने खेत को फावड़े से खोद कर तैयार कर लेते हैं। बागों में फावड़े से अधिक काम लिया जाता है। जहां परिश्रम की खोदाई अथवा सख्त जमीन है, खांवा या मेंड बनाना है, कोना मारना होता है वहां भी फावड़े से काम लिया जाता है। मकान की दीवार उठाने तथा अन्य फुटकर कामों में भी फावड़े की बहुत जरूरत पड़ती है। फावड़े के फल की चौड़ाई के अनुसार जमीन चौड़ी और गहरी खुदती है।

कुदाली—कुदाली का फल लंबा, मजबूत और कम चौड़ा होता है। इससे सख्त खोदाई का काम लिया जाता है अथवा जहां कंकड़, चट्टान इत्यादि पड़ जाते हैं वे रवां या कुदाली की सहायता से निकाले जाते हैं। साधारण सोहाई में कम परिश्रम से जमीन खुधेड़ दी जाती है। इससे खुरपी के मुकाबले में अधिक काम होता है।

हल—हल से जोताई का काम लिया जाता है। प्रायः यह काठ का बनाया जाता है जिसमें बबूल, आम, शीशम, महुआ इत्यादि प्राप्य लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। इसकी बनावट निम्नलिखित रीति पर होती है।

(१) हल का शरीर जिसमें नीचे की ओर को निकली हुई लोहे की (२) फार लगी होती है, (३) ऊपर हरीस काठ की अथवा कहीं कहीं बांस की लगाई जाती है। इसमें जुवा लगाया जाता है और बैल इस प्रकार हल को खींचते हैं। (४) हल के शरीर के पीछे मुठिया होती है जिसे पकड़ कर हल जोता जाता है।

यह देशी हल की बनावट है। प्रांतों में स्थान स्थान पर देशी हल कई प्रकार के देखे जाते हैं। उनके आकार और बनावट में भेद पाए जाते हैं। अच्छे हलों से जोताई अच्छी होती है। बेप्रमाण, बेढंग के बने हुए हलों से जमीन खुरच तो भले ही जाती है परंतु उनके छोटे आकार से जोत अच्छी नहीं होती। प्रायः देखा जाता है कि जैसे बैल प्राप्त होते हैं उसी के अनुसार कृषिकार हल बनाता है। यदि उसके पास अच्छे बैल हैं तो वह बड़े हल बनाता है यदि उसके पास बछवों के समान बैल हैं तो वह छोटे हलों से काम चलाता है।

पाश्चात्य देशों में लोहे के हल से खेतों की जोताई होती है। इनको घोड़े खींचते हैं अथवा भाप तथा अन्य शक्तियों के एंजिनों का बल जोताई के लिये प्रयोग में लाया जाता है। वहां बड़े बड़े हल लोहे के बनाए जाते हैं जिनके

जमीन बहुत गहराई तक खुदती है। उन खेतों में भली भांति खाद दी जाती है और अच्छी पैदावार प्राप्त होती है। इन्हीं हलों के सिद्धांतों पर हिंदुस्थान की आवश्यकताओं के अनुसार लोहे के हल बनाए गए हैं जिनको साधारण बैल खींच सकते हैं। उनसे देशी हलों की अपेक्षा गहरी जोताई होती है और जमीन उलट जाती है।

संयुक्त प्रांत की आवश्यकता के अनुकूल ऐसे हलों में वाट्स और मेस्टन (Meston) हल उपयोगी पाए जाते हैं। गांवों तथा निकट के कसबे या शहर में इनके टुकड़ों या पुर्जों के न मिलने तथा टूट जाने पर या बिगड़ जाने पर इनकी मरम्मत न हो सकने की दिक्कत होती है। ये दिक्कतें गांव के लोहारों को मरम्मत करना सिखाने तथा कुछ फालतू पुर्जों को अपने पास रख छोड़ने से जाती रहती हैं।

इन हलों की बनावट कई टुकड़ों के जोड़ से होने लगी है जिनका बैठाना कठिन नहीं है। केवल देख लेने और उसे समझ लेने से कोई समझदार कृषक इस काम को कर सकता है। इनमें १. हलका धड़ (शरीर) अथवा हल का वह हिस्सा है जिस में हल के अन्य हिस्से जोड़े जाते हैं, २. बाजू (Mould Board) जो फार से कटी हुई धरती को उलटता है, ३. फार, जो धरती को काटता है और पर्त पर्त कर के जमीन को खोलता है, ४. हल का पेंदा जिसमें हल के चलने में कठिनता नहीं पड़ती और वह सुगमता से चलता है, ५. हरीस और जंजीर जिसके सहारे जुआ लगाकर बैल जोते जाते हैं। जुआ बैलों की गर्दन में पहनाया जाता है और उसमें

देसी हल
मुठिया
परिहत
पाठ
हरीस
फार
मेसटन हल
कानला
ढेबरी
८-११ छोटा,मझा,लम्बा कानला
१०
११
फार
मोलबोर्ड
बाड़ी
रिंच
लेस
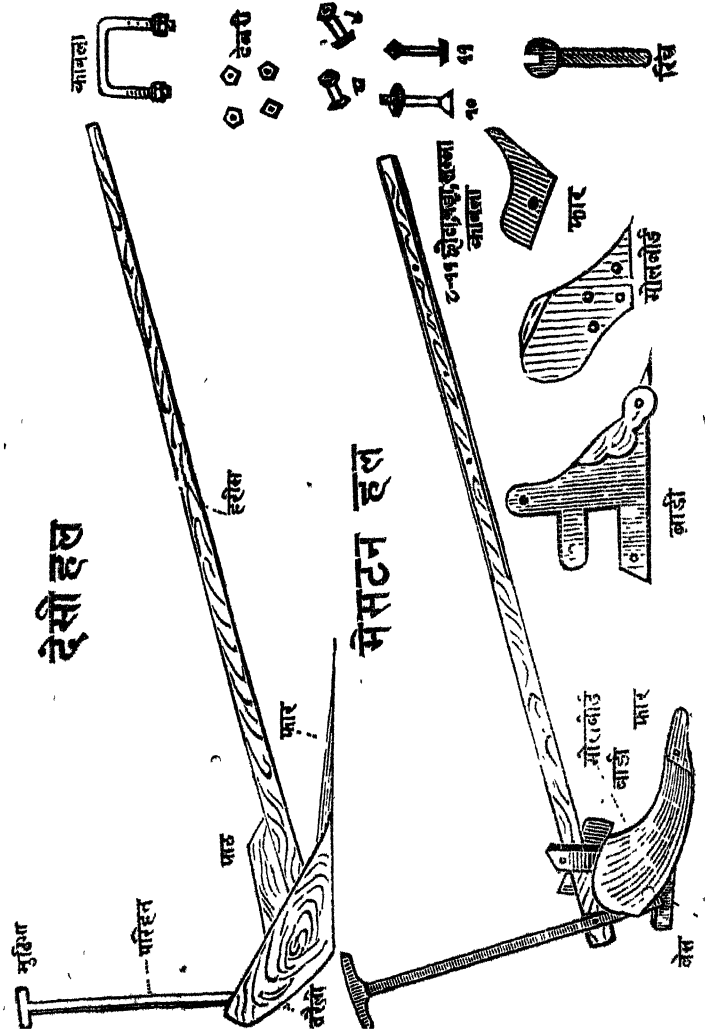
हल या हेंगा बाँध कर काम लिया जाता है। किसी किसी हल में देशी हलों की तरह एक लंबी हरीस होती है किसी मे आधी; और हरीस की आधी लंबाई में जंजीर
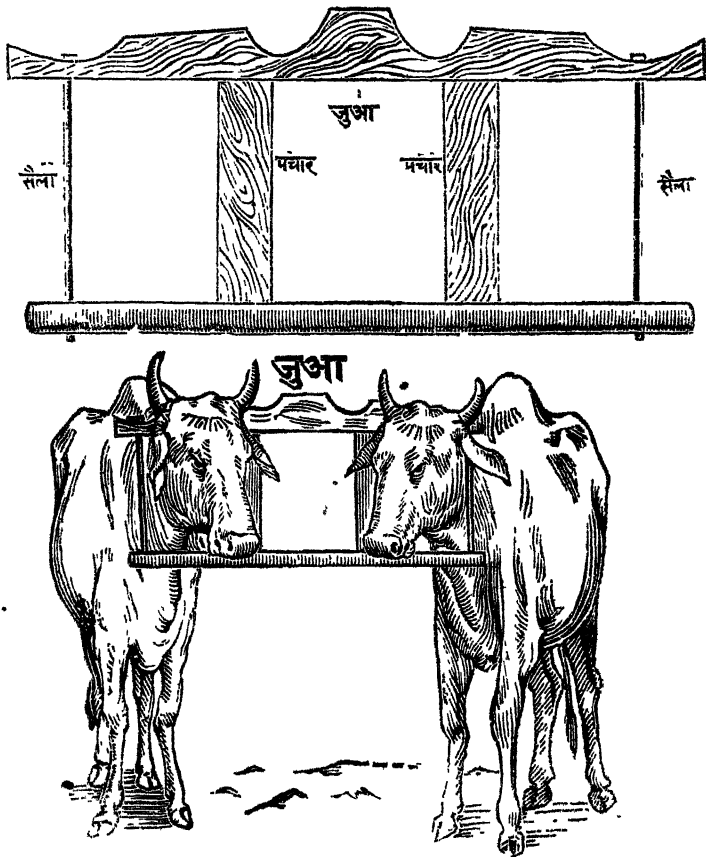
अथवा रस्सी लगाकर काम निकाला जाता है। इसका अभिप्राय यह होता है कि खींचने में आसानी हो और बैलों पर जोर

कम पड़े, ६. मुठिया, जिसे पकड़ कर हरवाहा हल चलाता है।

लोहे के अन्य बहुत प्रकार के हल देखे जाते हैं जिनकी विशेषताएँ एक एक कर के लिखने का हमारा उद्देश्य नहीं। यह उन हलों के सूचीपत्र में मिल सकता है।

एक में फार और बाजू एक तरफ से दूसरी तरफ बदला जा सकता है जिसे (Turn Wrest Plough) टर्न रेस्ट प्लाऊ कहते हैं। अन्य बड़े बड़े हल होते हैं जिनके फार में अथवा बाजू में अपने ढंग की विशेषताएँ पाई जाती हैं। उनसे विशेष काम निकाले जाते हैं। कोई परती जमीन जोतने के उपयुक्त हैं, किसी से धान के खेत जोतने तथा खर पतवार निकालने में सुगमता और सहायता मिलती है, कोई धरातल के बड़े बड़े चक्के उखाड़ने में समर्थ हैं और कोई बिना धरती उलटे ही गर्भतल जोत सकते हैं।

कितने हलों में कुंड की गहराई अधिक या कम करने के लिये "दहाना" लगा होता है। पशुओं पर उनके खींचने में बल कम पड़े इस कारण उनमें 'पहिए' लगे होते हैं। किसी किसी में एक फार के अतिरिक्त दो एक छूरे भी लगे रहते हैं जिन्हें कोल्टर (Coultar) कहते हैं।

बड़े बड़े हलों में कांस निकालने के हल हैं जिनमें अत्यंत बल की आवश्यकता होती है। एक साधारण मध्यम आकार का 'तावादार' हल (Disc Plough) है जिससे एक फुट गहरा खोदा जा सकता है तथा मिट्टी पलट सकते हैं। बागों के काम तथा सबजा जार (Lawn) बनाने में इससे बड़ी सहायता मिलती है और खर्च में किफ़ायत होती है।

लोहे के तथा लकड़ी के बड़े बड़े हलों के चलने अर्थात् उनके पेंदे के घसीटने के कारण अथवा आदमियों और बैलों के कूड़े में चलने से धरातल के नीचे 'तवा' पड़ जाता है अर्थात् धरती सख्त पड़ जाती है। इस कारण पौधों की जड़ें नीचे कठिनता से प्रवेश कर सकती हैं और पानी जमा हो जाता है। इनके तोड़ने के लिये गर्भतल-तोड़ हलों का प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती है।

२—जोताई के अन्य औजार।

जोताई के अन्य औजारों में हैरो (Harrow), जो जुते हुए खेतों की मिट्टी बारीक करने के काम में आता है, एक साधरण औजार है। यह एक जुवार बैलों की सहायता से चलता है। इससे धरातल की ज़मीन समतल और बारीक हो जाती है। इसकी सहायता से खर पतवार बटोरे जा सकते हैं और धरती साफ और बारीक हो जाती है। यह काम कुछ भद्देपन और परिश्रम से देशी हल और सरावन से निकाला जा सकता है।

दूसरा औजार कल्टीवेटर या प्रबर है जिसको 'पांचा' भी कहते हैं। इसमें कई दाँत लगे रहते हैं। यह खेत के ढेलों के टुकड़े करने, जमीन खुधेड़ने, तथा खर पतवार इकट्ठा करने के काम में लाया जाता है। इसमें विशेष प्रकार के औजारों की सहायता से कृषि के हर एक छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा काम सफ़ाई और कम परिश्रम से उत्तम रीति पर होता है इस लिये हर एक काम के लिये जितनी उत्तमता अभीष्ट हो उतने ही औजारों का प्रयोग करना अच्छा होता है।
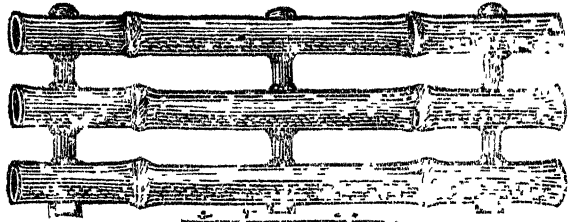
बाँस का बना हेंगा।
खेत में हेंगा चलाया जाता है।
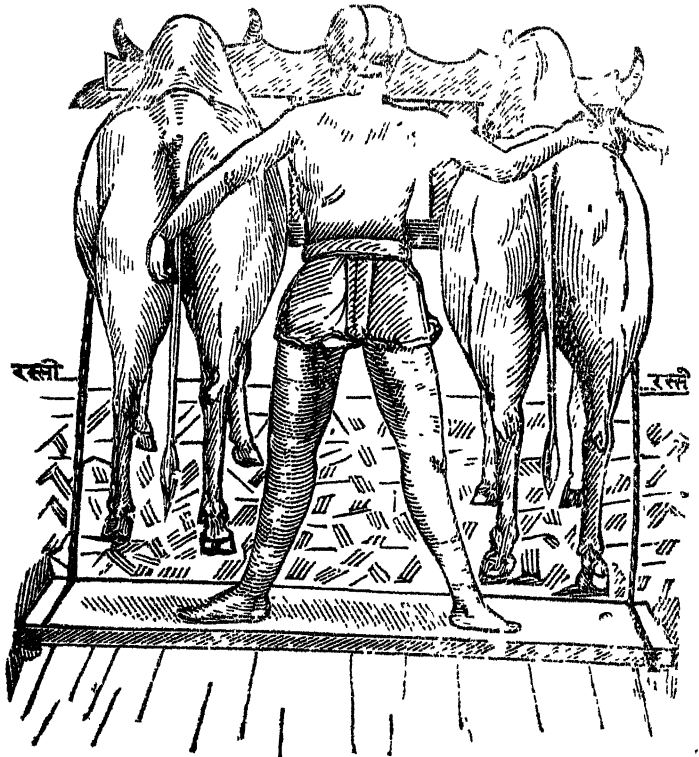
पाटा, सरावन, पटेला या हेंगा एक या दो गज लंबी धरन अथवा आवश्यक लंबाई के तीन या चार बाँसों को जोड़ने से बनाया जाता है। रस्सियों द्वारा दो जुवार बैलों की सहायता से हरवाहा इस पर खड़ा होकर इसे जुते हुए खेतों पर चलाता है। इसका प्रयोग बोने के पहले खेती की तैयारी में ढेलों को तोड़ने के लिये किया जाता है अथवा बीज बोने के बाद बीज को कूँड़ों में ढकने के लिये किया जाता है।

केशाकर्षण शक्ति के सिद्धांत पर पाटा का प्रयोग आवश्यकता के अनुसार जल की मेकदार कम करने अथवा धारणशक्ति बढ़ाने के लिये किया जाता है। यदि ज़मीन में नमी कम है उसे जोत कर पाटा कर देने से केशनलिकाओं (छोटे छोटे छिद्रों) का संबंध नीचे से टूट जाता है जिससे पानी भाप बन कर नहीं उड़ने पाता।

पाटा करने का समय या उसकी आवश्यकता के लिये कोई नियम निर्वाचित करना कठिन और अनावश्यक है। अनुभव द्वारा सम्यक आवश्यकता का कृषक विचार कर लेते हैं। रबी के खेतों की तैय्यारी में पाटा का प्रयोग किया जाता है। इन्हीं फसलों की तैयारी के लिये अच्छी जोताई की आवश्यकता होती है।

३—जोताई की रीति।

खेत का हल द्वारा जोतना क्रियावान् विषय है। अनुभव द्वारा इसमें स्वयं दक्षता प्राप्त हो जाती है। इसके लिये कोई निश्चित नियम नहीं। देशी हल द्वारा जोताई करने में हलकी

मुठिया सीधी पकड़नी चाहिए और हल धरती की ओर दबाए रखना चाहिए। कूँड बराबर पास पास और सीधी काटनी चाहिए, ऐसा न करने से बीच में अनजुती जमीन छूट जाती है। देशी हल की बनावट ऐसी होती है कि उससे त्रिभुज रूप की कूँडें कटती हैं और इस प्रकार दो कूँडों के बीच में कुछ अनजुती धरती छूट जाती है। इसके निवारण के वास्ते कृषक खेतों को कई बांह जोतता है—पहले लंबे, फिर बेंड़े, तत्पश्चात् कोने से कोने तक परंतु यह कोई निश्चित नियम नहीं है, सुभीते या इच्छा के अनुसार कृषक पहले कोने की या बेंड़ी जोताई कर सकता है। इस प्रकार अच्छी जुताई कम से कम आठ बांह जोतने पर प्राप्त होती है किंतु उत्तम जोताई सोलह और बीस बांह तक की जाती है।

हल चलाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अकस्मात् बैलों के चलने में बिना उनको सँभाले हुए हल धरती से ऊपर न उठा लिया जाय। इसमें बैलों के पैरों में पैनी फार लग जाने का भय रहता है।

देशी हलों से जोतने में पहली तथा दूसरी जोत में खेतों के कोने बिना जुते छूट जाते हैं। कोनों को फावड़े अथवा कुदाली से खोद देते हैं और मेंड़ों के पास की मिट्टी और कोने की मिट्टी खोद कर खेत में फेंकते हैं जिसे कोना और खांवा मारना कहते हैं। जोताई में इतना परिश्रम बड़ी चतुरता के विचार से किया जाता है। इसका अभिप्राय यह होता है कि धरती में चारों तरफ खेत भर में जल फैल जाय और धरती मुलायम हो जाय।

देशी हल से तीन इंच से पांच इंच तक गहरी कूँड काटी जाती है।

लोहे के हलों की जोताई प्रत्येक हल के साधन के अनुसार भिन्न है। कोई जिस ओर बाजू होता है उस ओर झुका कर जोता जाता है। कोई बाजू की दूसरी ओर झुकाया जाता है। कोई जोतते समय सीधा रखा जाता है। कोई चलाते समय फार की ओर झुकाया जाता है। कूँड की गहराई तथा छिछलापन के अनुसार तथा हल के चलाने में सुगमता या बैलों के खींचने में बल या कूँड सीधी रखने के अनुसार उपरोक्त रीति से हल चलाना चाहिए। कूँड हर हालत में एक दूसरे से मिली हुई और सीधी रहनी चाहिए और बैलों का विचार रखना चाहिए। साधारण लोहे के हलों से ४½ इंच से सात आठ इंच तक गहरी कूँडे बनती हैं। इन हलों से जितनी सीधी जुताई की जाती है उतनी अच्छी जोताई होती है क्योंकि इनमें दो कूंडों के बीच की धरती नहीं छूट सकती। इसके विपरीत देशी हलों में चाहे जितने समीप हल क्यों न चलाए जायँ और कैसी ही सीधी कूँड क्यों न हो देशी हल की बनावट ही ऐसी होती है कि दो त्रिभुजों के बीच में अनजुती जमीन छूटती है।

पाटा, कल्टीवेटर, हैरो खेतों में बैलों की सहायता से खेत भर पर चलाया जाता है।

४—जोताई का समय।

फसल के बोने के पहले खेतों को तैयार करना कृषक का परम कर्तव्य है। फसलों के अनुसार खेतों की जोताई की जाती है।

५–भदई के लिये खेत की तैयारी।

यदि खेत दो-फसला है तो उसमें से रबी की फसल चैत अथवा अप्रैल में कट जाती है। उस समय प्रायः इतनी नमी नहीं रहती कि बराबर जोताई की जाय। यदि फरवरी में वर्षा हुई तो उसकी नमी बाकी रहती है, नहीं तो सुखी जमीन में जैसी तैसी एक जोताई दे देते हैं। यदि पानी प्राप्त हुआ तो कुछ पानी की सहायता से बैसाख में एक जोताई दी जाती है जिसके अगणित लाभ हैं। अशक्य कृषक खेत को जैसा का तैसा पड़ा रहने देता है। जब मई, जून में वर्षा होती है खेत की जोताई आरंभ की जाती है और बराबर जोताई की जाती है।

खरीफ की फसलों को बोने के लिये रबी की फसलों के बराबर अधिक जोताई की आवश्यकता नहीं होती। यदि पानी बरस कर खुल जाता है और आकाश कुछ दिन तक साफ होजाता है तो उसमें जोताई बराबर जारी रहती है, जब तक कि खेत अच्छी तरह से तैयार नहीं हो जाता। बदली में तथा कठिन समय में भी चतुर कृषिकार समय पर आलस्य छोड़ देता है और कोई अवसर खेतों के तैय्यार करने का नहीं चूकता और जहां तक उससे बन पड़ता है जमीन बारीक और मुलायम बनाकर शस्य बोता है। यदि समय नहीं मिलता तो जैसे तैसे जुते हुए खेतों में बोआई के समय तक बीज बो दिया जाता है।

यदि खेत एक-फसला है और फसल कटने पर छ महीने

तक परती पड़ा रहा है तो उसकी तैयारी परती जमीन के समान की जाती है।

धरती की अवस्था के अनुसार किस समय खेतों में हल चलना चाहिए यह कृषक को अनुभव द्वारा ज्ञात हो सकता है। इसे कृषिकार अपने परंपरा से व्यवहृत ज्ञान द्वारा भली भांति जानते हैं। जब धरती कुछ पानी सोख लेती है और कुछ मुलायम हो जाती है उस समय हल चलाने में पशुओं को अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। अधिक जल एकत्रित रहने पर हल चलाने में कठिनता होती है। इस समय धरती में से पानी का निकास कर के जोताई करनी उचित है।

६—चैती के लिये खेत की तैयारी।

चैती में अच्छी और मूल्यवान् फसलें बोई जाती हैं। इनके बोने में अधिक परिश्रम और बीज में भदई की अपेक्षा अधिक धन लगता है। यदि किसी कारण से खेत तैयार नहीं अथवा बीज बोने के पश्चात् अधिक वृष्टि हो तो इस भांति बोने से दरिद्र कृषकों को पीड़ा पहुँचती है और यदि उन्हें बीज न प्राप्त हो सका तो उनके खेत बिना बोए छूट जाते हैं। इस कारण किसी फसल में खेतों की तैयारी और बोना अनुभव विचार तथा प्रारब्ध के अधीन होता है। चतुर कृषिकार इनका विचार भली भांति जानते हैं और उनके प्रयोग में नहीं चूकते। कागज पर लिखने में यह साधारण बात मालूम होती है कि सब बातों का विचार करना चाहिए परंतु

सब बातों का विचार करना अत्यंत कठिन और अनुभव का काम है। चैती की फसल बोने के लिये धरती बारीक बनाने की आवश्यकता होती है क्योंकि कोमल अवस्था में पौधे के आसानी से उगने के लिये उनकी आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिएँ। यदि जमीन बहुत सूखी है या नम है तो बीज के उगने मे बाधा पड़ती है। कोमल पौधे कठोरता नहीं सह सकते और यदि उसका सामना पड़े तो या तो वे सूख जाते हैं, कमजोर हो जाते हैं या कठिनाई से उगते हैं। उनकी बाढ़ रुक जाती है या दाना अच्छा नहीं लगता। चार पांच इंच गहरी बारीक और मुलायम धरती बीज के उगने और बढ़ने के निमित्त काफी होती है और जब पौधा सँभल जाता है तो वह स्वयं बढ़ जाता है और नीचे की सतह में उसकी जड़ें बढ़कर अपना भोजन प्राप्त करने लगती हैं।

चैती की जोताई यदि खेत दो-फसला है तो भदई के कटने पर (सितंबर से) आरंभ कर दी जाती है। इस समय यदि पानी बरसा तो धरती की जोताई में सहायता मिलती है और धरती अच्छी तरह से कमाई जा सकती है। फसलों की आवश्यकता के अनुसार कई बांह खेत जोत कर कार्तिक (मध्य अक्तूबर) तक फसलें बो दी जाती हैं। यदि वृष्टि नहीं होती तो सिंचाई द्वारा जहां तक जल और परिश्रम प्राप्त हो सकता है खेत तैयार किए जाते हैं, अन्य खेत छोड़ दिए जाते हैं। मटर तथा चने के खेतों को ऊख या गेंहू के खेतों की तरह अधिक जोताई की आवश्यकता नहीं होती, प्रायः ये काफी नमी रहने पर ढेला रहते ही खेतों में बो दिए जाते हैं और

फसल अच्छी होती है। खेतों की तैयारी के अनुसार फसल बोना अच्छा होता है, नहीं तो लाभ का लेखा पूरा नहीं पड़ता। जैसी जोताई हो वैसी फसल बोई जाय। यदि खेत एक-फसला है तो उसकी तैयारी परती खेतों के सदृश होती है।

७—परती जमीन की जोताई।

एक-फसले खेतों में धरती कई महीने परती पड़ी रहती है अप्रैल से अक्तूबर तक अथवा सितंबर से मई जून तक और दो-फसले खेतों में अगस्त से अक्तूबर तक अथवा मार्च या अप्रैल से जून तक। इसी अवसर में रबी तथा खरीफ के [illegible] वाले खेत आगामी बोई जानेवाली फसल के अनुसार तैयार किए जाते हैं। जैसी उत्तम मूल्यवान् फसल बोई जाती है उसके लिये उतनी ही जुताई की आवश्यकता होती है। उचित समय पर जुताई करने के सुभीतों के अनुसार जुताई जारी रखनी चाहिए।

कड़ी धूप, कड़ी हवा के झोंके और सीत, पानी सहन कर कृष-कार अपने खेतों की तैय्यारी करता है, उस पर नियमित समय पर शस्य बोता है, अपने कर्तव्य पालन करने में वह आपदाओं और कठिनाइयों का विचार नहीं करता, लोक हित के लिये अन्न उत्पन्न करता है।

परती जमीन के जोतने की आवश्यकता प्रायः कृषकों को विदित होती है। वे जानते हैं कि जोतने से खेतों को लाभ पहुँचता है और बिना जुते हुए खेत पड़े रहने में हानि होती है। जोतने से बहुत छोटे छोटे कीड़े जिन्हें बैकटीरिया

रहते हैं पृथिवी में पौधों के लिये उपयोगी पदार्थ एकत्रित करते रहते हैं। रासायनिक और भौतिक क्रियाओं और गरमी, हवा पानी धूप इत्यादि कारणों से भोजन संचार में सहायता मिलती है।

परती जमीन जोतने में ईति, भीति का भय जाता रहता है अथवा कम हो जाता है। खरीफ की फसल अथवा रबी की फसल में बहुत कीड़े मकोड़े फनगी तितिलियां माहो इत्यादि पौधों को हानि पहुँचाते हैं ? कोई पत्तियां चाट जाते हैं, कोई पेड़ों को हानि पहुँचाते हैं, कोई दाना तथा फल में छेद कर देते हैं कोई पुष्प खा जाते हैं इत्यादि अनेक प्रकार के कीड़े अनेक प्रकार से फसलों को हानि पहुँचाते हैं। यह अपने अंडे धरती में देते हैं जिनसे उनके बच्चे उत्पन्न होते हैं और खेतों में पड़ी हुई खूँटियों पर जो अँखुए फूट निकलते हैं निर्वाह करते हैं और इस प्रकार बढ़ कर आगामी शस्य को कई गुना अधिक हानि पहुँचाते हैं। धूप की गर्म्मी, हवा तथा रात की सरदी अथवा चिड़ियों के चुग लेने से इनकी वृद्धि रुक जाती है और आगामी फसल हानि से बच जाती है।

जुती हुई धरती में पानी अधिक सोखता है, धरती खुल जाती है और मुलायम होती है। धरती में जल बिंदु की धारणशक्ति अधिक बढ़ जाती है।

एक स्थान में ऐसा देखने में आया है कि धरती पहले से जोतकर छोड़ देने से वह फीकी पड़ जाती है और उसकी पैदावार कम हो जाती है। इसका कारण यह प्रतीत होता है

कि धरती के खाद्य अंश घुल कर पानी के साथ बह जाते हैं। इससे उस स्थान को लोग धरती का "फीका पड़ जाना" कहते हैं। इसका बचाव इस प्रकार हो सकता है कि पानी खेतों में अधिक न लगे और बहने न पावे, केवल आवश्यकता के अनुसार पानी रहना चाहिए।

नवाँ परिच्छेद।

बोआई।

बीज बोने के लिये खेतों की जोताई होती है। जब वे अच्छी तरह से तैयार हो जाते हैं तो उनमें बीज बोया जाता है। बीज बोने के पूर्व बीज कैसा है, किस निमित्त बोया जाता है इसका विचार किया जाता है, फिर बीज किस समय और किस प्रकार बोना चाहिए इस पर ध्यान दिया जाता है। अच्छे अथवा खराब बीज के अनुसार खेती की पैदावार होती है। जो बोया जाता है वही काटा जा सकता है। जैसी धरती हो उसमें उसी प्रकार का बीज बोना चाहिए। उन अवस्थाओं का विचार करके बीज बोना चाहिए जिनमें वे अच्छी तरह जम सकें और बढ़ सकें।

१—बोआई का समय।

हर फसल के बोने का नियत समय होता है। उसका विचार करके बीज बोना चाहिए। समय व्यतीत हो जाने पर कितना ही उपजाऊ खेत क्यों न हो शस्य अच्छी प्रकार नहीं होता, बीज के जमने में प्राकृतिक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। समय पर बोने से शस्य अच्छी तरह जमते और बढ़ते हैं। पौधों की बाढ़ और प्राकृतिक अवस्थाओं के विचार से यह सिद्ध हो गया है कि भिन्न भिन्न पौधों को भिन्न भिन्न

परिमाण में गर्मी की जरूरत होती है। इसके अनुसार खरीफ और रबी की फसलें दो समय पर बोई जाती हैं। एक फसल का बीज दूसरी फसल में साधारण अवस्था में नहीं पनपता।

जब धरती बहुत तर अथवा बहुत सूखी हो उस समय बीज न बोना चाहिए। अधिक पानी रहने से बीज के सड़ जाने का भय रहता है और बिलकुल सूखी धरती में नमी के अभाव से बीज नहीं, जमता। यदि पानी बरसने की आशा हो और धरती अच्छी तरह से तैयार हो चुकी हो तो बीज बो देने में हानि नहीं, पर यदि बीज बो देने पर अधिक जलवृष्टि का भय हुआ तो अच्छा अवसर परखना चाहिए। बहुत पानी से धरती कँदवा होकर कड़ी हो जाती है और उसमें से बीज के अंकुर ऊपर नहीं आ सकते या सड़ जाते हैं। असाधारण अवस्था में समय का निर्णय करना केवल अनुभव से प्राप्त हो सकता है अथवा प्रारब्ध के आसरे रहना पड़ता है।

जिन फसलों की बोआई में बीज कम लगता है उनको तो कृषक दोबारा बोने का साहस कर सकता है, जैसे मकई ज्वार इत्यादि में। परंतु गेहूँ आदि फसलों के बोने में यदि किसी दुर्घटना से बीज की हानि हो जाती है तो साधारण कृषक बीज के अभाव से अपना खेत बिना बोया छोड़ने पर मजबूर होता है अथवा अच्छे खेत में घटिया फसल बोकर उसे संतोष करना पड़ता है। बीज न मिलने की कठिन पीड़ा कृषकों को पहुँचती है। जमींदारों का कर्तव्य है कि वे कृषकों की सहायता करें क्योंकि उनकी अच्छी दशा से स्वयं उन्हीं का फायदा है।

१—बोआई की रीति।

बोआई के निम्न चार तरीके हैं—

(१) बेहन छोड़ना।
(२) एक एक करके बीज बोना।
(३) कूँड़े में बोना।
(४) छिटका बोना।

(१) बेहन छोड़ना।

इस रीति के अनुसार एक टुकड़ा खेत में कुछ बीज बोया जाता है। खेत के टुकड़े को "बेहनौर" या "कियारी" अथवा स्थान भेद के अनुसार अन्य नामों से पुकारते हैं। बेहनौर की खूब जोताई होती है और उसमें अधिक खाद दी जाती है। जब पौधे एक बित्ता अथवा तीन से छः इंच तक हो जाते हैं, वे या तो जड़ से उखाड़ लिए जाते हैं या सावधानी से खुरपी से खोद लिए जाते हैं और अन्य स्थान पर खेतों में लगाए जाते हैं। बेहनौर का क्षेत्रफल कम होने से अथवा पूरी मदद मिलने पर उसकी तैयारी बाग की धरती के समान हो सकती है। इसमें उगे हुए नवीन पौधों को 'बेहन' कहते हैं। उन्हें अन्यत्र लगाने अथवा "बैठाने" में अधिक मजदूरी और व्यय लगता है।

(२) एक एक करके बीज बोना।

बीज बोने की आदर्श रीती यही है कि बीज एक एक करके नियत फासले पर बोए जावें किंतु अधिक समय और मजदूरी के कारण सर्वदा ऐसा नहीं हो सकता। कूँडे में बोना या छिटका बोना इसी की निकटवर्तिनी रीतियों का अनुसरण करना है।

बीज बोने की मशीन ।
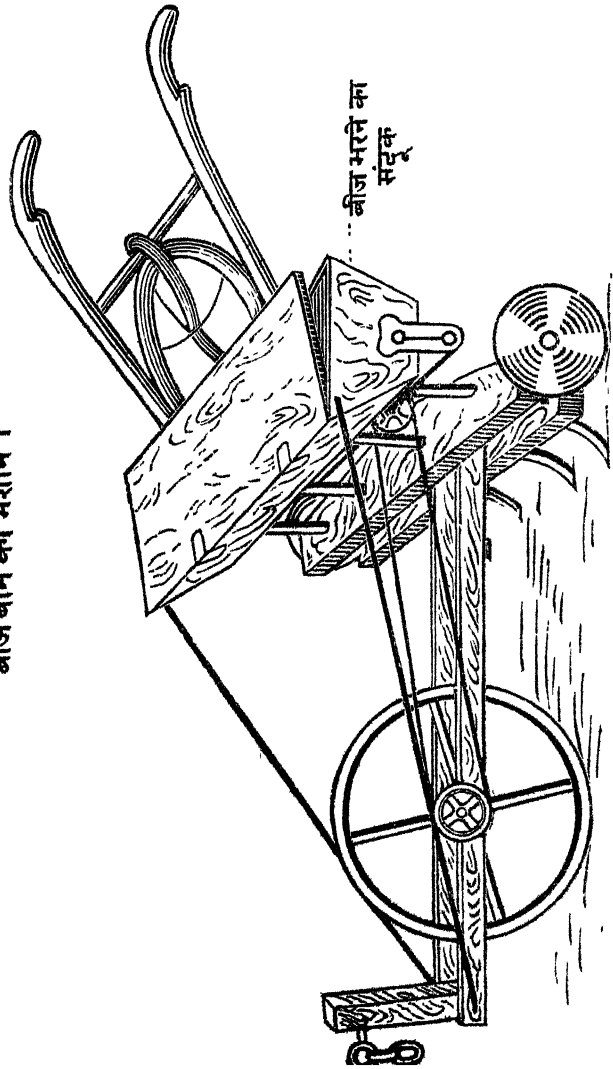
(२) कूँड में बीज बोना।

इसका उद्देश्य भी बीज को अलग अलग एक एक कर के बोने का है परंतु समय और मजदूरी बचाने के निमित्त इस रीति का अनुकरण किया गया है। अच्छी बोआई यह है कि बीज अलग अलग नियमित फासले पर पड़ें, भद्दपन के कारण एक स्थान पर दो या अधिक बीज न गिरें।

इस रीति के अनुसार आगे आगे हल चलाया जाता है और हल के पीछे एक आदमी मुट्ठी में से अंगुलियों के इशारे से बीज गिराता जाता है जो हल के कूँड में पड़ता है। जब हल से पास की दूसरी कूँड फटती है दाना ढक जाता है और ऊपर से हेंगा फेरने से धरती समतल हो जाती है।

कहीं कहीं हल के पीछे एक नली बाँध दी जाती है जिसे "बैरा" कहते हैं। इस बाँस या और किसी पदार्थ की नली के ऊपर बांस की बिनी हुई अथवा मिट्टी या चमड़े की "कीप" होती है। इसके द्वारा बीज बोया जाता है। कहीं कहीं बोने के निमित्त चौड़े चौड़े कई पंक्ति के बैरा होते हैं।

बैरा द्वारा बीज बोने की चलन कहीं कहीं है और कहीं कहीं नहीं है। जहां लोग इसकी उपयोगिता जानते हैं इससे बोआई अच्छी तरह करते है।

बैरा से बोआई करने में कीप में बीज प्रमाण से डालना चाहिए। यदि एक साथ अधिक बीज पड़ जाते हैं तो नालिका भर जाती है और जब तक इसका पता नहीं चलता कुछ
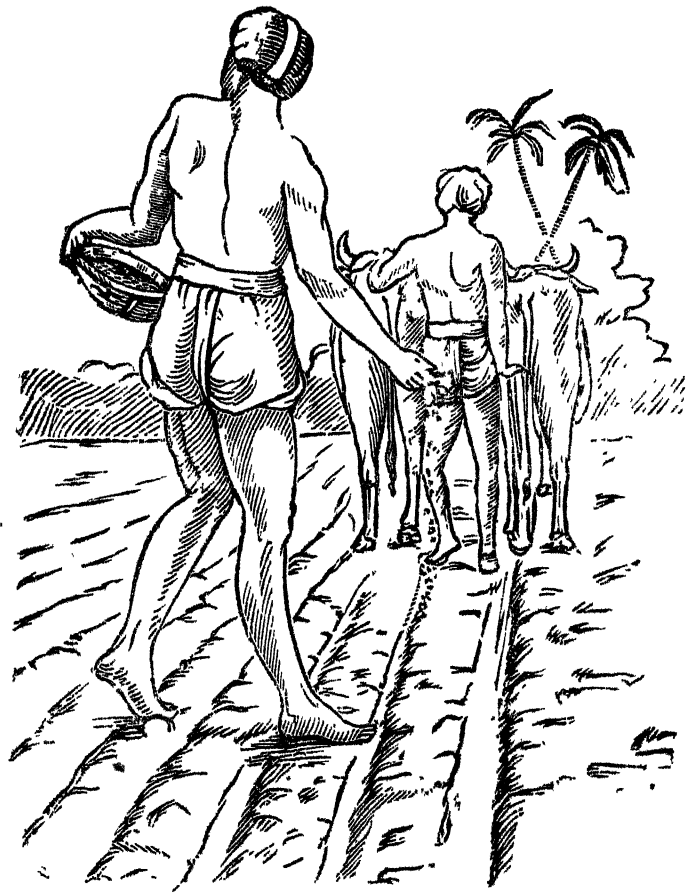
कूँड़ में बीज बोना।

अंश खेत का बिना बोया रह जाता है और दोबारा उस स्थान की बोआई करनी पड़ती है। यदि इसका पता न लगा तो बीज जमने तक पता नहीं चलता।

(४) *छिटका बोआई।*

अधिकतर बोआई छिटका रीति के अनुसार की जाती है, क्योंकि इसमें सुविधा होती है, कम परिश्रम, कम समय और कम व्यय होता है। इस रीति के अनुसार बोने में इस बात का विचार किया जाता है कि बीज बराबर दूरी पर फैल जावें, अलग अलग गिरें, एक स्थान पर अधिक तथा दूसरे स्थान पर कम बीज न गिरें।

अनुभवी बीज बोनेवाला प्रायः ऐसी भूल नहीं करता। उसका बोया हुआ दाना बराबर गिरता है और खेत भर पर बराबर पड़ता है। अनभ्यस्त बीज बोनेवाला इसमें गलती कर सकता है। इस कारण बहुत से गाँव में लोग किसी दक्ष बोनेवाले से अपने खेत बोआते हैं जिसके लिये कुछ देना नहीं पड़ता और वह अवकाश रहने पर बड़ी प्रसन्नता से यह स्वीकार कर लेता है।

कुछ लोग बहुत से कंकड़, बजरी एकत्रित करके यदि छिटका बोआई का अभ्यास किसी ऊसर धरती पर करें तो कुछ परिश्रम से बोने के ढंग से विज्ञ हो सकते हैं। बीज का इकट्ठा गिरना या कहीं कहीं न गिरना बीज बोने में त्रुटि है, इससे हानि भी होती है।

बीज बोने में सदा स्थान का विचार कर लेना चाहिए। जैसा

पौधा हो उसके अनुसार बीज बोना चाहिए। यदि पौधा बड़ा है तो बीज दूर दूर बोना चाहिए, जैसे रहर का बीज।

बीज बोने के पहले अच्छे बीज का निर्णय कर लेना अत्यंत आवश्यक है। बीज अच्छी तरह से पौढ हो गया है या नहीं? बहुत पुराना अथवा घुना सड़ा तो नहीं है अथवा उसमें अन्य कोई रोग तो नहीं लगा है? यदि बीज खराब है तो उसकी पैदावार खराब और कम होती है। प्रायः कृषक इस दोष का निवारण अधिक बीज बोकर करना चाहता है परंतु जमने के पहले यह नहीं मालूम हो सकता कि खराब बीज कहां पर गिरेगा।

बीज की बोआई के संबंध में यह विचारना आवश्यक है कि बीज किस गहराई पर बोया जाय। बीज की बड़ाई छोटाई, मौसिम और धरती में नमी के अनुसार इस गहराई का विचार किया जाता है। सूर्य की किरणों से बचाने के लिये बीज गहराई पर बोया जाता है तथा जब नमी कम है उस समय बीज गहराई पर बोया जा सकता है। छोटे छोटे बीज यदि अधिक गहराई पर बो दिए जाँय तो उनके जमने के पश्चात् उनके अंकुरों में इतना बल नहीं रहता कि वे धरती की सतह तक आसकें। वे भोजन और बल के अभाव से बीच ही में नष्ट हो जाते हैं। छोटे छोटे बीज सतह के निकट बोए जाते हैं जिससे उनका अंकुर जम कर हवा से भोजन प्राप्त करने लगता है और जड़ धरती में प्रवेश करके उसकी परवरिश करती है। तमाखू आदि के छोटे छोटे बीज बेहनौर में बोकर टट्टियों द्वारा सूर्य से बचाए जाते हैं और उनकी बोआई करीब करीब

सतह पर होती है। बड़े बीज गहराई पर बोए जाते हैं, क्योंकि सतह पर उनको पूरी नमी नहीं मिलती और उनको जमने में कठिनाई होती है, उनकी जड़ों को धरती में धँसने और पौधे को थामने में कम धरती मिलती है। सतह पर बोने से उनको चिड़ियां चुग लेती हैं।

बोआई की रीति, बीज के आकार, धरती की उत्पादन शक्ति, बोआई का आशय, फसल, पौधों की स्थिति के अनुसार, भिन्न हुआ करती है। बड़े पौधों की जो अधिक विस्तार में फैलते हैं बोआई में कम बीज लगता है। बोआई के उद्देश्य के अनुसार यदि बीज दाने के लिये बोया गया है तो बीज की मात्रा, चारा अथवा रेशा की अपेक्षा कम लगती है।

दाने के लिये बीज छितरा बोने में यह लाभ है कि पौधा हृष्ट पुष्ट और बलिष्ट उत्पन्न होता है और अच्छे पौधे में अच्छा दाना और अधिक दाना उत्पन्न होता है। छित्रा बीज बोने का आशय यह नहीं कि धरती का कुछ अंश खराब किया जाय और उस में बीज न बोया जाय, किंतु पौधे की आवश्यकता के अनुसार उसको पूरी जगह बढ़ने को चाहिए। पेड़ी अथवा पत्ते, रंग, रेशा, अथवा खाद के निमित्त जब पौधो की आवश्यकता होती है उस समय बोआई गझिन की जाती है क्यों कि यहां बलिष्ट पौधों की आवश्यकता नहीं रहती। इस अवस्था में पेड़ी और पत्ती की अधिक आवश्यकता होती है। चारे के लिये पतली और मुलायम पेड़ी उत्पन्न होनी चाहिए; रेशा के लिये पतले

और लंबे पौधों की आवश्यकता है क्योंकि लंबे पौधों में मुलायम सीधा और अधिक रेशा निकलता है। पौधों का रेशा जिन में शाखाएं निकल पड़ती हैं खराब और छोटा होता है। मोटे पौधे के सड़ाने और रेशा निकालने में अधिक परिश्रम पड़ता है।

छोटे बीज बोने के पहले वे मिट्टी, राख तथा बालू के साथ मिला कर बोए जाते हैं जिससे एक ही स्थान पर बहुत से बीज जमा न हों, बोने में सुगमता हो और बीज पूरे विस्तार से खेत भर में फैल जावें, जैसे सावां अथवा चना इत्यादि के बीज। कपास के बीज पहले गोबर या गीली मिट्टी में सौंद दिए जाते हैं जिससे अलग अलग रहें, और बोने में कठिनाई न हो। चना, मटर, ज्वार, मकई पर चिड़ियों का अधिक धावा होता है और एक एक समय पर सौ सौ या इससे भी अधिक चिड़ियों का समूह दाना खाते हुए देखा जाता है। इनके आक्रमण से बीजों को बचाने के निमित्त उनको अलकतरा या तूतिया (नीला थोथा) में रँग देते हैं।

३—बीज का छितरा और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बोना।

जिस स्थान पर बीज अधिक बोया गया है अथवा जहाँ बीज कम पड़ा है पौधों की बाढ़ और उनके उत्पादन में विशेष प्रभाव पड़ता है। गझिन बोआई के पौधों के उद्देश्य के अनुसार उनकी बाढ़ का उल्लेख ऊपर आ चुका है। आवश्यकता के अनुसार कुछ पौधे उखाड़ कर बोआई ठीक की जा सकती है। जहाँ बीज कम पड़ा है समय रहने पर उस स्थान पर

बीज बोया जा सकता है अथवा जब पौधे छोटे छोटे रहें उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगा सकते हैं। इस काम में सावधानी होनी चाहिए, नहीं तो एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान में लगाए गए पौधों के पनपने में बाधा पड़ती है। यह देख लेना चाहिए कि पौधे बहुत बड़े तो नहीं हो गए हैं, और समय तो नहीं निकल गया है। संध्या समय पौधों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर सावधानी से खुर्पी से खोद कर लगाना चाहिए क्योंकि संध्या समय लगाने में सूर्य की गर्मी से उनकी रक्षा होती है और रात्रि को ओस से सहायता मिलती है।

प्रायः यह रीति सब जगह नहीं की जाती। एक स्थान की कमी दूसरे स्थान की बेशी में समझ ली जाती है। अधिक परिश्रम करने का अवकाश भी बोआई के समय कम रहता है अथवा यह भी विचार किया जाता है कि इस श्रम का बदला मिलेगा या नहीं। इस कारण समय और फसल का विचार करके यह क्रिया की जाती है। कपास इत्यादि फसलों के खेतों में इस रीति का प्रयोग लाभदायक होता है अथवा बागवानी या कछियाना की फसलों को उपयोगी होता है।

४—गझिन और छितरी बोआई।

छिटका बोआई की रीति के वर्णन में गझिन और छितरी बोआई का उल्लेख किया गया है। इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए जिससे बीज व्यर्थ न जाय और फसलें इच्छा के अनुसार बढ़ें और लाभदायक हों।

दसवाँ परिच्छेद ।

१—बीज का चुनना ।

अच्छे बीज की आवश्यकता का वर्णन बीज बोने के संबंध में किया जा चुका है । बीज की बनावट का उल्लेख तथा अच्छे बीज की परिभाषा का वर्णन ऊपर आ चुका है जिससे हमें विदित होता है कि अच्छा बीज एकत्रित करना कृषिकार का एक मुख्य कर्त्तव्य है । प्रायः कृषिकार अच्छा बीज न पाकर घटिया बीज बो देते हैं, जिससे अच्छी फसलें नहीं उत्पन्न होतीं अथवा वे आवश्यकता से अधिक बीज बोते हैं ।

अधिक अन्न बोने का आशय यह होता है कि यदि एक बीज न उगा तो दूसरा उगेगा । परंतु यह रीति लाभदायक नहीं और इसका एकत्रित परिणाम हानिकारक है । पर जब तक ऐसे कारण एकत्रित नहीं किए जा सकते कि अच्छा बीज बोने को मिले यह हानि रोकी नहीं जा सकती ।

बीज बेचने के कारखाने अथवा दूकान का चलन आमतौर पर नहीं पाया जाता । इस कारण अच्छा बीज मिलने में और कठिनाई होती है ।

यदि कृषिकार ने बोने के निमित्त बीज रख छोड़ा है, तो वह समय पर अपने खेतों में बोआई करता है । यदि उसके पास का अनाज खतम होगया है और बीज खरीदने को

उसके पास दाम नहीं है, तो वह अपने महाजन से बीज पाने की खुशामद करता है। सूद का दर अधिक होता है। बोआई के समय अनाज महँगा होता है, इससे बीज खरीदने में अधिक दाम लगते हैं। यह भी होता है कि वह सवाई पर खराब अन्न पाता है, और प्रायः जो पास है वही बोता है।

अच्छे से अच्छे अनाज का दर अधिक होता है। अधिक दाम के लालच पर कृषिकार और महाजन अपना अच्छा अनाज अधिक दामों पर बेंच देते हैं। जो घटिया माल उनके पास रहता है वह बोने के काम में लाया जाता है जिससे आगामी फसल हीन हो जाती है। महाजन को जितने अधिक दाम से प्रीति हो सकती है उतनी उसे अच्छा बीज एकत्रित करने से नहीं होती, क्योंकि वह ज़ानता है कि फसल बोने के समय गरज-मंद कृषक को उसके यहाँ से उधार लेने के सिवाय और कहीं चारा नहीं और वह बोआई के समय खराब अनाज भी देकर उसके फसल का अच्छे से अच्छा अनाज सवाया ले सकता है। इस पद्धति से साल बसाल फसलें खराब होती चली जाती हैं जिसका परिणाम दुर्भिक्ष और दरिद्रता है।

इन अवस्थाओं पर भी खराब बीज मिलने में कठिनाई उपस्थित होती हैं और महाजन अथवा गाँव का ठाकुर बड़े निहोरे से अनाज देता है। इसका कारण चाहे तो उधार लेने वालों का अविश्वास अथवा सूद देने में कमी, अथवा बीज की कमी होता है। पाश्चात्य देशों से अधिकतर, तथा कहीं कहीं हमारे देश में भी बीज बेचने के विश्वासपात्र कारखाने और दूकानें हैं। उनमें अच्छे से अच्छे बीज पहचानने और

चुनने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बीज चुनने पर उनकी रखवाली करना और दूसरी फसल के बोने के समय तक उनको अच्छी दशा में बनाए रहना तथा खराब बीज को छाँटना उनका कर्तव्य होता है। जिनको आवश्यकता होती है बिना कठिनाई के चुना हुआ बीज मोल ले सकते हैं। इस व्यवसाय की हमारे देश में आवश्यकता है और इससे लाभ भी हो सकता है। बीज बेचनेवालों के अपने ही खेत होते हैं और वे अपनी कृषिशालाओं में केवल बीज उत्पन्न करने और उन्हें रखने पर विशेष ध्यान देते हैं। ऐसे कारखाने सुभीते के अनुसार गाँव में अथवा शहर के निकट या किसी रेल के स्टेशन के निकट स्थापित किए जा सकते हैं। होनहार नवयुवक व्यापार की प्रणाली पर उन्हें चला कर उनसे अच्छा लाभ उठा सकते हैं। साथ ही साथ वे कृषि संबंधी पुस्तकें, औजार, पानी उठाने की कलें इत्यादि कृषिसंबंधी आवश्यक चीजों का भी प्रचार कर सकते हैं।

सभी जानते हैं कि अच्छा बीज प्राप्त होने और उनको खेत में बोने से कई गुना अन्न प्राप्त हो सकता है। थोड़े अच्छे बीज से कई गुना अच्छा अन्न उत्पन्न हो सकता है। जमींदार अच्छा बीज देकर अपनी रिआया की सहायता करता है परंतु यथार्थ में परोक्ष रूप में वह स्वयं अपनी सहायता करता है क्योंकि रिआया की आबादी जमीनदार की खुशहाली का कारण होती है।

अच्छा बीज चुनने में इस बात का निर्णय कर लेना चाहिए कि बीज के अंकुर को कोई हानि तो नहीं पहुँची है,

वह जीवित और आरोग्य है, पुराना नहीं है, घुना और सड़ा हुआ नहीं है, उसमें अन्य दूसरे अनाज तथा खर पतवार का बीज नहीं मिला हुआ है, वह सब से बलिष्ट और आरोग्य बालियों से चुना गया है, न कि चिचुकी और अन-प्रौढ़ बालियों से। यदि फसल आम तौर से अच्छी नहीं है और उसके दाने प्रौढ़ नहीं हुए हैं तो बोने के लिये ऐसी फसल से बीज न रखना चाहिए। ऐसी अवस्था में बीज अन्य किसी अच्छी फसल से प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रायः ज्वार और मकई के बीज चुनने में कृषिकार अधिक तत्पर देखा जाता है। जब फसल प्रौढ़ हो जाती है, वह सब से अच्छे भुट्टे चुन कर उन्हें खूब सुखाता है और उन्हें आगामी फसल के बोने के समय तक हिफ़ाजत से रखता है। जब बोने का समय आता है उनमें से खराब बीजों को बीन कर निकाल देता है। इसका कारण शायद यह है कि इन फसलों में बीज कम लगता है। गेहूं, जौ के बीजों की चुनाई में अधिक परिश्रम पड़ता है और सब कृषि-कारों को उस परिश्रम से लाभ उठाने का अवसर नहीं प्राप्त होता। मटर, कपास, चना, तथा तेलहन की फसलों में अधिक कृमि लग जाने का भय रहता है। इसके बचाव के लिये उन्हें जब वह खूब प्रौढ़ हो जावें तब घाम में खूब ही अच्छी तरह सुखा कर रखना चाहिए।

२—बीज का त्याग।

बोने के पहले बीज को छाजन में चाल लेना चाहिए और इस प्रकार चिचुके और छोटे अप्रौढ़ बीजों को

अलग कर देना चाहिए। यदि संभव हो, तो उन्हें बीन कर एक एक बीज अलग कर लेना चाहिए। यद्यपि यह परिश्रमयुक्त तरीक़ा है परंतु जिस रीति से हो अच्छा बीज एकत्रित करने के लिये कोई परिश्रम अधिक न जानना चाहिए। उर्द, मसूर, मूँग, चना, मटर, थाली में रख कर ढरकाने से अच्छे और प्रौढ़ बीज अलग किए जा सकते हैं।

इस काम में सूप, तथा छेददार सूप और चलनी से सहायता ली जाती है। अधिक विस्तार पर काम निकालने के लिये लोहे के सूप छत से रस्सीयों द्वारा लटका कर काम निकाला जा सकता है।

ज़मीनदार लोग एक स्थान पर एक ही अनाज की संतति बोने के अतिरिक्त यदि अच्छे और मजबूत बीज अच्छे स्थानों से मँगा कर बोने का प्रबंध करें तो अनाज की जाति में उन्नति होने की आशा की जाती है।

३—बीज का संग्रह।

राज्य का फ़तह कर लेना जिस प्रकार बिना उसे स्थापित किए अथवा कोष का संग्रह करना बिना उसके हिफ़ाजत किए लाभदायक नहीं होता उसी प्रकार बीज को उत्पन्न करना लाभदायक नहीं हो सकता जब तक कि वह एक फसल से दूसरी फसल तक हिफ़ाजत से न रक्खा जाय। यह एक परिश्रम से परिपूर्ण कार्य्य है पर साथ ही आवश्यक भी है।

बीज की हिफ़ाजत करने में इस सिद्धांत पर विचार किया जाता है कि उसमें नमी न असर करे, क्योंकि नमी पाकर

बीज फूट निकलता है, दूसरे यह कि बीज में कीड़े न लगने पावें, क्योंकि कृमियुक्त बीज के अंकुर खराब हो जाते हैं और उनका जमना अनिश्चित होता है। जातीय सुगमता और सुविधाओं के अनुसार कृषक अपनी अपनी रीतियों का अनुसरण करते हैं। यह बात अनुभव से विदित होती है कि जितना ही अनाज सूखा होगा उतनी ही उसकी हानि से हिफ़ाज़त होगी। निम्नलिखित बीज रखने की कुछ सुगम रीतियां हैं—

४–कोठे में बीज रखने की रीति।

(१) पक्के अथवा कच्चे मकान की कोठरी के फ़र्श पर अथवा पटाव के मकान के ऊपर की छत पर एक बालिश्त भूसा की तह देकर उसी पर अनाज जमा किया जाता है। दीवार के आस पास भूसा लगा दिया जाता है कि दीमक तथा नमी अनाज को खराब न करें। इसके पश्चात् अनाज भूसे से ढांक देते हैं।

(२) कहीं कहीं जब कई किस्म का अनाज होता है तो अनाज बोरों में भर कर तब भूसे पर रक्खा जाता है और वह ऊपर से भूसे से ढाँप दिया जाता है।

ठेका में बीज रखने के रीति।

कुएँ के आकार के बहुत बड़े और चौड़े मोटे टाट के बने हुए बोरों को ठेका कहते हैं। इन्हें पत्थर, ईंटों, तख़्तों तथा भूसे की सतह पर रख कर उनमें अनाज भर दिया जाता है।

बखार या खातों में बीज रखने की रीति ।

कोठरी के भीतर एक या डेढ़ गज़ ऊंची ईंटों की दीवारें उठा दी जाती हैं जिससे कोठरी में कई खाने बन जाते हैं। उन पर मिट्टी का पलस्तर करके गोबर से लीपते हैं और फिर मिट्टी से पोत कर जब वह खूब ही सूख जाते हैं एक एक खाने में अनाज रक्खा जाता है। आवश्यकता के अनुसार बड़ा और छोटा खाना, दीवार ऊंची नीची तथा नज़दीक या दूर बना कर कर सकते हैं। खाता छत की कोठरी पर बनाने से सींड़ का भय जाता रहता है।

खत्तियों में बीज रखने की रीति ।

अधिक अनाज रखने के लिये खत्तियों का प्रयोग किया जाता है और उसी अनाज में से बीज के लिये दाना अलग कर लेते हैं।

धरती में कुएँ के समान गढ़हा खोदा जाता है। स्थान ऐसा चुना जाता है जहाँ की धरती सूखी हो। खत्ती की गहराई इतनी होती है कि पानी के सोते से दूर रहे तथा उसका अनाज पर असर न पड़ सके।

कोठिला में बीज रखने की रीति ।

यदि अनाज कम है, तो वह कोठिला में रखा जाता है। कोठिले मिट्टी के बनाए जाते हैं। छोटे छोटे कोठिले आवाँ में पकाए जाते हैं, बड़े बड़े कोठिले कच्चे रहते हैं। वे मिट्टी और गोबर से लीपे पोते होते हैं। पेंदे के कुछ ऊपर एक छेद रहता है, उसी के द्वारा अनाज निकाला जाता है। उसको कपड़े या टाट के टुकड़े से ठूँस कर बंद कर सकते हैं।
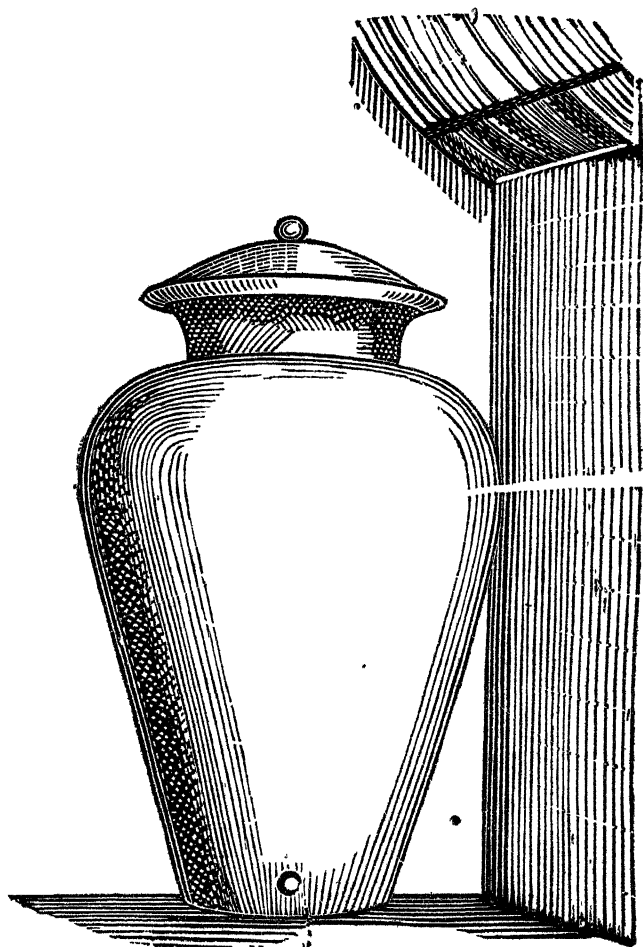
कोठिला सफरी ग्लास की तरह कई टुकड़ों में विभाजित हो सकता है। ये टुकड़े क्रमशः एक दूसरे के ऊपर रखे जाते हैं।

पुआल, मूंज अथवा अरहर के दौरे।

सरपत, मूंज, अरहर अथवा और कोई मुलायम वस्तुओं के डंठल लेकर स्थान स्थान पर भिन्न आकार प्रकार के दौरे बना कर उनमें थोड़ा बहुत अनाज रखते हैं।

नोट।

बीज के साथ एक अंगरेजी दवा 'नेपथैलीन' जो एक रुपए सेर बिकती है रखने से उनमें कीड़े नहीं लगते, बीज को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचती, उसके स्वाद तथा गुण में अंतर नहीं पड़ता। धूप में रखने से नेपथैलीन की बू अनाज से निकल जाती है।

लोहे, जसते अथवा टीन के बने हुए बड़े बड़े बक्स अथवा कनस्तर, या काठ के संदूक भी सुभीते के अनुसार बीज रखने के लिये काम में लाए जा सकते हैं।

५—नई फसलों का बोना।

लाभदायक और नवीन शस्यों का अनुभव करने से अनुकूल स्थानों पर उन्हें बोना लाभदायक हो सकता है। जैसे आलू, तमाखू और मूंगफली की खेती से सुभीते के अनुसार बोये जाने पर अच्छी आमदनी हो सकती है।

६—धरती के अनुसार बीज का चुनना।

उपजाऊ और अनउपजाऊ धरती का विचार करके मूल्यवान फसलें बोनी चाहिएँ, जिससे परिश्रम और बोने की मजदूरी प्राप्त हो और लाभ की संभावना हो। जिन फसलों को पानी की अधिक आवश्कता हो उन्हें जलाशय के पास बोना चाहिए जिससे सिंचाई में दूर से पानी लाने में कठिनाई न पड़े।

ग्यारहवाँ परिच्छेद ।

निराई और गोड़ाई ।

१—निराई ।

खेतों में फसल बोई जाती है। कृषिकार का अभिप्राय होता है कि फसल अच्छी तरह से बढ़े और उससे मुझको लाभ पहुँचे, पर फसल के साथ बहुत से अन्य खर पतवार जम जाते हैं जो उसके भोजन, जल और वायु के हिस्सेदार हो जाते हैं। कितने खर पतवार तो ऐसे होते हैं जो फसल से भी अधिक बलवान् हो जाते हैं और बढ़कर फसल को दबा लेते हैं। इन खर पतवारों को निकाल देना कृषिकार का परम कर्तव्य है। इस प्रकार से खर पतवार के निकालने को निराई कहते हैं।

यदि खर पतवार बोआई के बाद फसल के साथ बढ़ते हैं तो उन्हें जितनी जल्दी हो सके निकाल देना चाहिए, नहीं तो उगती फसल की बाढ़ पर बड़ा असर पड़ेगा। खर पतवार धरती से वही भोज्य पदार्थ खींचते हैं जिसकी फसल को आवश्यकता रहती है। वे फसलों की अपेक्षा प्रायः कठिन समय का अधिक मुकाबला कर के जीवित रह सकते हैं। उनको जड़ से खोदकर निकाल देना चाहिए क्यों कि केवल पेड़ी और पत्तियों के काटने से वे फिर फिर बढ़ जाते हैं। खर पतवार के बढ़ने और फूलने फलने से उनका बीज उसी

खेत में गिरता है और आगामी फसल के साथ वे अधिक हो जाते हैं।

बँसवारी, रोइना, जवासा, आक, तिपतिया, दूब, आम-तौर से खेतों में फैलते हैं। उनके बढ़ जाने पर उनके बीज हवा में उड़कर आसपास बिखर जाते हैं। मदार के बीज तो हवा में उड़ते हुए देखे जाते हैं और यदि वे किसी अनुकूल स्थान पर जहाँ उनके जमने का सुभीता हुआ गिरे तो जम कर बढ़ निकलते हैं। आसपास के खर पतवार के बीज उड़कर अपने खेतों में आ सकते हैं। इस प्रकार एक कृषक की लापरवाही के कारण दूसरे कृषक को कष्ट पहुँचता है।

खेत की निराई में अधिक परिश्रम और व्यय लगता है किंतु इस क्रिया से फायदा होता है। जो खर पतवार खाने योग्य हों जैसे बथुवा, मोथा इत्यादि उन्हें पशुओं को खिला देना चाहिए। दूसरे खर पतवार जला देने चाहिएँ और उनकी राख खाद के काम में लानी चाहिए। खर पतवार सुखा कर कदापि खाद के साथ एकत्रित न करने चाहिएँ क्यों कि वे बहुत कम सड़ते हैं और खाद के साथ वे फिर खेत में पहुँच जाते हैं जहाँ से वे निकाले गए थे। जब बीज प्रौढ़ हो जाता है, उनके कठिन छिलके के कारण वे पशुओं को हजम नहीं होते, केवल पत्ती और पेड़ों का अंश हजम होता है। कड़ा बीज गोबर के साथ बाहर आता है और खाद के गड्ढे में एकत्रित रहता है। खाद देने के समय अनजान में काश्तकार इसको खेतों में फेंकता है अथवा वह खाद के साथ खरपतवार के बीज खेतों में बोता है जो अपने समय पर

उगते, बढ़ते और कृषिकार के परिश्रम को बढ़ाते हैं। ऐसी अवस्था में पशुओं को खरपतवार खाने को न देना चाहिए वरन उन्हें एकत्रित कर के जला देना चाहिए। एक बार अच्छी तरह खरपतवार के साफ कर देने से उन के उसी फसल में बढ़ने का भय जाता रहता है और परिश्रम कम हो जाता है।

कांस, दूब प्रभृति खर पतवार जबतक जड़ मूल से नहीं निकाल डाले जाते उनकी बाढ़ का रोकना कठिन हो जाता है। उनके निकालने में फाँवड़े से गहरा खोदना पड़ता है अथवा बड़े बड़े हलों का प्रयोग करना पड़ता है। जब इस प्रकार के खर पतवार खेत में दिखाई दें, उन्हें अधिक बढ़ने देने के पहले ही खोद कर साफ कर देना चाहिए जिस से आगे बढ़ने का भय न रहे। काँस के दखल के कारण अच्छे खेत जोत से बाहर हो गए हैं।

कुछ खर पतवार ऐसे होते हैं जिनकी जड़ें धरती में पड़ी रहती हैं। जब उनपर पानी पड़ता है वे जम निकलती हैं। कुछ खर पतवार इस कारण से जम आते हैं कि वे शस्यों के बीज साफ न होने के कारण उनके साथ मिल कर खेतों में बोए जाते हैं। कुछ खेतों में पड़े रहते हैं और जब उनके जमने की ऋतु आती है वे जम आते हैं।

खर पतवार प्रायः खुर्पी से निराए जाते हैं। छोटे और बड़े हल भी समय पर खर पतवार निकालने के काम में लाए जाते हैं। बाजूवाले हल खर पतवार निकालने में बड़े उपयोगी होते हैं क्यों कि उन से खर पतवार खोद कर उलट दिए

जाते हैं, जिस से उनकी जड़ें उलट जाती हैं और वे सूखकर और सड़कर नष्ट हो जाते हैं।

बोए हुए शस्यों के बीज से खर पतवार निकालने में अधिक परिश्रम पड़ता है। कुछ खर पतवार ऐसे हैं जो जोताई के साथ जड़मूल से नष्ट हो जाते हैं और सूर्य्य के प्रभाव से जल जाते हैं। धान के खेतों में बड़े बड़े और घने 'नरई' प्रभृति बहुत से खर पतवार जम आते हैं। जब तक उनमें पानी रहता है उनको काट कर पशुओं तथा घोड़ों को खिलाते हैं। ऐसी अवस्था में उनका निकालना दुस्तर होता है। प्रायः ऐसे खेतों में एक ही फसल बोई जा सकती है। जब पानी सूख जाता है, वैशाख और ज्येष्ठ की कड़ी धूप पड़ती है वे जड़ मूल से भस्म हो जाते हैं जिस से खेत खुदबखुद साफ हो जाते हैं। इस अवस्था में यदि उनके बीज जो बहुत छोटे होते हैं एकत्रित कर के नष्ट कर दिए जाँय तो आगामी फसल में उनके बढ़ने का भय जाता रहे या कम हो जाय।

निराई के बाद खर पतवार खेत से निकाल देना चाहिए, उनको पैर से खेत में दबाना न चाहिए क्योंकि वे इस प्रकार फिर पृथ्वी में लग जाते हैं और जम आते हैं।

२—गोड़ाई।

पृथिवी की सतह मुलायम रखने के लिये, जिससे अच्छी तरह से हवा प्रवेश करे और पानी लगे, गोड़ाई की जाती है। गोड़ाई का यह भी आशय होता है कि नीचे की सतह का पानी संचित रहे और भाप बन कर न उड़े क्योंकि जैसा ऊपर बयान किया गया है गोड़ाई करने से केश नलिकाओं

का संबंध ऊपर की सतह से टूट जाता है और पानी भाप बन कर नहीं उड़ता। इस प्रकार संचित जल से पौधों को बहुत फ़ायदा पहुँचता है और तत्काल सिंचाई की मेहनत बच जाती है।

कई घनत्व के तरल पदार्थों में यदि बारीक नलिकाएँ रखी जाँय तो यह देख पड़ेगा कि सब से महीन छेद की नलिका में सब से अधिक तरल पदार्थ ऊँचे चढ़ेगा। इसीको केशाकर्षण शक्ति कहते हैं। सिंचाई में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि महीन जोते हुए खेतों में पौधों की जड़ें केशों द्वारा इस आकर्षण शक्ति के अनुसार नमी प्राप्त करती हैं। खेतों के अणु जितने पास और बारीक होते हैं उतनी ही बारीक नली बनती हैं। पटेला चला देने से ये नलिकाएँ टूट
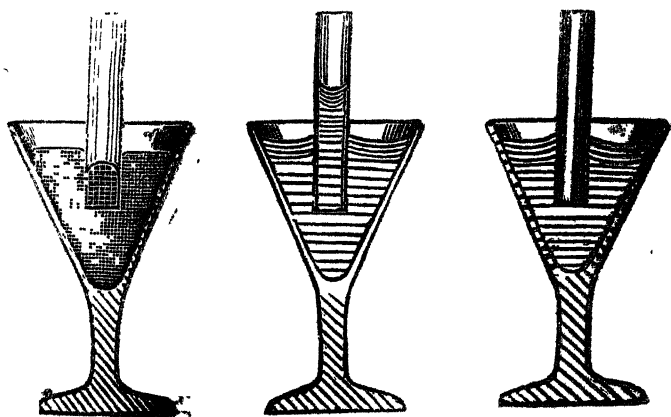
केशाकर्षण शक्ति ।

जाती है और पानी भाप बन कर नहीं उड़ता। बार बार गुड़ाई करने से इसी सिद्धांत पर पानी धरती में जमा रहता है और जहां सिंचाई के लिये पानी नहीं मिल सकता गुड़ाई करके इस सिद्धांत के ज्ञान से धरती में नमी कायम रखी जाती है।

बढ़ते हुए शस्यों को गोड़ाई से अधिक लाभ पहुँचता है। गोड़ाई के साथ साथ निराई भी होती जाती है। खुर्पी और कुदाली से गोड़ाई की जाती है। समय पर गोड़ाई कर देने से बहुत सी नमी पृथिवी में संचित रह जाती है। बोआई के बाद जब पौधे कुछ बढ़ आते हैं और खेत की ऊपरी सतह सूखी दिखाई पड़ती है उसी समय गोड़ाई करना अच्छा होता है जिससे नीचे की सतह की नमी संचित रह जाय। इस अवसर पर निराई भी करते जाना उचित होता है। बार बार निराई और गोड़ाई से शस्यों को अनेक लाभ होते हैं और पौधे बलिष्ठ हो जाते हैं। गोड़ाई के पश्चात् जब धरती सूख जाती है और पौधे मुर्झाने लगते हैं उस समय सिंचाई की आवश्यकता होती है।

जो शस्य दूर बोए जाते हैं, जैसे कपास, मकई, उनकी निराई में नवीन दस्ती पाहिएदार 'गोड़ना' (Hand Hoe) काम में लाया जाता है जिससे अधिक काम होता है। उसके चलाने में कोई विशेषता नहीं, उसका दस्ता पकड़ कर खड़े होकर उसे धरती पर आगे पीछे खींचते हैं, जिससे धरती गुड़ती जाती है। इस गोड़ना से आसानी से और अधिक काम होता है।

बारहवाँ परिच्छेद ।

सिंचाई ।

१—जलाशय ।

पौधों के जीवन में पानी की अत्यंत आवश्यकता का वर्णन ऊपर कई स्थानों पर आ चुका है । प्राकृतिक रूप में पानी पृथिवी पर वर्षा रूप में पौधों को प्राप्त होता है और अधिक या कम धरती में संचित रहता है । वर्षाजल पौधों को हर समय न प्राप्त होने के कारण कृत्रिम रूप से जहां कहीं पानी मिले लेकर पौधों को पहुँचाया जाता है जिस से वे जीवित रहें, बढ़ें, फूले और फलें । पौधों को कृत्रिम रूप से जल पहुँचाने को सिंचाई कहते हैं । सिंचाई के संबंध में दो बातों की आवश्यकता होती है, एक तो जल का प्राप्त होना, दूसरे वह जल किस प्रकार पौधों तक पहुँचाया जाय । दोनों बातें कठिन हैं और कृषि संबंधी विचारणीय विषयों में से हैं ।

अनावृष्टि के कारण कितने ही अकाल* भारतवर्ष में पड़ चुके हैं और जब कभी अनावृष्टि आ पड़ती है, अकाल की आंखें सामने चमकती दिखाई देने लगती है । कितने ही अन्य कारण हैं जो अकाल से रक्षा करने के संबंध में तथा उसके निवारण करने के संबंध में विचारणीय हैं, पर पानी के प्राप्त करने का प्रश्न सब से प्रथम है ।

पानी की प्राप्ति के स्थान—

(१) कुएँ, (२) सोते, झरने, (३) नदी, नाले, (४) तालाब गड़हे, पोखरे, पोखरियां, झील, (५) नहरें।

२–कुएं।

इस देश के अधिक भागों में कुएँ सिंचाई के प्रधान साधन हैं। जहां जितने कुएँ हैं वहां पर उतनी ही कृषिकर्म्म में स्थिरता है। बहुत से स्थानों पर नहरें बनती जाती हैं उनसे लोगों को पानी लेने में अधिक सुगमता होती है, पर नहरें सब जगह प्राप्य नहीं है और सब किसी के बनाने के बस की नहीं।

३–कुएँ की खोदाई।

भिन्न भिन्न स्थानों पर कुओं की गहराई, जहाँ पर पानी मिलता है, भिन्न होती है। यह गहराई प्रायः दस से सौ हाथ तक होती है (१ हाथ=डेढ़ फोट=१८" इंच का होता है।) जहाँ जल गहराई पर होता है वहाँ पर कुएँ की खोदाई में अधिक परिश्रम और व्यय की आवश्यकता होती है। पर केवल व्यय और परिश्रम पर कुएँ की खोदाई निर्भर नहीं है। धरती के भीतर कई सतहें धरती की मिलती हैं जिन्हें पार करके पानी तक पहुँचना होता है। कहीं बलुई सतह, मटियार सतह, कंकड़ीली सतह और सिक्ता सतह पारी पारी मिलती हैं। यह कोई नियम नहीं है कि कुएँ की खोदाई में सभी सतहें मिलें तथा एक ही क्रम से मिलें। जहां जैसी धरती तथा जितनी गहराई होगी वैसी ही सतहें मिल सकती हैं। यदि सतहें ठस मिलती गईं तो कुएँ की खोदाई सावधानी से बराबर चली जाती

है। चाहे खोदने में परिश्रम पड़े पर बाधा नहीं पड़ती। पर यदि बालू की सतह पड़ जाती है तो खोदाई में कठिनाई पड़ती है क्योंकि चारों ओर से बालू भरभराने लगता है जिससे खोदनेवाले काम नहीं कर सकते। बालू रोकने के लिये 'थार' तथा 'बीड़' डालते हैं जिससे बालू का भरभराना थम जाय। यदि बालू की सतह बीच में पड़ी और उसके नीचे फिर अच्छी धरती मिली तो कुएँ की खोदाई की कठिनाई जाती रहती है। पर यदि बालू की सतह पानी के पास मिलती है और दूर तक नीचे चली जाती है तो कुएँ का सँभालना दुस्तर हो जाता है। ऐसे कुएँ शीघ्र ही गिर जाते हैं। उनका प्रबंध करना कठिन और अधिक व्यय-साध्य होता है। यह कठिनाई अधिक गहरे तथा सामान्य अथवा कम गहरे कुओं में बराबर पड़ती है और कुएँ की खोदाई का परिश्रम बेकार जाता है।

साधारण अवस्था में जहाँ कुएँ अधिक हैं कुआँ खोदने के स्थान चुनने में गांव के लोग तथा कृषिकार कभी धोखा नहीं उठाते, पर जहाँ कुएँ नहीं हैं अथवा जहाँ की धरती की सतह अनस्थिर हैं किसी अनुभवी गुणी की राय लेना आवश्यक है।

कृषि विभाग के अधीन संयुक्त प्रांत के सभी जिलों में एक छेद करनेवाला कर्मचारी (Borer) रहता है जो अपने औजारों से पृथिवी के गर्भ के भीतर की सतहों की मिट्टी की बानगी निकाल कर यह बतला देता है कि किस गह-राई पर कितनी और कैसी मिट्टी निकलेगी। इस पूर्व ज्ञान से कुआँ खोदने में सहायता मिलती है और अधिक परिश्रम

और व्यय बच जाता है। कहीं कहीं लोग ज्योतिषी से स्थान निर्वाचित कराकर कुआँ खुदवाना आरंभ करते हैं पर प्राकृतिक नियम सब स्थान पर केवल विचार पर नहीं चलते, वहां तो साक्षात वस्तु से मतलब है। यदि ज्योतिषी अनुभवी है तो वह स्थान निर्वाचित करने में अपनी साधारण बुद्धि के अनुसार जगह बतला देता है। कहां तक अच्छे ज्योतिषी मिल सकते हैं अथवा उनके अनुमान का कहां तक प्रभाव पड़ता है हम नहीं कह सकते। इसमें संदेह नहीं कि ज्योतिष पारदर्शिणी विद्या है और उसका चमत्कार माननीय है।

जिन कुओं में जल समीप मिल जाता है उनकी खोदाई में अधिक व्यय और परिश्रम नहीं करना पडता। पर जहां पानी बहुत गहराई पर है वहां कुआँ बनाने में अधिक धन की अवश्यकता है। कुएँ दो प्रकार के होते हैं—एक वे जिनमें पानी आस पास की धरती से स्रवता है। ऐसे कुओं में पानी कम होता है और आस पास के सोत पर निर्भर रहता है। ऐसे कुओं को स्रावित कुएँ अथवा अंग्रेजी में Percolation Well कहते हैं, दूसरे वे कुएँ जिनमें पानी किसी सोते से आता है अथवा किसी एकत्रित स्थान से प्राप्त होता है। ऐसे कुओं में अधिक जल होता है। प्रायः इस प्रकार के कुओं में जल गहराई पर मिलता है। ऐसे कुएँ सोत कुएँ (Spring Well) कहलाते हैं। दोनों प्रकार के कुओं में ज्यों ज्यों पानी निकलता जाता है उसके स्थान पर अधिक पानी एकत्रित होता जाता है पर पहले में समय पाकर जल की मात्रा चुक जाती है और दूसरे काम देते जाते हैं। गहरे और सोत कुएँ का जल प्रायः कठिन से कठिन

सूखे में भी नहीं सूखता, यद्यपि ताल, पोखरे, और झील तक सूख जाते हैं। इन कुओं से गहराई के कारण पानी के भाप बनकर उड़ने का कम भय रहता है। पर अधिक गहराई से जल का उठाना बड़ा कठिन होता है और उनसे सिंचाई में अधिक परिश्रम पड़ता है।

४—कुएँ की बँधाई।

बिना बँधे हुए कुओं के गिरजाने का अनेक कारणों से भय रहता है क्यों कि इनमें दृढ़ता नहीं होती। ऐसा भी देखा जाता है कि कहीं कहीं बहुत पुराने कच्चे कुएँ वर्त्तमान हैं। वे सुदृढ़ हैं और उनके गिरने का भय नहीं। यह मिट्टी की तासीर है। जहां की जैसी मिट्टी हो वहां वैसा कुआँ बन सकता है। साधारण स्थानों पर पानी पड़ने से मिट्टी फूलती है और फूलजाने से कुएँ की दिवारों के गिर जाने का भय रहता है। इसी के लिये कुएँ की बँधाई की जाती है। ऐसे बँधे हुए कुएँ बहुत दिनों तक काम देते हैं।

५—कच्चे कुएँ।

जहां धरती की सतहों में मटियार जमीन अथवा सख्त सिकता धरती पड़ती है वहां कच्चे कुएँ बहुत दिनों तक काम देते हैं। ऐसे कुएँ केवल खोदाई के व्यय पर तैयार हो जाते हैं। इस प्रांत के पश्चिमी ज़िलों में जहां पानी गहराई पर मिलता है साधारण अवस्था और अच्छी धरती में दस बारह रुपए में कुएँ खोदे जाते हैं। पूर्वी ज़िलों में जैसे बनारस और आज़मगढ़ में पानी बहुत क़रीब मिलता है, और १।) से २)

तक में कुआं खोदा जाता है। ऐसे कुओं की आयु बहुत कम होती है।

आज़मगढ़ और बनारस में खेतों के किनारे कच्चे कुएँ डेढ़ हाथ चौड़े खोद कर उनसे आबपाशी की जाती है पर फिर वे दूसरी फसल में गिर जाते हैं। पानी दस हाथ पर मिल जाता है। इन कुओं की खोदाई खतरे से खाली नहीं तथापि कोयरी अपने खेतों की सिंचाई करने के लिये जोखिम उठाते हैं। इन कुओं में स्रवित जल आता है जिसकी मात्रा अत्यंत कम होती है।

यदि बालू की मोटी सतह पड़ जाती है तो बालू को भरने से रोकने के लिये अरहर, पतलो, जमुनी या जमुआ की डाली तथा शीशम की डालियों से दौरी के सदृश बिनावट का गोल चक्कर जिसे 'बीड़' कहते हैं बनाकर डालते हैं। इनकी बिनावट बड़ी मज़बूत होती है। इससे बालू रुक जाता है और कुएँ खोदनेवाले निर्भय काम कर सकते हैं। यदि बालू की सतह पतली है तो बीड़ डालने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

६—पक्के कुएँ।

दीवारों की रक्षा करने के लिये कुओं की बँधाई होती है जिससे वे अधिक काल तक काम दें और बार बार नए कुएँ खोदने की मिहनत और चिंता जाती रहे। ठोस मटियार धरती के कुओं की दीवारें बहुत दिनों तक काम देती हैं। पानी के छलकने से उनकी दीवारों से चक्के ओदर कर कुएँ में गिरते हैं। इस प्रकार यदि बीच से अधिक भाग खाली हो

गया तो कुएँ के गिर जाने में संदेह नहीं रहता। कुछ कुओं की दीवारों में काई लग जाने से पानी की रक्षा होती है।

कुओं की बँधाई कहीं पूरी कहीं अधूरी होती है। यदि कुएँ में पतली मिट्टी की कई सतहें पड़ जाती हैं तो पूरा कुआँ बाँधना चाहिए। यदि मिट्टी ठोस हुई तो कुएँ के ऊपरी भाग का कुछ हिस्सा बाँध दिया जाता है। अधूरे कुएँ की बँधाई में ईंट तथा पत्थर जिससे बँधाई होती है कुएँ के बीच में जितना दूर तक कुआँ बाँधना होता है ठोस दीवार में ताक खोद कर जमा देते हैं और आगे इन्हीं के आसरे बँधाई ऊपर तक कर दी जाती है।

पूरे कुएँ की बँधाई में बड़ी सावधानी से काम लेना होता है। इसमें असाधारण अवस्था में व्यय और भय दोनों का सामना करना पड़ता है। बँधाई नीचे से शुरू की जाती है और ज्यों ज्यों गोला तैयार होता जाता है उसको ऊपर से बोझा देकर नीचे दबाते जाते हैं। फिर उस पर जोड़ाई की जाती है और फिर गोला दबाया जाता है, यहां तक कि गोला समस्त कुएँ में आ जाता है और बँधाई बंद कर दी जाती है।

बोझा देने में और गोला नीचे दबाने में बड़ी सावधानी से काम लेना पड़ता है, नहीं तो बेमेल बोझ से गोला टूट जाता है और बँधाई व्यर्थ हो जाती है।

गोले की बँधाई जामुन तथा बबूल इत्यादि की लकड़ी के जमुवट पर बाँधते हैं। ज्यों ज्यों बँधाई होती जाती है उसे नीचे धँसाते जाते हैं और नीचे की मिट्टी सावधानी से खोद कर निकालते जाते हैं। कभी कभी जब गोला धँसने में दिक्कत

होती है तो जमुवट के साथ लोहे की धार लगाई जाती है। धार बहुत मज़बूत होती है। यह लोहे की बनाई जाती है। एक तरफ यह जमुवट में जड़ी होती है और दूसरी ओर इसकी बाट तेज होती है। कभी कभी जमुवट मोटे मोटे नार (रस्सों) से कुएँ के ऊपर किसी पेड़ अथवा बांस या खूटों में बांध दी जाती है। जब गोला धँसाने का समय आता है, रस्सों को खोल कर ढीला कर देते हैं और गोले को विधिपूर्वक धँसाते हैं।

गोला प्राय: पकाई हुई ईंटों तथा पत्थर के टुकड़ों से गारे अथवा चूने की सहायता से बनाते हैं। गोला गलाते समय यदि सावधानी से काम न लिया गया अथवा गारा, खराब हुआ तो गोला फट जाता है और नीचे काम करने वाले आदमियों के दबने का भय रहता है।

गोला गलाने की सीमा उस हद तक होती है जब तक वह नीचे किसी ठोस सतह पर न जम जाय। पहले यह ठोस सतह अनुकूल गहराई तक होनी चाहिए, दूसरे यह सतह इतनी मोटी होनी चाहिए कि वह गोले का भार सँभाल सके। इस सतह को जिस पर नींव पड़ती है 'मोटा' कहते हैं। अनुकूल मोटा के न मिलने से कुएँ की बँधाई में बड़ी बाधा पड़ती है। कहीं तो मोटा नहीं मिलता और कहीं इतना पतला होता है कि वह गोले का भार नहीं उठा सकता। इस अवस्था में छेद करनेवाले कर्म्मचारी (Borer) की सहायता से मोटे की हालत देख लेना अच्छा होता है।

कूँआ बनाने का केवल दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। हम

और बहुत सी छोटी छोटी बातें न लिख कर यह कह देना उचित समझते हैं कि कुँआ बनाते समय जानकार आदमियों की सम्मति और सहायता लेना आवश्यक है।

७—सोते और झरने।

पहाड़ी स्थानों में कुछ पानी सोते और झरनों द्वारा बहता है। इसको एकत्रित कर के निचास की धरतियों को सींचने के काम में लाते हैं। पहाड़ी स्थानों में ये बड़े उपयोगी होते हैं। ऐसे स्थानों में प्रायः यही जल सब कामों में लाया जाता है और जो कुछ खेती होती है उसमें इसी जल द्वारा सिंचाई का काम निकाला जाता है।

८—नदी नाले।

नदी से सुबिधा के अनुसार पानी उठा कर सिंचाई का काम लिया जाता है। छोटी नदियाँ, नाले भी सुभीते के अनुसार सिंचाई के काम में लाए जाते हैं। जहाँ पर सुभीता होता और पानी की अधिक आवश्यकता होती है आँयल इंजन लगा कर पानी उठाया जाता है।

९—तालाब, पोखरे, पोखरियां।

पक्के तालाब प्रायः सिंचाई के काम में बहुत कम आते हैं, क्योंकि उनमें से पानी के निकास का कोई रास्ता नहीं होता। कुछ तालाब बहुत बड़े और गहरे बनाए जाते हैं जिन में अधिक पानी एकत्रित होता है जो साल भर सूखता नहीं और काम देता है। वर्षाकाल में वे आसपास के बहाव के पानी से लबालब भर दिए जाते हैं। ऐसे पोखरे प्रायः पास

के शिवालों के साथ धर्मार्थ बनाए जाते हैं। उनसे कृषि को तथा जनसाधारण को यह लाभ होता है कि तृषित पशु और मनुष्य पानी पी सकते हैं। प्रायः इस बात का विचार किया जाता है कि कम से कम एक ओर गाय घाट बना दिया जाय जो ढालुआँ हो जिससे पशु सुगमता से पानी तक उतर कर पानी पी सकें।

कच्चे पोखरों की खोदाई का प्रचार पूर्वीय ज़िलों में अधिक है क्योंकि धान के खेतों की सिंचाई में अधिक पानी की आवश्यकता होती है जो कुएँ से पूरी नहीं हो सकती। कच्चे पोखरे प्रायः इस प्रकार खोदे जाते हैं कि उनमें की मिट्टी जो निकलती है वह उसके चारों ओर फेंकी जाती है। थोड़ी थोड़ी जगह मिट्टी के भीट के बीच में छोड़ दी जाती है जिसमें बरसाती पानी आ कर एकत्रित हो सके। आवश्यकता के अनुसार दो एक घाट के लिये स्थान छोड़ देते हैं। इन पोखरों की गहराई बहुत कम होती है क्योंकि गहरे पोखरे खोदने में अधिक व्यय होता है। इन पोखरों से पिछले धान तथा रबी की अगैती सिंचाई का काम चल जाता है। रबी की पिछली सिंचाई तथा ऊख की भराई के लिये बहुत कम पोखरों में पानी मिलता है।

पोखरों की खोदाई अधिक पेचीदा नहीं इससे इसमें विशेष ध्यान और अनुभव की आवश्यकता नहीं होती। पोखरे के विस्तार का जमा के अनुसार नाप कर अनुमान कर लिया जाता है और खोदाई आरंभ कर दी जाती है। मिट्टी औरतें, लड़के तथा मर्द डलियों में उठा कर पोखरे के भीटे पर फेंकते हैं।

गदहे, भैंसों और बैलों पर मिट्टी लाद कर फेंकने की प्रथा भी देखी जाती है।

पोखरा खोदने में जमीन तजवीज कर लेनी चाहिए जिस से उसकी गहराई की सतह मोटी, चिकनी ठोस मिट्टी की पड़े।

पहाड़ी जिलों में दो पहाड़ी तथा चट्टान के बीच में बाँध डाल कर तालाब बना देते हैं। ऐसे स्थानों पर कृषिकर्म का काम इसी एकत्रित जल से चलता है। इन्हें कहीं कहीं सागर कहते हैं।

संयुक्त प्रांत में बहुत पुराने पहाड़ी सागर प्राचीन राजाओं की ओर से बनवाए हुए कहीं कहीं देखे जाते हैं। ऐसे बड़े जलाशयों से छोटी छोटी नहरें निकाल कर उनसे जमीन के कुछ भाग की सिंचाई का काम चल सकता है।

कहीं कहीं मैदान के निचास की धरतियों में पानी बाँध डाल कर रोकने का प्रबंध किया जाता है। गाँव में मकान बनाने के लिये बस्ती के पास की जमीन से मिट्टी ली जाती है। मिट्टी के मेक़दार के मुताबिक छोटे छोटे गड्हे या पोखरियां बन जाते हैं। सुभीते के अनुसार ये सिंचाई के काम में लाए जाते हैं। आबादी के समीप होने के कारण वे गृहस्थी के अनेक कामों में जल की सहायता देते हैं। ऐसे छोटे छोटे जलाशय तभी तक काम के होते हैं जब तक उनका जल साफ़ होता है। काई पड़ जाने तथा पत्तियों के गिरने, सन या पटुआ सड़ाने, पशुओं के नहलाने, गाँव के बहाव का पानी आने देने से तथा अन्य कारणों से उनका जल बिगड़ जाता है। ऐसा जल पशुओं को देना उनमें कुसमय रोग उत्पन्न

कर देना है। ऐसी पोखरियों में नहाना, कपड़े धोना, बर्तन माँजना तनदुरुस्ती खराब कर देना है। सिंचाई के लिये ठहरा हुआ अथवा गदला पानी बुरे नतीजे पैदा कर देता है

१०—नहरें।

भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान देश में नहरों की बड़ी आवश्यकता है। हर्ष का विषय है कि भारत सरकार ने भी इस ओर ध्यान दिया है जिस से सैंकड़ों एकड़ ज़मीन की सिंचाई होती है। नहरों का प्रबंध सुशासित नहर विभाग के अधीन है। नहरों में पानी लेने के लिये सरकारी दर बना दी गई है: जो पानी डाल का होता है (अथवा जो पानी उठाया जाता है) उसके लिये दर कम है। तोड़ अथवा बहाव की दर कुछ अधिक होती है। कृषक जिस फसल के लिये जितने विस्तार के लिये पानी लेता है नहर विभाग के कर्मचारी उस से नियत दर के अनुसार उतना ही लेते हैं।

तेरहवाँ परिच्छेद ।

पानी उठाने की रीतियाँ ।

यदि धरती जिसकी सिंचाई करनी होती है पानी के तल से निचाई पर होती है तो पानी बहाव से ले जाते हैं। इस रीति के अनुसार सिंचाई करने को तोड़ कहते हैं। परंतु यदि पानी की सतह निचाई पर है, पानी उठाने की आवश्यकता पड़ती है तो इस रीति को डाल कहते हैं। पानी उठाने में सुगमता तथा कठिनाई उसकी गहराई के अधीन है। यदि पानी अधिक गहराई पर है तो पानी उठाने में अधिक समय, परिश्रम और व्यय की आवश्यकता होती है। कम गहराई से परिश्रम के अधीन जल्दी और अधिक पानी उठाया जा सकता है।

१—दौरी, ओरचा तथा बेड़ी से पानी उठाना ।

कम गहराई से पानी उठाने की सब से प्रचलित रीति दौरी से पानी उठाना है। इसे किसी स्थान पर ओरचा तथा बेड़ी भी कहते हैं।

इसमें प्रारंभिक व्यय केवल नाम मात्र का है। दौरी या ओरचा गोल तथा नौकाकार बनाया जाता है। यह अधिकतर बाँस का बनाया जाता है जिसकी बिनाई दोहरी होती है। यह बेंत या खजूर का भी बनाया जा सकता है। इसमें दोनों तरफ दो दो डोरियाँ लगी रहती हैं। डोरियों के सहारे दोनों
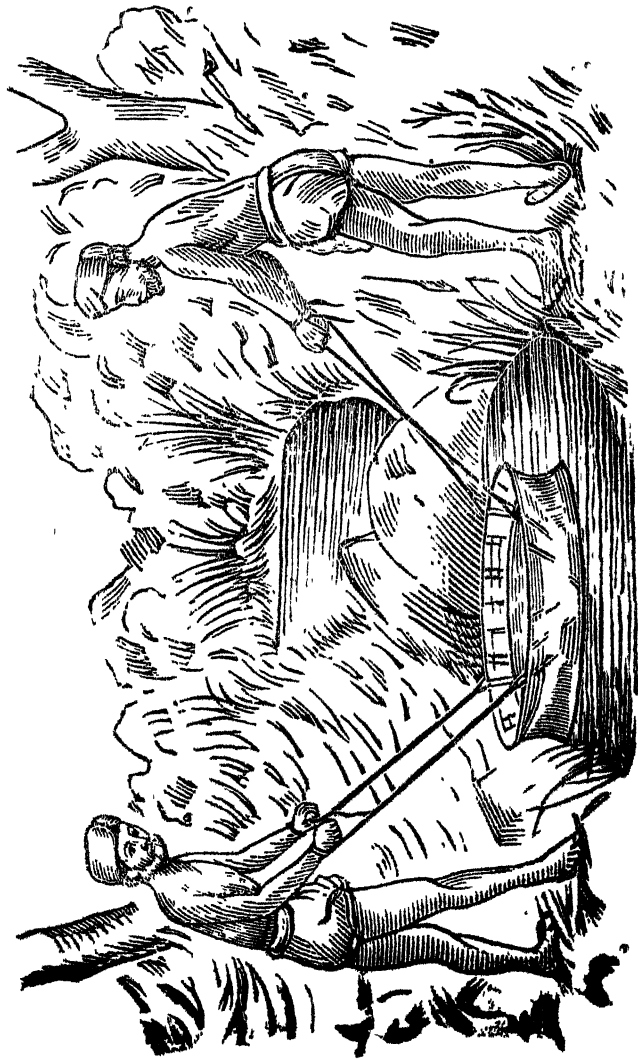
दौरी से पानी उठाना ।

और एक एक आदमी पकड़ कर उसे झुलाते हैं और पानी उठा कर बोदर में डालते हैं जहाँ से नाली द्वारा वह खेतों में पहुँचता है।

इसमें परिश्रम पड़ता है, परंतु चार आदमी बारी बारी कर के दिन भर काम करते हैं। सुबह तड़के से काम आरंभ होता है, यदि आदमियों की कमी है तो आदमियों की बदली इस प्रकार से होती है कि कोई आदमी बैठता नहीं परंतु मेड़ काटने के सहज काम पर चला जाता है। जब एक क्यारी भर जाती है वह उसकी मेंड़ बंद कर के दूसरी क्यारी की मेंड़ काट देता है।

दौरी से चार फुट की ऊँचाई तक बहुत अच्छी तरह काम चलता है। यदि आठ फुट पानी उठाना है तो दो बेड़ी चार चार फुट पर सीढ़ी की तरह लगा कर काम करते हैं। कहीं एक ही स्थान पर दो बेड़ी लगा कर अधिक पानी उठाने की चेष्टा की जाती है। पानी उठाते समय इसमें से पानी बहुत गिरता है इससे उस पानी के उठाने की मेहनत फुजूल जाती है, परिश्रम अधिक और काम कम होता है। यदि पूरे मजदूर न मिले तो काम नहीं चल सकता। इसमें फ़ायदा यह है कि बेड़ी का दाम बहुत कम होता है। टूटने से जल्दी और सब जगह बनाई जा सकती है, वजन इसका हलका होता है और इसके चलाने में सुगमता होती है।

नहरों की गहराई प्रायः लगभग ८ या ९ फुट से अधिक नहीं होती, झील, ताल, पोखरों में भी प्रायः यही गहराई रहती है। ऐसी अवस्था में पानी के बोदर छज्जों की तरह

बनाए जाते हैं और एक से दूसरे में पानी उठाया जाता है। इस प्रकार दो, तीन, चार, पाँच ओरचे बराबर काम करते हैं।

एक अनाथ स्त्री को उसका सहायक दौरी चलाने के लिये नहीं मिला। उसने एक ओर बाँस गाड़ कर उसमें दौरी का सिरा बाँधा था, दूसरी ओर स्वयं रस्सी पकड़ कर वह दौरी चलाती थी। तीन चार दिन मे उसने अपने खेत सींच लिए।

२—चेन-पंप (जंजीर-माला पंप)

इसकी बनावट साधारण और सर्वजनों की समझ मे आ सकती है। एक लड़की के ढांचे पर खोत-दार पहिया धूरी के सहारे रक्खी जाती है। पहिए पर लोहे की जंजीर पड़ी होती है। जंजीर में नियत दूरी पर, जितनी दूर पर पहिए में खोते बने रहते हैं, गट्टे लगे रहते हैं। जंजीर माला की सदृश अनादि अनंत होती है और पंप के नीचे एक लोहे के पाइप में से होकर पहिए पर पड़ती है। इस प्रकार पहिए के ऊपर और पाइप के भीतर से होकर जंजीर गुजरती है। जंजीर की बनावट ऐसी होती है कि बड़ी सुगमता से निकाली जा सकती है। गट्टे पाइप के भीतर से होकर आते जाते हैं। यही गट्टे ज्यों ज्यों वे पाइप के भीतर से ऊपर चढ़ते हैं, पानी ऊपर खींच ले जाते हैं जैसे कि पिचकारी में पानी ऊपर चढ़ता है। इस प्रकार पाइप में पानी ऊपर चढ़ता है। यह पानी पाइप के ऊपरी सिरे पर लगे हुए परनाले द्वारा लगातार बहता रहता है। जब एक गट्टा ऊपर चढ़ता है दूसरा गट्टा पाइप तक पहुँच जाता है और अपना कार्य आरंभ कर देता है, जिससे

मेहनत बेकार नहीं जाने पाती । इस पंप के चलाने में कोई

चेन पंप से पानी उठा रहे हैं
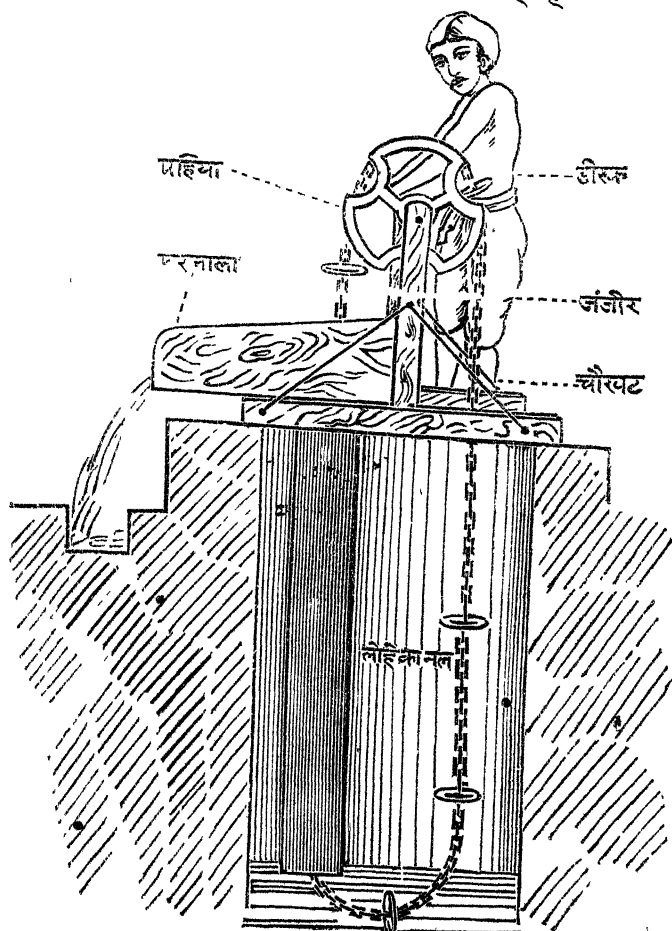
विशेष निपुणता तथा शिक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती। औरतें तथा आदमी बड़ी आसानी से इसे चला सकते हैं। पहिए की धूरी से दस्ते लगे होते हैं। दोनों तरफ़ दो आदमी खड़े होकर बराबर पहिया घुमाते जाते हैं और पानी चढ़ने लगता है। जहां अधिक पानी उठाना है और पानी प्राप्त हो सकता है वहां एक या दो पंप बैलों से चलाने का प्रबंध हो सकता है। जमींदारों को आवश्यकता के अनुसार इससे विशेष लाभ पहुंच सकता है। पर दाम अधिक होने के कारण ग़रीब काश्तकार इसे नहीं रख सकते।

चार फ़ुट से बीस फ़ुट की गहराई से पानी उठाने के लिये चेन-पंप लाभकारी है। इसमें त्रुटि इस बात की है कि इसका दाम ५०) रु० के लगभग है जो साधारण काश्तकार के लिये एक बड़ी रक़म है। जिन कृषकों की काश्त अधिक है और वे आलू, ऊख सदृश मूल्यवान् फसलें बोते हैं उनको चेन-पंप से अत्यंत लाभ पहुँचेगा। इसमें कोई नाजुक पुर्जा नहीं है जिसके टूटने और काम बंद होने का भय हो।

चेन-पंप बाहा, कम गहरे कुओं और नहरों तथा सुगमता के अनुसार पोखरों से भी पानी उठाने के काम में आ सकता है। २१ फ़ुट से अधिक गहराई के लिये चेन-पंप काम नहीं दे सकता। पाइप की लंबाई के अनुसार इसकी क़ीमत होती है।

३—ढेंकुली से पानी उठाने की रीति।

लगभग दस फ़ुट की गहराई से पानी उठाने के लिये ढेंकुली का प्रयोग किया जाता है। एक थूनी पर एक बल्ली

वल्ली
थूनी
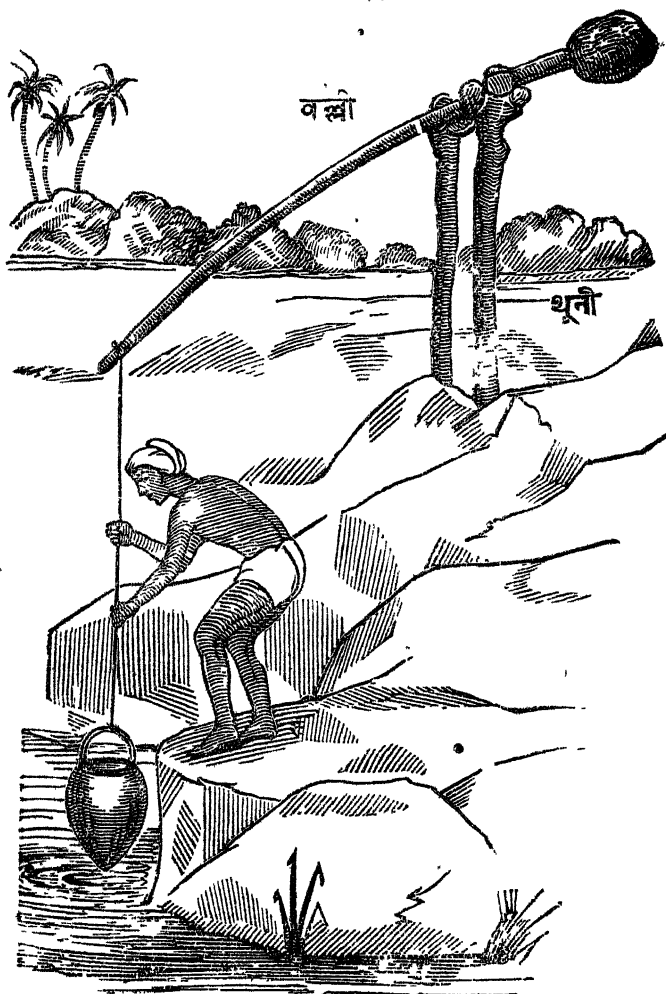
एक थूरी के सहारे इस तरह रख देते हैं कि एक ओर बल्ली का अधिक भाग हो और दूसरी ओर कम। एक ओर मिट्टी तथा पत्थर का बोझा दे देते हैं, दूसरी ओर जिधर बल्ली की लंबाई अधिक होती है रस्सी लगाकर एक बर्तन लगा देते हैं। रस्सी के सहारे एक आदमी बर्तन पानी में ढीलता है और दूसरी ओर के बोझ के सहारे से अति अल्प परिश्रम द्वारा पानी उठा कर बोदर में डालता है जहां से वह बह कर खेतों तक जाता है। बोदर उस स्थान को कहते जहां पानी गिराया जाता है। थूनी गाड़ने में तथा धुरी लगाने में यह विचार किया जाता है कि रस्सी और बर्तन पानी के सामने पड़ें। कभी कभी एक एक कुएँ पर दो ढेंकुली लगाकर काम लिया जाता है। ऐसे स्थानों में कुओं में जल कम होता है।

पोखरी, छिछल कुओं, नहरों और बहखानों से जहां अधिक पानी उठाने की आवश्यकता नहीं है अथवा मजदूर कम मिलते हैं अथवा समय का विचार नहीं है ढेंकुली काम में लाई जाती है।

प्राय: गोल पेंदें का मिट्टी का कमोरा अथवा लोहे का डोल जिसका पेंदा नोकीला त्रिभुजाकार होता है काम में लाया जाता है। इसके उलटने में सुगमता होती है।

४—चरखी।

कम पानी उठाने के निमित्त चरखी का प्रयोग किया जाता है। जहां बार बार और कम पानी की आवश्यकता होती है जैसे बागों में और कछियाना की फसलों के लिये वहां इसका प्रयोग किया जाता है। जलाशय के ऊपर दो

चरखी ।
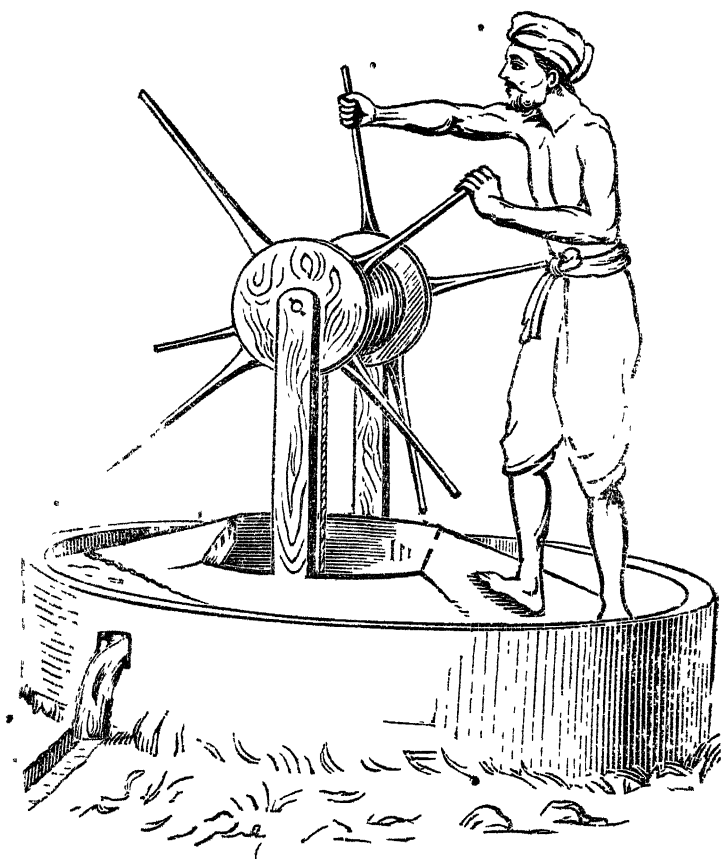
थूनी के सहारे एक धूरी पर एक चर्खी लगी होती है जिस पर " हाथा " लगा होता है। चर्खी पर रस्सी लपटी रहती है और रस्सी के दोनों सिरों पर बर्तन लगे होते हैं। हाथा पकड़ कर घुमाने से रस्सी एक ओर खुलती है और दूसरी

दोंन ।
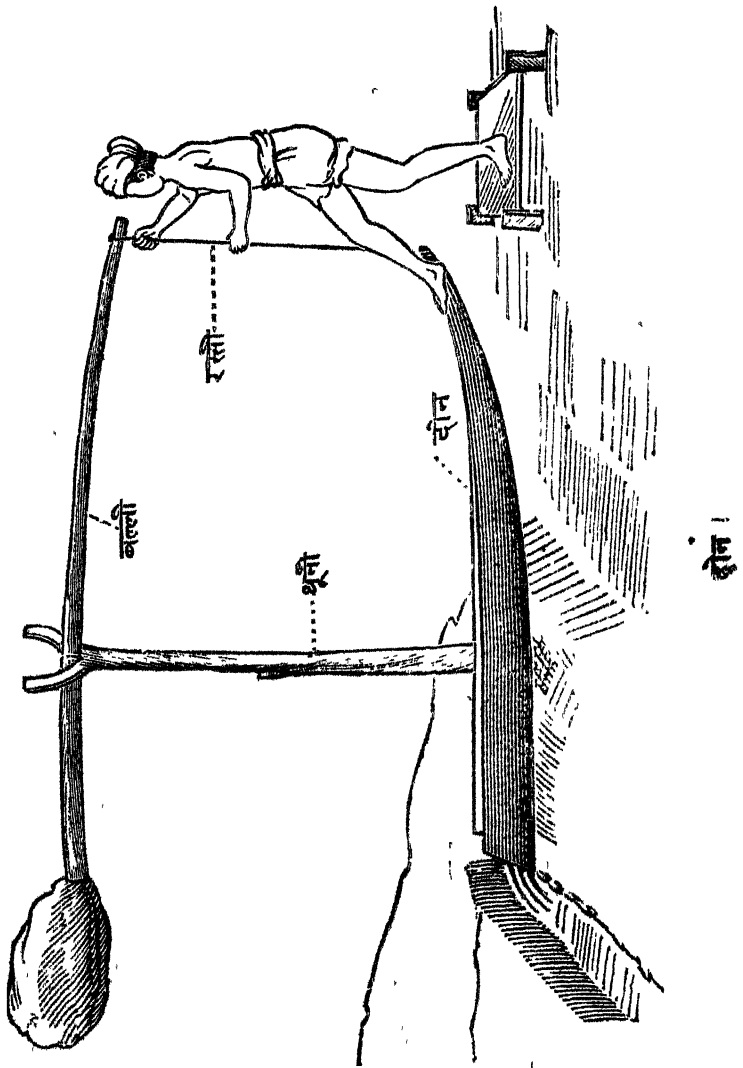
ओर लपटती जाती है जिससे बर्तन कुएँ में उतरते और उठते हैं। बर्तन के स्थान पर कहीं डोल, मिट्टी का कमोरा अथवा टीन के कनस्तर का प्रयोग किया जाता है।

५—दोन से पानी उठाने की रीति।

कम गहराई से पानी उठाने में दोन का प्रयोग किया जाता है। दोन प्रायः पेड़ की पेड़ी खोखली करके बनाते हैं। कहीं कहीं लोहे के दोन का भी प्रयोग होता है। लोहे के दोन का दाम बहुत होता है, वे चलते भी बहुत दिनों तक हैं पर दाम अधिक होता है। दोन एक धुनी के सहारे लगा दिया जाता है, एक मनुष्य उसे अपने पैर के सहारे से नीचे दबा कर पानी तक कर देता है। जब उस में पानी भर जाता है उसे धूनी की बल्ली के सहारे से हाथों से उठाते हैं। पानी बोदर में उड़ेल कर फिर दोन पानी में गिरा दिया जाता है। लोहे के दोन में भीतर की ओर एक पंखा (Valve) लगा होता है जो पानी के बल से स्वयं खुल जाता है और फिर पानी भीतर भर जाने से पानी के दबाव से पानी स्वयं बंद हो जाता है। पंखे से दोन में पानी भरने में सुगमता होती है कि उसे अधिक नीचे दबाने की आवश्यकता नहीं होती। यह पंखा कोई चतुर बढ़ई काठ के दोन में भी लगा सकता है।

६—बलदेव बाल्टी।

दो दोन जिनमें भीतर पंखे लगे रहते हैं एक लकड़ी के ढाँचे में कब्जे से जड़े होते हैं। ढाँचे के ऊपर एक

बल्देव बाल्टी
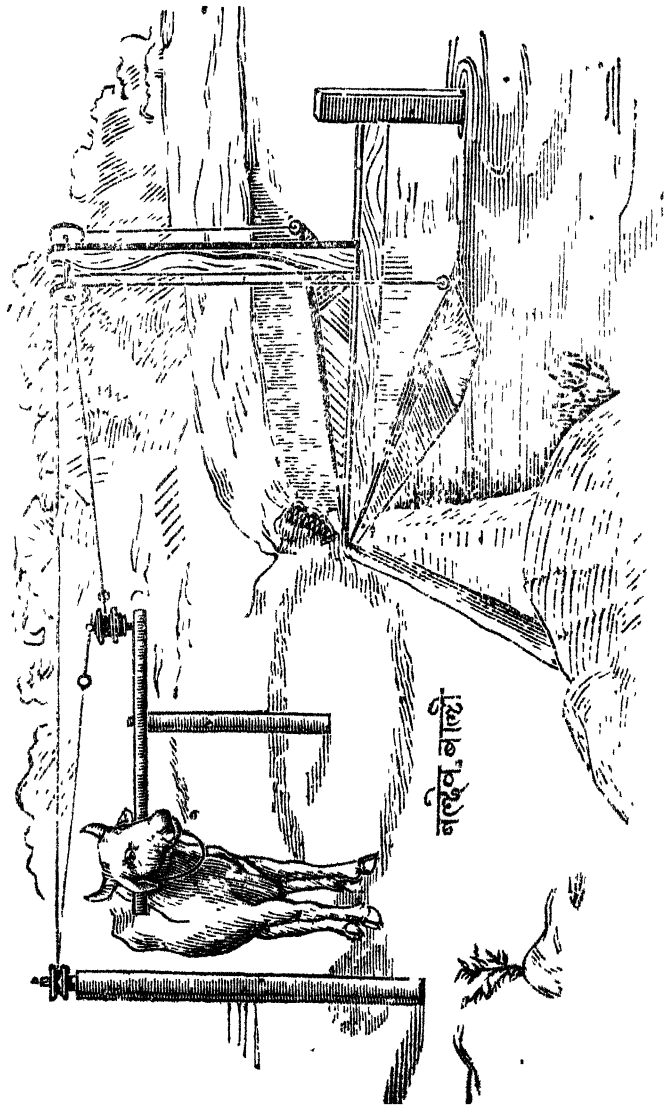
धूरी लगी होती है जिसमे दो गड़ारियां, जिन पर दोनों दोन पारी पारी रस्सी के सहारे उठते हैं, लगी होती हैं। ढांचे के सामने कुछ दूर हर दो खंभे लगे रहते हैं, जिनपर दोनों गड़ारियों की रस्सियां इस प्रबंध से छोटी गड़ारी के सहारे लगाई जाती हैं कि एक ही बैल के चलने से दोनों दोन काम करते हैं; एक उठता है और दूसरा पानी तक उतर कर स्वयं भर जाता है। पानी उठाने के इस प्रबंध में केवल बैल हांकनेवाले एक आदमी या लड़के की आवश्यकता होती है। बाल्टी भरने या खाली करने के लिये उसके पास किसी के रहने की आवश्यकता नहीं होती। बाल्टी स्वयं अपने बोझ से नीचे उतरती है और उसके भीतर लगा हुआ पंखा उपरोक्त रीति से पानी के भार से खुलता, जल भरता और बंद हो जाता है जिससे पानी गिरने नहीं पाता। जब एक बाल्टी नीचे उतरती है तब दूसरी ऊपर चढ़ती है, जब एक खाली होती है तब दूसरी भरती है।

दोन की लंबाई के अनुसार पांच छः फुट तक गहराई पर बाल्टी से अच्छा काम होता है।

७—नोरिया या रहट।

संयुक्त प्रांत के उत्तरी और दक्षिणी भागों में स्थानीय सुगमता के अनुसार रहट का प्रयोग किया जाता है। कुएँ तथा अन्य जलाशय के मुहाने पर एक चर्खी लगी होती है जिसपर दो रस्सियों के बीच में मिटी के छोटे छोटे डबले बँधे

रहट से पानी उठाया जा रहा है
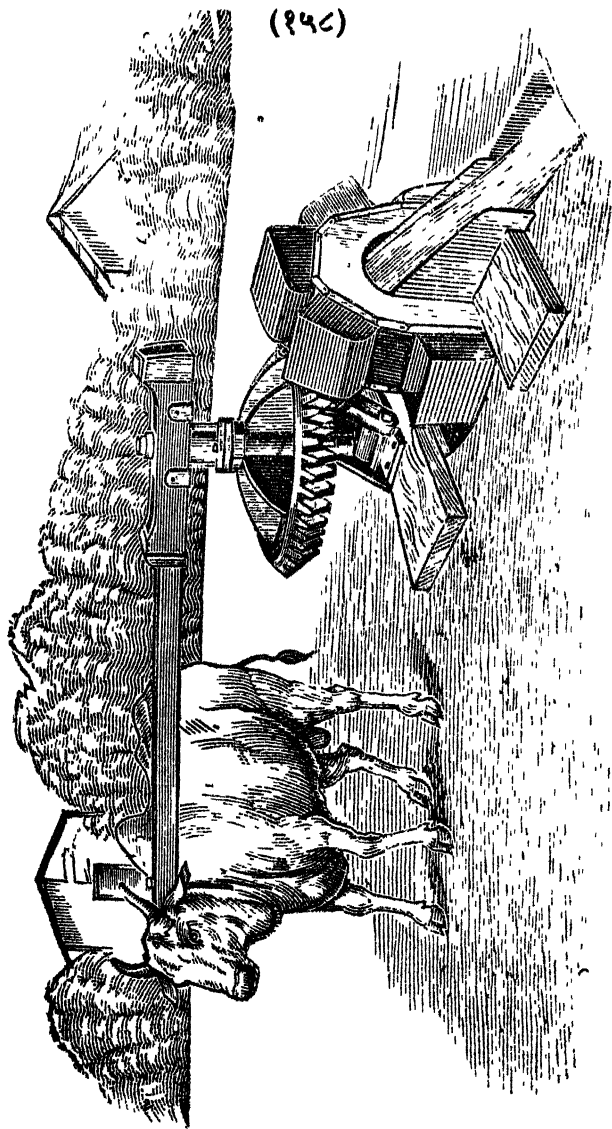
होते हैं। रस्सी माला के समान चरखी पर पड़ी होती है। इसी में मिट्टी के बर्तन थोड़ी थोड़ी दूर पर बँधे होते हैं। यह चर्खी लंबी धूरी के एक पहिए से इस प्रकार संबंध रखती है कि इसके घूमने से चर्खी लगातार घूमती रहती है। चर्खी के घूमने से उस पर मालाकार रस्सी में बँधे हुए उबले नीचे से ऊपर आते हैं। नीचे के उबले (जलपात्र) जल भरे हुए आते हैं और जब ऊपर चर्खी पर पहुँचते हैं स्वयं उलटकर जल त्याग कर देते हैं। यह जल एक परनाले द्वारा जो चर्खी के नीचे लगा रहता है नाली में गिरता है और वहां से आगे खेतों में जाता है।

पहिया जिसका संबंध चर्खी की धूरी से रहता है एक जुआर बैल द्वारा चलाया जाता है। उसको घूमाने से धूरी घूमती है और धूरी के घूमने से चर्खी घूमती है।

उपरोक्त बनावट के बजाय लोहे के नोरिए बनाए जाते हैं जिनमें अच्छे सुडौल अंश लगाए जाते हैं। ये अधिक काल तक अच्छा काम देते हैं, परंतु कीमत अधिक होने के कारण साधारण कृषक की हैसियत के बाहर हैं।

८—पुरवट, पुर या चरस।

पुरवट गहराई से पानी उठाने की सब से सुगम और कृषक की व्यवस्था के अनुकूल समझा जाती है। १८ फुट से अधिक गहराई के लिये यह अत्यंत लाभदायक और सुगम तरीक़ा है।

इस रीति में कुएँ के मुँह पर एक गड़ारी रखी जाती है,
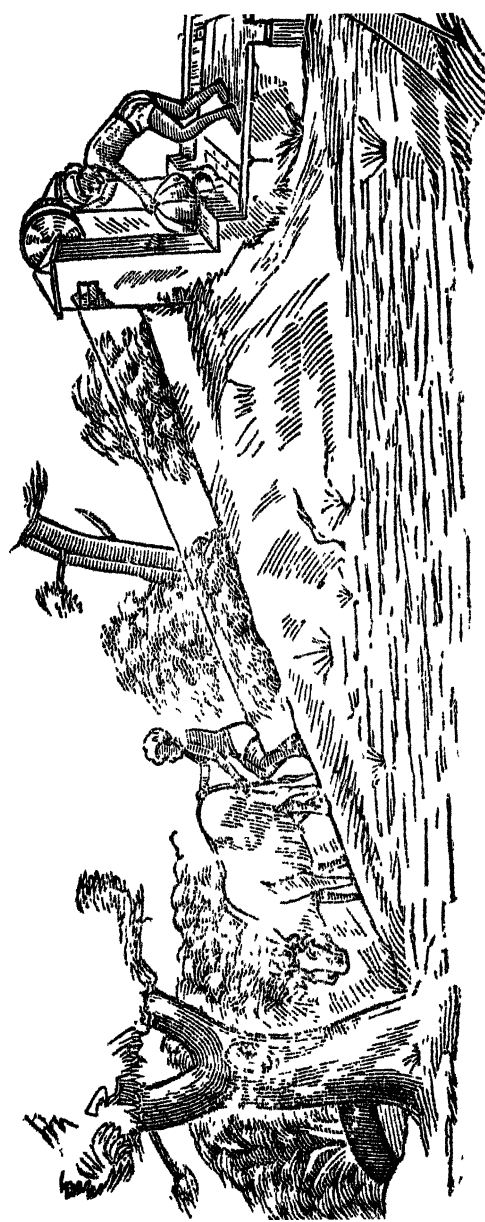
पुरवट।

जिस पर होकर रस्सी, जो नार कहलाती है, काम करती है। बैल पौदरी अथवा ढालू जमीन पर चलते हैं। पुर प्रायः मोटे चमड़े का होता है जो लकड़ी अथवा लोहे के गोल मेंड़रा में लगाया रहता है। इस मेंड़रे के ऊपर रस्सी लगाने के लिये लोहे या लकड़ी का दस्ता लगा होता है। नार का दूसरा सिरा प्रथा के अनुसार बैल के जुए में लगाया जाता है।

चरसा चलाने की दो रीतियाँ हैं। एक को नागौर और दूसरी को कीली कहते हैं। नागौर रीति में एक जोड़ी बैल लगते हैं और कीली में दो जोड़ी बैल लगते हैं। कीली में करीब क़रीब दुगना काम होता है, परंतु चरसा बड़ा होना चाहिए। पूर्वी जिलों में नागौर रीति का अनुसरण होता है जिसका कारण यह विदित होता है कि इस तरफ बैल कमजोर होते हैं और बहुत बड़ा पुरवट नहीं खींच सकते। नागौर रीति में नार जुए में बँधी रहती है। जब पुरवट खाली हो जाता है बैल फिर कुएँ के पास आ जाते हैं। जब पुर भर जाता है तो फिर बैल उसे खींच ले जाते हैं। इस रीति में जब पुर खाली करके कुएँ में छोड़ा जाता है उस समय बैलों को झटका लगता है। बैलों को हांकनेवाला नार अपने हाथ में पकड़ कर इस झटके को निवारण करता है और नार पकड़े हुए कुएँ तक वापस आता है। जब पुर पानी तक पहुँच जाता है वह उसे दो तीन झटके देकर भरता है। जब पुर भर जाता है तो बैलों को फेरता है।

कीली की रीति में दो जोड़ी बैलों का काम पड़ता है। जुए में रस्सी का एक फंदा होता है। इसी फंदे में नार का

फंदा एक या डेढ़ बित्ता लंबी खूँटी या कीली की सहायता से जोड़ दिया जाता है। बैल उसे खींच ले चलते हैं। जब पुर खाली हो जाता है, नार अलग कर दी जाती है और दूसरी जोड़ी बैल के जुए में जो उस समय तक कुएँ के मुँह तक पहुँच जाती है लगा दी जाती है और बैल उसे खींच के चलते हैं। पारी पारी इस रीति में एक जोड़ी बैल नीचे आती और दूसरी ऊपर जाती है।

दो जोड़ी बैल दो आदमी हाँकते हैं। एक आदमी मोट खाली करता है, जिसको मोट छीनना कहते हैं।

इसी रीति में समय की बहुत बचत होती है क्योंकि जब तक एक जोड़ी बैल पुर को खींच ले जाती है दूसरी कुएँ के मुँह तक पहुँच जाती है। कुएँ के पास चरनी बना दी जाती है जिसमें से हर बार जब बैल कुएँ के ऊपर आते हैं कुछ खा लेते हैं। ऊपर कुछ खाना रक्खे रहने से उनको ऊपर चढ़ने में आसरा लगा रहता है जिससे वे शीघ्र ऊपर चढ़ते हैं।

पूर्वी ज़िलों में जहाँ कुओं की गहराई कम होती है बैलों के बजाय छः आदमी पुरवट खींचते हैं। इस रीति को वरी कहते हैं। पश्चिमी जिलों में इसे विर्री या मेंड़री कहते हैं।

एक पुर में प्रायः ६० सेर से लेकर जैसा छोटा बड़ा मोट हो चार सौ सेर तक पानी आता है।

९—चरख।

चरख पुरवट से पानी उठाने की रीति का एक रूपांतर है। इस रीति में बजाय इस के कि बैल पौदरी पर हाँके जाँय एक चरख को घुमाते हैं। चरख ढोल की शकल का एक

चरख।
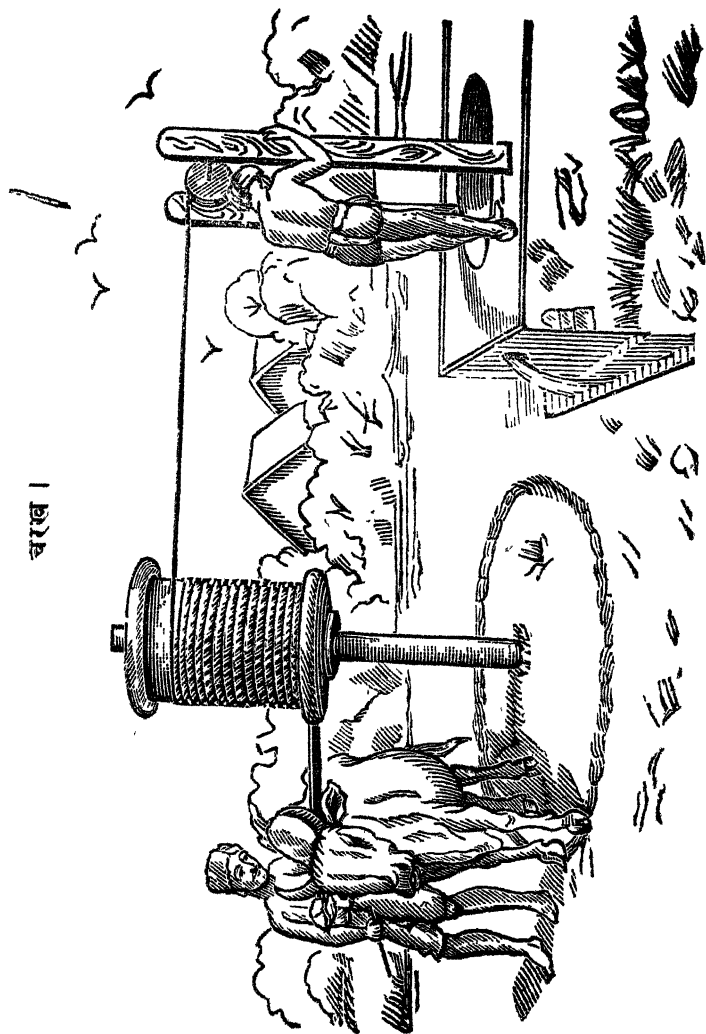
बड़ा मेंडरा होता है जो धूरी के सहारे एक ढांचे में लगाया जाता है। यह ढांचा कुएँ से लगभग १५ फुट की दूरी पर कुएँ के सामने बनाया जाता है। यदि कुआँ बड़ा हुआ तो कुएँ के चारों ओर या दो तरफ़ आवश्यकता के अनुसार या इस से अधिक चरख लगाने का प्रबंध किया जाता है।

ढांचा इस प्रकार बनाते हैं। ईंटे और चुने के दो खंभे बनाकर उन पर एक धरन रख देते हैं। इसके बीच में चरख लगाया जाता है। कभी कभी एक ही लकड़ी में चरख पहना दिया जाता है। बजाय ईंट के खंभे के लोहे के खंभे भी लगाए जाते हैं और बजाय धरन के लोहे की रेल का भी प्रयोग किया जाता है।

चरख में नार लिपटती है। इसके चलाने के लिये इस में एक या दो बैलों के जोतने के लिये जुआ लगा होता है। एक अलग लकड़ी बीच में एक पेंच द्वारा लगा देने से जुवा। इस तरह का बन जाता है कि वह चारों तरफ घूम सकता है इस से यह लाभ होता है कि कुल चरख को घुमाने के बजाय केवल बैल को या जुए को घुमा कर जिस ओर चाहें उधर चरख चला सकते हैं।

चरख में नार के सहारे बड़ा या छोटा चरसा लगाते हैं। सिर्फ़ एक मोट लगाया जाता है, या एक ही चरख पर दो मोट लगाए जा सकते हैं। दो मोट दो गड़ारियों पर दो नार के सहारे से चलाए जाते हैं। दोनों नार एक ही चरख पर लपटती हैं। जब चरख घुमाया जाता है तो एक मोट ऊपर आता है और दूसरा नीचे जाता है। जिस प्रकार का मोट होता

है उसी के अनुसार एक या दो आदमी या औरतें पानी छीनते हैं। एक आदमी चरस में जोते हुए बैल को हाँकता है।

कहीं कहीं चरसे में नीचे की ओर एक चोंगा (सूँड़) लगा देते हैं जिसके द्वारा मोट उलटने की जगह चोंगा खींच लेने से पानी कुएँ की जगत पर गिर पड़ता है। इस चोंगे में एक पतली रस्सी लगा देने से और दो लंबी गड़ारी पर से उसे चरस में लगा देने से जब मोट ऊपर चढ़ता है पतली रस्सी चोंगे को कुएँ की जगत पर खींच लेती हैं जिस से पानी जगत पर गिर जाता है। इस प्रबंध से छीननेवाले की आवश्यकता जाती रहती है। शहरों में जहां बाग होते हैं और मजदूरी महँगी होती है इस प्रबंध से छीननेवाली की बचत होती है और पौदर नहीं बनाना पड़ता।

१०—पानी उठाने की अन्य रीतियाँ।

पानी उठाने की मुख्य और लाभदायक रीतियों का वर्णन ऊपर किया गया है। स्थानीय अथवा व्यक्तिगत सुगमता के अनुसार कुछ और रीतियाँ हैं जिनका प्रयोग जल उठाने के लिये कहीं कहीं किया जाता है। स्टोनी साहब की बाल्टी (Stoney's Water lift), सुलतान साहब की बाल्टी (Sultan's Water lift), आर्कीमीडीयन स्क्रू (Archimedian Screw), हवा से चलनेवाली पानी उठाने की रीति, बैल तथा आदमी के भार से पानी उठाने की रीतियाँ, नाना प्रकार के छोटे छोटे सक्शन के सिद्धांत पर बने हुए पंप इत्यादि कई कलें उदाहरणार्थ बन चुकी हैं और कितनों का विज्ञापन देखने में आता है। इनसे

पानी उठाने में विशेष फायदा नहीं देखा जाता। इनके दाम भी कम नहीं इस कारण हम लेख को नहीं बढ़ाना चाहते।

पानी उठाने की एक कामयाब रीति एँजिन द्वारा पानी उठाने की है। इससे पानी उठाने का परता बहुत कम पड़ता है। पर आरंभिक खर्च इतना अधिक है कि साधारण कृषकों के विचार से परे है।

जहां बड़े बड़े तालाब अथवा झील, कुएँ तथा अन्य जलाशय हैं वहां आयल या पेटरोल एँजिन अथवा सेंट्रीफ्यूगल पंप के प्रयोग से लाभ पहुँच सकता है। जिन कुओं में पानी कम है उनको थोड़ी देर में एँजिन सुखा देगा।

एँजिन से अनेक लाभ होते हैं। उससे दाना माड़ा जाता है, चारा काटा जाता है, पानी उठाया जाता है अथवा और जिस काम में उसकी शक्ति लगाई जाय उससे काम निकल सकता है। एक समुदाय कृषकों का अथवा जमीनदार इसमें चित्त देकर ऑयल एँजिन का प्रबंध कृषिकर्म्मों के लिये कर सकता है। इसके प्रबंध के लिये एक मेकानिकल एंजीनिअर की आवश्यकता होती है, जो इसके बिगड़ने पर मरम्मत करे और उसको सुधारे। यह काम एक समुदाय के मिल कर करने का है। भारतवर्ष में आँटा पीसने की चक्कियों में, पुतली घरों में, सोडावाटर बनाने की कल में ऑयल एँजिन का प्रयोग कामयाबी से हो रहा है। यदि धन के अभाव का प्रश्न हल हो जाय तो कृषिकर्म्मों में इनके प्रयोग से सुप्रबंध के अधीन लाभ की आशा की जा सकती है।

११-पानी उठाने की रीतियों की सारिणी।

रीति	गहराई फुट	क्षेत्रफल एक दिन=८ घंटा		कैफियत
पुरवट				
(क) नागौर की रीति	२०से४०	१/८ से १/५	एकड़ तक	एक जोड़ी बैल
(ख) कीली की रीति	,,	१/६ से २/५	,,	दो जोड़ी बैल
घर्रा	,,	१/८ से १/४	,,	६से८ आदमी
चरस	,,	१/८ से २/५	,,	एक जोड़ी बैल
नोरिया (रहट)	१२से६०	१/१० से १/३	,,	,,
ढेकुली	८से२०	१/१० से १/६	,,	एक आदमी
चरखी	१५से३०	१/१२ से १/८	,,	,,
बेड़ी या दौरी	३से६	१/३ से १/२	,,	चार आदमी दो आदमी पारी पारी से
दोन	४से७	१/३ से १/२	,,	,,
बलदेव बाल्टी	४से७	१/२ से १	,,	१ बैल

		पाइप की मोटाई	पानी गैलन	दाम रु०
चेनपंप	५से६	४१/२ इंच	५०,०००	३७)
,,	६से१०	४ ,,	३०,०००	३७)
,,	१०से१५	३१/२ ,,	१८,०००	४०)
,,	१५से२०	३ ,,	१२,०००	४५)
,,	२०से२५	२३/४ ,,	८,०००	५५)

एक एकड़ में एक इंच पानी की सिंचाई के लिये लगभग २३,००० गैलन पानी लगता है। अच्छी सिंचाई के लिये तीन इंच पानी लगता है। ५ सेर=१ गैलन=१० पाउंड।

१२–वर्षा, कुओं और अन्य जलाशयों का जल।

वर्षा का जल आम तौर से कृषि के लिये अत्यंत लाभकारी समझा जाता है। प्रथम यह कि यह बिना मूल्य मिल जाता है। दूसरे यह कि वर्षा जल में पौधों के भोजन पदार्थ अधिक रहते हैं। तीसरे यह कि उसमें पौधों के बाढ़ के मुख्य अंश आवश्यक परिमाण में परिपूरित रहते हैं। मरुत-मंडल में बहुत सा नाइट्रेट, अमोनीया और आरगैनिक पदार्थ रहता है जो वर्षा जल में घुल कर अथवा उससे मिल कर पौधों को प्राप्त होता और उनको लाभ पहुँचाता है। आषाढ़ मास में जब प्रथम वर्षा होती है उस समय मरुत-मंडल में बहुत से पदार्थ रहते हैं। पिछले पानी के गिरने से पहले ही उनका बहुत सा अंश पहली जल वृष्टि के साथ घुल जाता है।

कुएँ और नहरों के जल में पृथ्वी के बहुत से बारीक खनिज पदार्थ सम्मिलित रहते हैं। कुएँ के जल में प्रायः शोरे का अंश, जिसमें पोटाश और नाइट्रोजन शामिल रहता है अधिक पाया जाता है। इस कारण से कुएँ का जल नहर के जल से श्रेष्ठ होता है।

कभी कभी कुओं, नहरों और अन्य जलाशयों से अकसर वनस्पति को लाभ और कभी कभी हानि होते देखी जाती है। इसका कारण वनस्पति की व्यवस्था, उसको

जल की आवश्यकता, पानी देने की रीति, समय और धरती के व्यवस्था तथा पानी की विशेषता पर निर्भर है। यहां हम पानी की विशेषता का वर्णन करते हैं। स्वच्छ जल पौधों को हानि नहीं पहुँचा सकता। यह संभव है कि पानी में खाद्य पदार्थ न हों जिससे खाद का अभाव हो सकता है। इसकी पूर्ति खाद से हो सकती है। जल से अधिक हानि कमी के कारण नहीं किंतु आवश्यकता की अपेक्षा अधिक खाद्य पदार्थ रहने तथा हानिकारक खाद्य पदार्थ शामिल रहने से हो जाया करती है। सड़ा हुआ, गंदा, काई लगा हुआ जल इस कारण से वार्जित नहीं है कि पौधों को बदबू असर करेगी वरन् इस कारण से कि उसमें हानिकारक पदार्थ घुले रहते हैं, अथवा खाद्य पदार्थ आवश्यकता से अधिक होते हैं। अनुभव से यह देखा जाता है कि १००० भाग पानी में एक अंश ठोस पदार्थ सामान्य मात्रा, तथा पांच अंश ठोस पदार्थ पौधे के लिये सबसे अधिक सीमा है। इस कारण विशेष जल से कभी कभी हानि होती है।

१३–खेतों को पानी देना।

पानी देते समय पौधों के लिये जल की आवश्यकता पर भली भाँति विचार लेना उचित है। कुछ पौधे ऐसे होते हैं जिन्हें दूसरों की अपेक्षा अधिक पानी की आवश्यकता होती है, जैसे आलू के खेतों को जव के खेतों की अपेक्षा अधिक पानी की जरूरत होती है। पृथिवी के अनुसार जल की आवश्यकता पर विचार कर लेना चाहिए, जैसे दुमट धरतियों को मटियार

धरती की अपेक्षा अधिक जल की आवश्यकता होती है। आबोहवा, बादल का रंग विचार करके पानी देने का विचार कर लेना चाहिए।

किस समय खेतों को जल की आवश्यकता होती है यह कृषक पौधों को मुर्झाते देख कर या उनको पीला होते देख कर बतला देता है और उसी समय शस्य की सिंचाई करता है। परंतु साधारण अवस्था में जब बदली के कारण वर्षा जल की आशा की जाती है पर पानी नहीं बरसता तो सिंचाई कर दी जाती है। ऐसा देखने में आता है कि सिंचाई के पश्चात् पानी बरस जाता है। उस समय अधिक जलसे हानि होती है। ऐसे अवसर पर पानी के निकास की अत्यंत आवश्यकता होती है। इसके विपरीत कभी कभी कृषक पानी की आशा में सिंचाई मुलतबी रखता है जिससे पौधे सूखने लगते हैं। ऐसी अवस्था के लिये कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता। अनुभव और विचार से काम करना चाहिए। इसके आगे जो कुछ भावीवश पड़े उसे भुगतना ही पड़ता है।

अवसर विचार कर जब कृषक अपने खेतों की सिंचाई करने का निश्चय करता है, उसको उचित है कि वह खेत भर में पानी बराबर देवे। कहीं अधिक और कहीं कम जल से खेतों को समान लाभ नहीं पहुँच सकता। अधिक जल पड़ना अथवा जल का कम या बिलकुल नहीं पड़ना दोनों बातों का असर पड़ता है। पानी बराबर पहुँचाने के लिये कृषक खेत की जोताई के संबंध में ध्यान देता है और खेतों को समतल बना लेता है। जब बोआई हो जाती है

तो वह जहां तक शीघ्र हो सकता है डांड़, बरहा और क्यारियां बना देता है जिससे आवश्यकता के अनुसार पानी खेतों में भर जाता है। कुछ फसलें ऐसी हैं जो क्यारियों में बोई जाती हैं। इनके लिये जब खेत अच्छी तरह से जोत कर तैयार हो जाते हैं क्यारियां बना दी जाती हैं और उनमें शस्य बो दिए जाते हैं अथवा रोप दिए जाते हैं।

१४-क्यारियाँ बनाना।

जोताई के पश्चात् बिना बोए अथवा बोए हुए खेतों में क्यारियां फांवड़े से, फरुही से अथवा करहा से बनाई जाती हैं।

फरसा या फावड़ा—लोहे का बना होता है। स्थान के अनुसार इसकी बनावट भिन्न होती है। यह कृषि के अनेक कामों में आता है।

कृषिकार दोनों हाथों से इसकी डांड़ी को पकड़ता है और पैरों के बीच में एक सीधी लकीर के दोनों ओर से मिट्टी लेकर मेंड़ बनाता हुआ आगे बढ़ता है। जितनी मोटी अथवा जितनी गहरी मेंड़ बनानी होती है कृषक उसी अंदाज से मिट्टी उठा कर डालता जाता है।

फरुही—एक अर्धगोलाकार लकड़ी में एक लंबा बांस अथवा लकड़ी का दस्ता लगाकर फरुही बनाते हैं। प्रायः कृषक घोड़े की लीद अथवा बैलों का गोबर हटाने के लिये एक फरुही रखते हैं।

मेंड अथवा डांड़ ठस और सीधी होनी चाहिए जिससे

फरुही
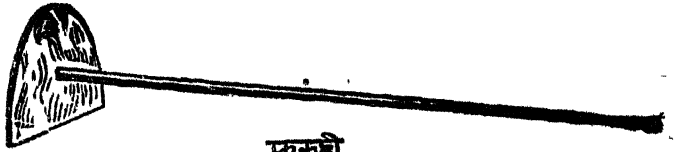
पानी एक मेंड़ को तोड़ कर दूसरी कियारी में न जाने पावे।
क्यारी फूटने से पानी बह जाता है और पानी देनेवाले के पैर

बन जाते हैं। जब वह उनमें होकर चलता है पैरों में जुते हुए खेतों की मिट्टी चपट जाती है और बीज अथवा बोए हुए खेतों को हानि पहुँचती है।

करहा—लकड़ी के अर्धगोल टुकड़े के बीच में खड़ा एक लंबा बांस अथवा लकड़ी का दस्ता होता है। करहा में दो छेद होते हैं जिसके भीतर से लकड़ी के दस्ते के ऊपर होकर रस्सी लगी होती है।

इसे दो आदमी चलाते हैं। एक आदमी करहा पकड़ कर सीधे तन कर खड़ा होता है और दूसरा आदमी रस्सी पकड़ कर आगे खींचता है। पहला आदमी करहा सावधानी से जमीन में लगाए रस्सी के सहारे आगे चलता है और निश्चित मेंड़ की लकीर पर मिट्टी ढकेलता है। मिट्टी ढकेलने में क़रीब करीब कोई परिश्रम नहीं पड़ता और न तो दोनों आदमियों में से किसी को अधिक झुकने की आवश्यकता पड़ती है। केवल इशारे से काम होता है। कुछ समय के बाद करहे का आदमी रस्सी लेलेता है और रस्सीवाला करहा पकड़ लेता है। अधिक पानी देने के लिये मेंड़ ऊंची तथा कम पानी के वास्ते छिछली बनाई जाती है।

कोने के रूप का लकड़ी का एक बक्स बना कर धरती पर निश्चित लकीर पर खींचने से संदूक के नीचे कुछ मिट्टी एकत्रित हो जाती है। पतली मेंड़ बनाने में कोई कोई इसका प्रयोग कर सकते हैं।

बरहा और क्यारी इन रीतियों से बनानी चाहिएँ।
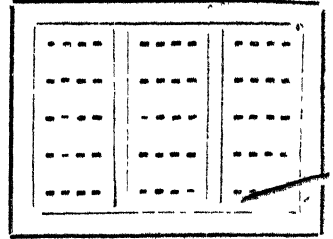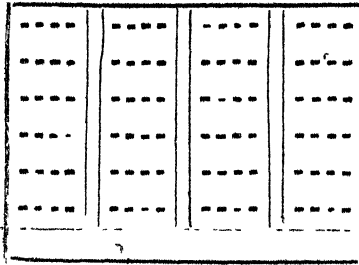
इनमें सिंचाई करने का क्रम नीचे दिए हुए नंबरों के अनुसार होना चाहिए।

क्यारियां मेंड़ के बीच की धरती अथवा कोठा को कहते हैं। क्यारी और मेंड़ अलग अलग हैं। इन्हें एक न समझना चाहिए।

मेड़ें इस प्रकार बनानी चाहिएँ कि खेत में बीच से होकर अथवा खेत के किनारे किनारे पर बरहा हो। बरहा नाली को कहते हैं जिनमें से पानी बहता है। इसका आशय यह है कि एक बरहा से दोनों ओर पानी जाकर अपने दोनों ओर की कियारियों को सींच सके। खेत में पहले बरहा बनाते हैं जिनसे पाल्हा अलग अलग करते हैं। पाल्हा को कई छोटे टुकड़ों में विभाजित करते हैं। एक टुकड़े को कियारी कहते हैं। पृष्ठ १७४ के चित्रों में खेतों में पाँल्हा, बरहा और कियारियां दिखाई गई हैं। जहां पानी अधिक प्राप्त होता है वहां कियारियां बड़ी बनाई जाती हैं। साधारण पानी की आवश्यकता वाले शस्यों के लिये भी बड़ी कियारियां बनाते हैं। जहां पानी कम प्राप्त होता है अथवा पानी डाल का होता है अथवा खेत समतल नहीं है वहां क्यारियाँ छोटी बनाई जाती हैं। क्यारियाँ बनाने में इस बात का विचार होना चाहिए कि बरहा की मेंड़ें क्यारियों की मेड़ों से मोटी और कुछ ऊँची हों जिससे पानी आसानी से सब क्यारियों में बह सके।

१५—पानी देने की रीति।

पृष्ठ १७४ में चित्रों द्वारा खेतों की क्यारियाँ भरने का क्रम दिखाया गया है। बिना किसी रीति के पानी इधर उधर बहाने से पानी और परिश्रम की हानि होती तथा खेतों को भी

हानि पहुँचती है। यदि कोई हिस्सा दिन भर पानी में डूबा रहे तो वह पानी अधिक सोखेगा। अनावश्यक पानी के सूखने से कृषक के जल की हानि है। नाजुक शस्य को अधिक पानी से हानि पहुँच सकती है।

जिस स्थान से पानी खेत में प्रवेश करता है उसे 'धावा' अथवा 'मुहाना' कहते हैं। यह स्थान खेत से कुछ ऊँचा होना चाहिए जिससे पानी सारे खेतों में बराबर पहुँच सके।

चित्र में गिनती के क्रम के अनुसार खेतों में पानी देना चाहिए। बरहा द्वारा खेतों में पानी जाता है और इन्हीं से क्यारियाँ भरी जाती हैं। जब एक क्यारी भर चुकती है तब बरहा मिट्टी से बंद कर दियाँ जाता है और क्रम से दूसरी क्यारी भरी जाती है। तीसरे चक्र में सब से अधिक सावधानी की जरूरत ज्ञात होती है। प्रायः तीनों चक्रों में यदि जल दहिने ओर से प्रवेश करता है तो सिंचाई बाईं ओर से आरंभ की जाती है। इससे धरती क्रम से भीगती है और पानी देने वाले को गीली जमीन में नहीं चलना पड़ता। यदि उसी स्थान से जहां से कि पानी प्रवेश करता है सिंचाई आरंभ कर दी जाय जैसा ४ नंबर के चक्र में दिखाया गया है तो बीच में पहुँच कर निकलने की कठिनाई पड़ेगी। यदि कहीं मेंड़ टूटी तो समीप स्थान पर सूखी मिट्टी भी न मिलेगी। गीली मिट्टी से मेंड़ बनाने में कठिनाई पड़ती है और वह चूने लगती है। बरहा के टूटने से अथवा उसके चूने से पानी की हानि होती है तथा सींचे हुए खेतों में अधिक पानी पहुँच जाता है। क्रम से रीति के अनुसरण से खेतों को बराबर

पानी मिल जाता है, अकारण दिक्कत और समय की बचत होती है; पानी की हानि नहीं होती और उगते हुए शस्य का नुकसान नहीं होता।

क्यारियाँ बनाने की आवश्यकता उस समय भली भांति विदित होती है जब खेतों की सिंचाई बिना क्यारी बनाए की जाती है। तोड़ के जल में अधिक पानी प्राप्त होता है। अधिक जल देना कृषक को कठिन नहीं जान पड़ता। डाल के जल में इसके प्रतिकूल होता है जहां कि पानी की यथासंभव बचत की जाती है।

यदि एक ही स्थान से पानी प्रवेश करता है तो उसके पास के खेतों के भाग दिन भर जल में निमग्न रहते हैं, पर अंतिम भाग में थोड़ी देर तक पानी चलता है। इससे अधिक जल और समय नष्ट होता है।

चौदहवाँ परिच्छेद ।

खाद और उसका व्यवहार ।

खाद का विषय कृषिकार के लिये अत्यंत उपयोगी और विचारणीय है। कृषिकार इस विषय पर विचार कर के अपने खेतों की हैसियत बढ़ा सकता है, नहीं तो कम से कम उसे कायम रख सकता है ।

खादों का व्यवहार निम्नलिखित उद्देश्य के लिये किया जाता है ।

(१) पौधों को भोजन पहुँचाना अथवा उनके भोजन की कमी को पूरा करना ।

(२) खेतों की उपज बढ़ाना ।

१—पौधों को भोजन पहुँचाना ।

प्रति फसल पौधे धरती से और वायु-मंडल से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। वायु-मंडल का कोष इतना बड़ा है कि उसमें कमी नहीं होती और न तो साधारण कृषिकार का उस ओर कोई कर्तव्य है। पौधे जो भोजन धरती से लेते हैं उसकी कमी को पूरा करना कृषिकार को अपना कर्तव्य समझना चाहिए।

कुछ फसलें मुख्य मुख्य भोज्य पदार्थ (पोटाश, नाइट्रोजन, फासफोरस) अधिक प्राप्त करती हैं, और उनके कम

होने के कारण अच्छी तरह नहीं बढ़तीं, जैसे तमाखू, भाँटा को पोटाश की अधिक आवश्यकता होती है।

२—खेतों की उपज बढ़ाना।

पौधों को खाद से भोजन दो प्रकार से प्राप्त होती है, एक यह कि स्वयं खाद में पौधों का आवश्यक भोजन मौजूद रहता है, दूसरे यह कि खाद द्वारा धरती में ऐसी क्रियाएँ होने लगती हैं कि पृथ्वी में पड़ा हुआ भोज्य पदार्थ पौधों के काम में आने लायक़ हो जाता है। पौधों को उनकी आवश्यकतानुसार भोजन प्राप्त होने से, वे बलिष्ट होते हैं, अच्छी तरह से फूलते फलते हैं और उनकी पैदावार अच्छी होती है।

खाद से धरती में खनिज अथवा जांतव पदार्थों की जैसी कि खाद हो उसके अनुसार बढ़ती होती है। इसका प्रभाव धरती की बनावट पर पड़ता है, जिस से अवस्था के अनुसार धरतियाँ खुल जाती हैं, ठस हो जाती हैं अथवा अधिक जल वायु धारण करती हैं।

निम्नलिखित गणना में कुल खाद आ जाती हैं।

१—जांतव खाद Organic Manures.
२—खनिज खाद Inorganic Manures.

जीवित प्राणियों से प्राप्त खाद को जांतव खाद कहते हैं। खान से अथवा निर्जीव प्राणियों से प्राप्त खाद को खनिज खाद कहते हैं। यह दोनों प्रकार की खादों की गणना उनकी उत्पत्ति के अनुसार है। इनसे और कई प्रकार की खादें बनती हैं। साधारण खाद वह है जिसमें प्रायः पौधों के भोजन के सब अंश मौजूद रहते हैं।

मुख्य खाद वह है जिससे धरती की कोई विशेष कमी पूरी हो अथवा किसी विशेष कार्य्य के लिये उसका प्रयोग किया जाय।

३—साधारण खाद।

१ गोबर की खाद।
२ कूड़ा करकट अथवा घूर की खाद।
३ भेड़ बकरी की खाद।
४ घोड़े की लीद की खाद।
५ विष्ठा की पाँस—१
६ सुअर की विष्ठा की पाँस—२।
७ सूअर की पाँस।
८ हरियाली की पाँस।
९ मछली की पाँस।
१० रेंड़ी की खली की पाँस।
११ महुवा की ,, ,, ।
१२ नीम की ,, ,, ।
१३ अलसी, सरसों, बरें की खली की पाँस।
१४ हड्डी की खाद।

४—विशेष खाद।

प्रायः विशेष खादों के रंगीन विज्ञापन निकाले जाते हैं। ऐसी सभी खादें न तो निकम्मी कही जा सकती हैं और न सब अपने दाम के अनुकूल उपकार करती हैं। इसलिये इनके खरीदने में विचार से काम लेना ही अच्छा होता है।

कभी कभी बड़े बड़े कारखानेवाले और साधारण सामर्थ के पुरुष कारखानों की तलछट के मेल से जिनमें वे और बहुत सी निकम्मी चीजें मिलाते हैं एक पदार्थ बना कर खाद के नाम से बेंच कर दाम खड़ा करने की चेष्टा करते हैं। ऐसे विज्ञापनों से सावधान रहना उचित है।

कुछ कारखाने मर्मवेत्ता विद्वानों की सम्मति से अपने कारखाने से बची हुई तलछट से खाद बनवाते हैं जिसका नतीजा विशेष अवस्था में बहुत उत्तम देखने में आता है। इनके खरीदने में अधिक दाम लगता है। साधारण अवस्था में अधिक व्यय करने की आवश्यकता नहीं। साधारण खादों को उचित रीति से रख कर उनका प्रबंध करना ही अच्छा होता है। बागवानी में दो एक गमले के लिये विशेष पौधों की आवश्यकता के अनुसार किसी मूल्यवान् खाद का समय के अनुसार प्रयोग किया जा सकता है।

कुछ विशेष खादों के निम्नलिखित नाम हैं। विशेष अवसर पर इनका प्रयोग किया जा सकता है। सब से उत्तम साधारण खादों का यथाविधि व्यवहार उत्तम है।

१—शोरा नाईटर	Nitre.
२—साल्टपटिर	Chille Saltpeter.
३—अमोनियम सलफेट	Ammonium Sulphate.
४—पोटैशियम सलफेट	Potassium Sulphate.
५—केनाइट	Kainite.
६—मिनरल सुपरफासफेट	Mineral Superphosphate.
७—जिपसम	Gypsum.

८—नाइट्रोलिम Nitrolim.

९—चूना Lime.

१०—हड्डी से बनी हुई खाद—इसमें प्रायः पचास फी सदी से अधिक खनिज पदार्थ रहते हैं।

५—गोबर की खाद।

पशुओं का गोबर, मूत्र, पशुशाला का झारन बटोरन, खराब भूसा, सड़े गले पत्ते, खली इत्यादि पदार्थ गोबर की खाद में शामिल रहते हैं।

यह खाद अत्यंत साधारण है। सब जगह और सबको मिल सकती है। इसका दाम कम है और यह पौधों को हर प्रकार के लाभ पहुँचती है। इसमें उनके भोजन के सभी अंश रहते हैं। इसकी भली भाँति हिफाजत करने से पौधों के भोजन के उपयोगी अंशों की बचत हो जाती है और उस से पौधों को अधिक लाभ पहुँचता है।

गोबर का अधिक अंश गृहस्थी के अनेक कार्यों में लग जाता है। बचा हुआ भाग तथा गोबर की राख पौधों के लिये खाद रूप में रक्खी जाती है। उसको खराब रीति से रखने से अथवा असंयम से खेतों में देने से उपयोगी अंश धुलकर नष्ट हो जाते हैं और पौधों तक केवल खाद का तलछट पहुँचता है।

गोबर को खाद के लिये बचाना चाहिए। ईंधन के लिये लकड़ी काम में लानी चाहिए और उसके लिये उपयोगी वृक्ष लगाने चाहिएँ। जहाँ कोयला प्राप्त हो सकता है वहाँ कोयले का प्रयोग किया जा सकता है।

खाद का असर निम्नलिखित कारणों के अनुसार पड़ता है—

खाद रखने की रीति।
पशुओं की अवस्था।
पशुओं का भोजन।
नई या पुरानी खाद।

६—खाद रखने की रीति।

१—खाद ढेर लगा कर मैदान में तथा मकान की ओलती के नीचे एकत्रित की जाती है। इस पर आतप, वर्षा, वात का प्रकोप होता है। खाद के घुल जानेवाले पदार्थ पानी पड़ने से घुल कर बह जाते हैं। हवा से बचाव न होने के कारण बहुत सी खाद के अंश उड़ जाते हैं। धूप के प्रकोप से खाद गरम हो जाती है।

मैदान में ढेर लगा कर खाद रखने में आसानी और सुगमता अवश्य होती है, परंतु खाद की हैसियत बिल्कुल नष्ट हो जाती है।

२—उपरोक्त रीति की हानि रोकने के लिये विज्ञ कृषक खाद गड्हे में एकत्रित करता है। उसको पानी के निकास से बचाता है जिसमें गड्हे में पानी न भर जावे। वर्षा और धूप से बचाने के लिये उस पर एक छप्पर डाल देता है। गर्मी के दिनों में जब खाद सूखकर बहुत गरम हो जाती है उस पर पानी छिड़कता है जिससे रासायनिक क्रियाएँ और बैटरियों का काम जारी रहे।
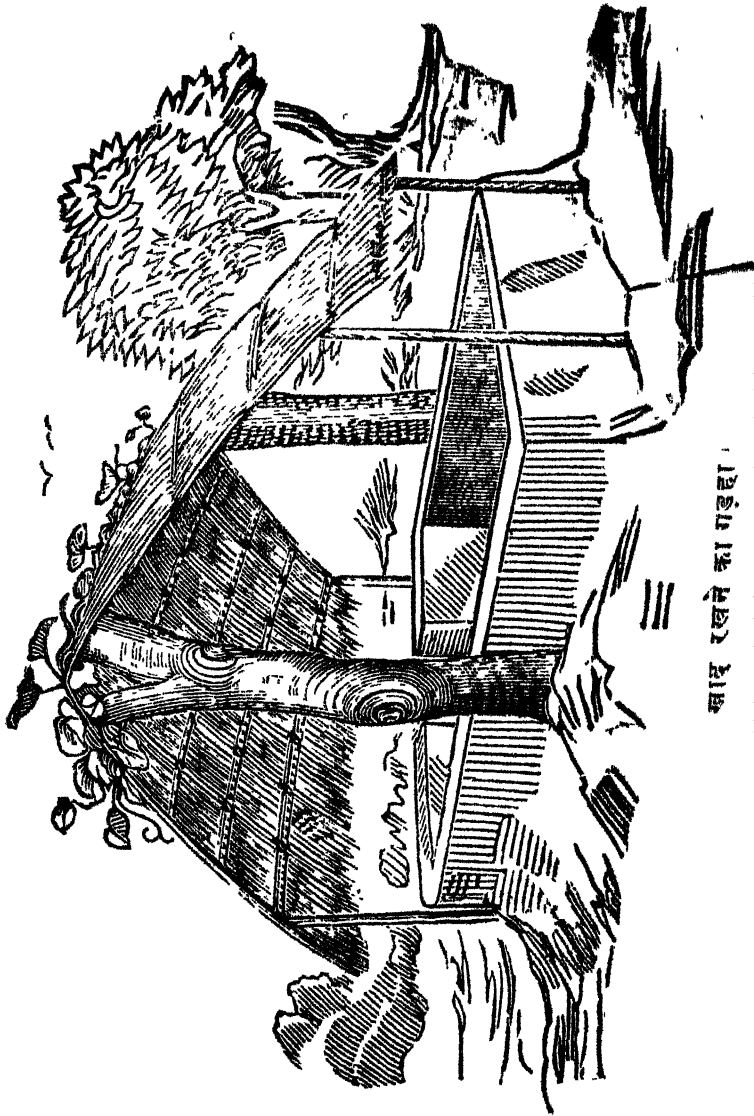
खाद रखने का गड्ढा।

गड्ढा ऊँचे स्थान पर बनाना चाहिए। इसके चारों ओर पानी निकालने के लिये मेंड़ बनानी चाहिए और उसके भीतर की धरती और दीवारों को खूब पीट कर ठस कर देना चाहिए ताकि धरती खाद के तरल अंश सोख न जाय।

३—जब खेतों के बोने जोतने का समय आता है खाद खेतों में कूरा करके फैलाते हैं और उसको तुरंत ही जोत कर धरती में मिला देते हैं। बहुत दिनों तक खाद खेतों में पड़ी रहने से खराब हो जाती है।

७—पशुओं का भोजन।

जो पशु केवल लकड़े (ज्वार बाजरे का डंठल) के सदृश सूखा भोजन पाते हैं उनकी खाद उन पशुओं की अपेक्षा जो खली, भूसा, कराई, बनौर इत्यादि बलदायक भोजन पाते हैं अच्छी और जोरदार नहीं हो सकती। अच्छा भोजन पाने वाले पशुओं से प्राप्त खाद उत्तम होती है।

८—पशुओं की अवस्था।

युवा अवस्था में पशु भोजन का अधिक अंश मांस मज्जा के बनाने में लगता है। भोजन का अंश बहुत कम वृथा जाता है। वृद्ध अवस्था में मांस मज्जा कम बनती है इससे पशु-भोजन का अंश केवल उनके पालन के काम में आता है। इस कारण उनके गोबर में खाद के अंश अधिक होते हैं। रक्षित पशु तथा काम काजी और बेकार पशुओं के गोबर में भी भेद रहता है।

९—नई और पुरानी खाद ।

कूड़े करकट के ढेर का सब अंश जिसके द्वारा खाद बनती है, इस अवस्था में नहीं रहता कि तुरंत ही खाद के काम में आ जाय और पौधे को भोजन से तुरंत लाभ होने लगे। हवा, पानी, गर्मी सर्दी के प्रभाव से इस प्रकार का परिवर्तन उनमें हो जाता है कि उनसे पौधों को भोजन प्राप्त होने लगता है।

प्रायः नई खाद में पौधों को लाभ होनेवाले पदार्थ बहुत कम बने रहते हैं। इस कारण नई खाद लाभदायक नहीं होती।

पुरानी खाद में पौधे का भोजन बना हुआ मौजूद रहता है। इसकी अधिक हिफाज़त करनी चाहिए। पाँस देने में अधिक लाभ होता है।

१०—मूत्र एकत्रित करने की रीति।

रासायनिक क्रिया द्वारा विदित होता है कि गोबर की अपेक्षा मूत्र में पौधों के भोज्य पदार्थ अधिक होते हैं। इससे मूत्र अत्यंत मूल्यवान् खाद है। मूत्र के भोज्य पदार्थ जल्दी इस अवस्था में हो जाते हैं कि उनसे पौधों को भोजन प्राप्त हो। मूत्र की खाद गोबर के साथ मिलाकर एकत्रित करनी चाहिए।

पशुशाला यदि पक्की बनी हुई है तो उसकी नाली द्वारा पशुशाला का धोवन मूत्र इत्यादि बह सकते हैं। इनको एक नाद में एकत्रित करके क्रमशः खाद के गड्ढे में एकत्रित करते जाना चाहिए।

कच्ची पशुशाला में बिचाली पत्ती, मिट्टी अथवा बालू बिछा कर इस प्रकार मूत्र एकत्रित करना चाहिए कि जब पत्ती मिट्टी इत्यादि में मूत्र जज्ब हो जाय तो उसे खाद के गड्ढे में गोबर के साथ एकत्रित करना चाहिए, और नई मिट्टी तथा बालू या पत्ती या और किसी किस्म की बिचाली गोशाले में बिछा देनी चाहिए।

जिसके पास पचीस या तीस पशु हैं उसे पंद्रह फुट चौड़ा और बीस फुट लंबा और पांच फुट गहरा गड्ढा खोदना चाहिए।

जब गड्ढा भर जाय तो उसको मिट्टी से ढाँक देना चाहिए। मिट्टी की तह एक बीता काफी होगी। इस रीति से रक्खी हुई खाद छः महीने में काम के लायक हो जायगी।*

११—पत्ती की खाद।

पत्ती की खाद गोबर की खाद के समान गड्ढे में एकत्रित करनी चाहिए। इसके साथ पशुओं का मूत्र मिलाकर सड़ाना चाहिए। यह खाद लगभग छः महीने में काम के लायक हो जाती है। फूल पतियों के वास्ते तथा अन्य फसलों के लिये साधारण खाद की जगह यह इस्तेमाल की जा सकती है।

१२—खाद देने की रीति।

जब खेतों के बोने का समय आता है और उनकी

*नोट—रोगी पशुओं के मल मूत्र कदापि खाद के काम में न लाना चाहिए। इस से पशुओं में रोग उत्पन्न होने का भय रहता है।

जोताई आरंभ की जाती है, उसी समय खाद खेतों में देकर जोत देना चाहिए। खाद खेतों में बराबर फैल जाय इस बात पर पूरा ध्यान देना चाहिए। जोताई के बहुत दिनों पहले से खाद खेतों में कदापि न फैलानी चाहिए।

खाद ढोने के लिये बहेगा, टोकरी, गदहा, बैल, भैंस गाड़ा और गाड़ी का प्रयोग सुविधा के अनुसार किया जा सकता है।

पशुओं की खाद देने की दूसरी रीति यह है कि कई महिनों तक पशु उसी खेत में बाँधे जाते हैं जिसमें कि खाद देना मंजूर होता है। इस रीति के अनुसार मूत्र की खाद खेतों में जज्ब हो जाती है और गोबर की खाद की ढ़ोवाई और उसके परिश्रम की बचत होती है। पशुओं की पूरी तौर से हिफाजत करना चाहिए। बेपरवाही के कारण पशु चोरी हो जाते हैं। गड़हे में सड़ी हुई खाद पौधों को जल्दी लाभ पहुँचा सकती है।

१३—राख, कूड़ा करकट और पत्तों की खाद।

इसके रखने की वहीं रीति है जैसी कि गोबर की खाद की। सब से अच्छा यह होता है कि ये पदार्थ गोबर के खाद के गढ़हे में मिला दिए जाँय। मिलवाँ खाद घूर की खाद के समान होती है और सब फसलों के लिये साधारण और उपयोगी है।

केवल सूखी राख खाद के काम में लाई जाती है। राख में पोटाश का अंश अधिक होता है। इस से बढ़ती हुई दाल की फसलों को विशेष लाभ पहुँचता है। राख के छिड़कने

से पौधों पर लगे हुए कीड़े फतिंगे मर जाते है अथवा बढ़ने नहीं पाते। चना और सरसों के पौधों पर अकसर राख छिड़की जाती है।

१४ भेंड बकरी के लेंडी की खाद।

गाय बैल की खाद की उपेक्षा भेंड़ बकरियों की खाद के टुकड़े महीन होते हैं और इनमें पानी का अंश कम होता है। भेंड़ बकरियों की खाद जहां उनके बाड़े होते हैं एकत्रित करके गोबर की खाद के समान रखी जाती है।

यह खाद देने की सुगम और प्रचलित रीति यह है कि दो तीन सौ भेड़ों के झुंड को अपने खेत में बैठाते हैं। कृषक चरवाहे को जिनकी कि भेड़ें होती हैं इस के लिये कुछ दाम देते हैं। चरवाहे का काम यह होता है कि वह रात दिन भेंड़ों को उसके खेत में रखता है। भेंड़ बकरियां खेत में पौधों की जड़ें तथा अंकुर, घास पात जो खेत में उगे होते हैं खाकर उस खेत में रहती हैं और उनसे जो खाद प्राप्त होती है वह खेत को लाभदायक होती है। कहते हैं भेंड़ बकरियों तथा पशुओं के खेत में बैठने से धरती को उनके अंग की गरमी पहुंचकर लाभ पहुँचाता है। जो हो वैज्ञानिक रीति से उनकी खाद की मीमांसा की गई है और वह उपयोगी साबित हुई है।

भेंड़ बकरियों की लेंडी की खाद पौधों को शीघ्र प्राप्त हो जाती है। वह खेत बोने के थोड़े ही काल पहले दी जाती है। उगती हुई फसल को भी सड़ी हुई खाद दी जाती है।

खेतों में भेड़ों का प्रथम जोताई के बाद बैठाया जाना उचित है अथवा जब खेत, जोत कर तैय्यार हो जाँय हेंगा देने के समय बैठाने से भी लाभ होता है।

बाग में पौधों के लिये भेड़ बकरियों की लेंडी पीस कर खाद के काम में लाई जाती है परंतु कृषि को विस्तार के साथ करने से यह सब हालतों में संभव नहीं। ऊँख, गेहूं, जौ इत्यादि मूल्यवान फसलों में भेड़ बकरियों की खाद दी जाती है।

१५—घोड़े की लीद की खाद।

अस्तबल के झाड़न बटोरन, घास, जली हुई घास की राख, खराब चारा, बिचाली, लीद, पशुओं के गोबर की खाद के साथ अथवा उसी रीति के अनुसार अलग एकत्रित करने से अच्छी खाद प्राप्त होती है। घुड़साल की खाद के सड़ने में अधिक समय लगता है और यह खाद गोबर की खाद की अपेक्षा अधिक गरम होती है। सड़ने के लिये इसे आठ महीने के लगभग गढ़हे में पड़ा रहने देना चाहिए और केवल अच्छी तरह से सड़ी हुई खाद इस्तेमाल करनी चाहिए। जोताई के समय खाद देना उचित होता है।

१६—विष्टा की खाद।

खेतों की पैदावार के अधिकांश का भोगी मनुष्य है। वह पैदावार की उन्नति के अनेक उपाय निकालता है, नाना प्रकार की खादों का प्रयोग किया करता है। परंतु बहुत सी विष्टा की खाद खेतों को बिना किसी लाभ पहुँचाए हुए नष्ट हो जाती है। इसे यथाशक्ति रोकना चाहिए। विष्टा

की खाद नीच जातियों के अतिरिक्त और कोई छूना पसंद नहीं करता। केवल शौच के समय देहातों में नालों, और पोखरियों की भीटों से बची हुई विष्टा खेतों तक पहुँचती है।

विष्टा की खाद खुली धरतियों के वास्ते अत्यंत उपयोगी साबित हुई है।

विष्टा की खाद बनाने की निम्नलिखित दो रीतियां हैं—

(१) सड़ी हुई विष्टा (पूडरेट Poudrette)

(२) जल में सड़ी हुई विष्टा (सीवेज Sewage)

१७–विष्टा सड़ाना और उसका व्यवहार।

गाँव में पाखाने बनाने का अधिकतर रिवाज नहीं है। नित्यक्रिया के लिये लोग खेतों में अथवा नालों में तथा पोखरों के भीटे पर जाया करते हैं। शहरों में मेहतर विष्टा शहर के बाहर गाड़ देते हैं अथवा खटिक या कोइरियों के हाथ बेंच देते हैं जो उसको खाद के काम में लाते हैं।

एक बालिश्त गहरे दो डेढ़ हाथ लंबे गढ़हे खोद खोद कर विष्टा भर देते हैं। वह तीन चार महीने में अच्छी तरह सड़ जाती है। इस पदार्थ को निकाल कर खेतों में खाद की जगह प्रयोग करते हैं। इसमें पौधे के भोज्यपदार्थ अधिक रहते हैं। इस पदार्थ में मैले के समान अत्यंत दुर्गंध नहीं रहती। यह मँहगी खाद होती है और मूल्यवान् फसलों को दी जाती है जैसे आलू, तरकारियाँ, ऊख, पौंढ़ा इत्यादि को।

इस रीति के अनुसार बहुत सा अमोनिया जिसमें नाइ-ट्रोजन शामिल रहता है उड़ कर हवा में मिल जाता है।

जहां मैला गाड़ा जाता है वहाँ सड़ने की बदबू जिसके साथ बहुत सा अमोनिया मिला रहता है, मालूम होती है।

अमोनिया की हानि को रोकने तथा सफाई करने के निमित्त नवीन पद्धति पर सुएज की रीति निकाली गई है। परंतु यह तरीका केवल बहुत बड़े शहरों में जहां अधिक पानी का प्रबंध हो सकता है, पक्के नवीन रीति पर बने हुए जमपुलिसों (सैनेटरी लैटरीनों) द्वारा किया जाता है। इस रीति में जल में विष्टा सड़ती है और इसके साथ ही पौधों का भोजन अंश जल में घुल जाता है और वही जल सिंचाई के काम में लाया जाता है।

बड़े बड़े शहरों में जहां मल मूत्र नदियों में बाहरी ओर बहाव की तरफ बहाने का प्रबंध किया गया है यदि कृषिकों के सुभीते के अनुसार उसे खेतों तक पहुँचाने का प्रबंध किया जाय तो उससे खासी आमदनी हो सकती है, कृषि को लाभ पहुँच सकता है और म्यूनिसिपैलिटी को तथा किसी प्रबंधकर्ता ठीकेदार को लाभ हो सकता है।

म्यूनिसपैलिटियों (शहरों की सफाई का मोहकमा) में किस प्रकार और किन किन रीतियों द्वारा सफाई की जाती है, कैसे मल एकत्रित किया जाता है और किस सिद्धांत और रीतियों पर और किस नकशे पर सैनेटरी लेटरीन बनाए जाते है उनका कोरा वर्णन अनावश्यक जान पड़ता है। इस का सविस्तर वर्णन उस विषय की पुस्तकों में मिलेगा।

रीति यह है कि विष्टा पानी से बहकर कई चलनियों में छनता है। फिर कंकड़ या ईंटों की तह से निकलता है।

हवा और पानी के साथ उस पर बहुत से छोटे छोटे कृमि जिनको बैकटीरिया कहते हैं अपना प्रभाव डालते हैं। छना हुआ जल सूएज-वाटर अथवा विष्टा-जल कहलाता है जो सिंचाई के काम के लिये पानी उठाने के रीति में वर्णित रीतियों की मदद से निचाई से ऊंचे उठाया जा सकता है अथवा ऊंचाई से नीचे बढाया जा सकता है। इसके उठाने के लिये बाल्टी, छोटी गाड़ियाँ जिनमें उलट जानेवाली बाल्टियां लगी होती हैं, काम में लाई जा सकती हैं अथवा चेन पंप का यथास्थान प्रयोग किया जा सकता है।

१८—सूअर की विष्टा की खाद।

खाटिक, पासी और कहीं कहीं चमार या अन्य जातियाँ सूअर पालती हैं। इनकी विष्टा की खाद बलदायक होती है। कहीं कहीं ये केवल खाद के लिये पाले जाते हैं। कहीं मांस के लिये नीच जातियां अधिक सूअर पालती हैं।

इस खाद का असर गरम होता है इससे खेतों की सिंचाई अधिक करनी पड़ती है। खाद रखने की रीति वही है जो गोबर और घूरे की खाद गढ़हों में रखने के लिये लिखी गई है। इस खाद से अंगूर, आलू, लहसुन, प्याज इत्यादि को विशेष लाभ पहुँचता है।

१९—हरियाली की खाद।

फसल को हरी अवस्था में जोतने को हरियाली की खाद कहते हैं। तजुरबे से साबित हुआ है कि दाल की फसलें हरियाली की खाद के लिये अधिक उपयुक्त हैं। धरती

से अथवा हवा से जो भोजन पौधा लेता है उसको पृथिवी तक पहुँचाने को हरियाली की खाद अत्यंत लाभकारी है। हरियाली की खाद देने के लिये किसी उचित फसल के बीज धरती में बो दिए जाते हैं। जब पौधा फूलने की अवस्था को पहुँचता है फसल को धरती में जोत देते हैं। कुछ काल में वह सड़कर धरती में मिल जाती है।

रबी की फसलों के लिये हरियाली की खाद देने के निमित्त हरियाली की फसल खरीफ में बोनी चाहिए। जून अथवा जुलाई मास का समय उचित होता है। खरीफ की फसल को खाद देने के लिये फसल अकतूबर अथवा नवंबर में बोई जाती है। बोने के पश्चात् फसल की सिंचाई इत्यादि कृषि-कर्म्म यथाविधि होते जाने चाहिएँ। जब उनके फूलने का समय निकट आवे और प्रथम फूल की कलियां दिखाई देने पर हों उन्हें गहराई तक जोतनेवाले हलों द्वारा कई बार जोत कर अच्छी तरह धरती में मिला देना चाहिए। इस काम के लिये बाजूवाले हल अति उत्तम पाए गए हैं।

खाद के लिये सनई, कुल्थी, ग्वार, लोबिया, मोथी, नील, सरीखी फसलें अच्छी होती हैं जिनमें से सनई सबसे सुलभ और सस्ती फसल है। इसका प्रयोग हरियाली की खाद के लिये किया जाता है।

हरियाली के खाद से सजीव अंश की वृद्धि होती है, धरती खुल जाती है, दाल की फसलें हवा से नाईट्रोजन पदार्थ लेकर पृथ्वी को उपजाऊ बनाती हैं।

२०—मछली की खाद।

मछली की खाद पौधों के भोज्य पदार्थ से परिपूर्ण होती है। इस कारण इसका प्रयोग खाद के लिये अत्यंत लाभदायक होता है। फलदार पेंड़ों को मछली की खाद देने से उन के फल मीठे और बड़े होते हैं। मछलियों की खाद में फास-फोरस को अंश अधिक होता है। मछली की खाद मूल्यवान फसलों को भी दी जाती है।

जहाँ मछलियाँ अधिक प्राप्त हो सकती हैं जैसे नदी के तीर पर अथवा गाँव में जहाँ अधिक पोखरे हैं तथा समुद्र के तीर पर, वे सुखी डाली जाती हैं। उन्हें कूट कर अथवा खड़ी खेतों में डालते हैं। कूटने में केवल हड्डी तोड़ने में थोड़ा परिश्रम लगता है वरनः यह बहुत जल्द चूर हो जाती है। गोबर की सड़ी हुई अच्छी खाद और मछली का चूरा पेड़ों की बाढ़ की अवस्था में तथा फूलने के पहले उन्हें हाथ से जड़ों के पास धर देते हैं और मिट्टी से तोप देते हैं। खाद से भोज्य पदार्थ शीघ्र ही पौधों के काम में आते हैं। मूल्य-वान फसलों के लिये यह खाद बढ़ती हुई अवस्था में देनी चाहिए।

बहुत से लोग जीवहिंसा के विचार से मछलियों की खाद का प्रयोग नहीं करते। जिन्हें इस बात का विचार नहीं होता, उन्हें गांव के तालाबों में, गड़हियों में तथा नदी में बहुत मछलियां प्राप्त हो सकती हैं। कभी कभी पानी की बाढ़ के समय मछलियां स्वयं मर जाती हैं और उतरा चलती हैं। उनका प्रयोग खाद के लिये हो सकता है।

२१—रुधिर तथा मांस मज्जा की खाद।

कसाईखाने के झारन बहोरन का छू जाना बहुत सी जातियों को रोमांच कर देता है। इस झारन बहोरन रुधिर इत्यादि का नीच जातियाँ खाद के लिये प्रयोग करती हैं। इस खाद से अति उत्तम खाद का काम निकलता है। उसका उत्तम परिणाम देखने में आया है। घूर की खाद तथा गोबर या लीद अथवा भेंड़ बकरियों की लेंडी की खाद के साथ इन्हें गड्ढे में सड़ाकर उत्तम खाद बनाते हैं। इसको अलग सड़ाकर भी खाद बना सकते हैं। मूल्यवान फसलों तथा फलदार वृक्षों के लिये यह अच्छी खाद होती है। इस खाद के रखने में असावधानी होने से मनुष्यों में बीमारी फैलने का भय रहता है।

२२—खली की खाद।

खली की खादों में फसलों के भोजन पदार्थ अधिक होते हैं। ये भोजन पदार्थ पौधों को प्राप्त होने की दशा में जल्दी परिवर्तित हो जाते हैं, इस कारण खली को अधिक समय तक वायु या सूर्य में न रहने देना चाहिए। इसमें असावधानी के कारण भोज्य अंश खराब हो जाते हैं। खली की खाद पौधों की बाढ़ की अवस्था में देना सबसे लाभदायक होता है। जिन मूल्यवान फलों को खाद देनी होती है उनके अनुसार खाद की मात्रा कमोबेश की जा सकती है।

खानेवाली और वह जो खाने के काम में नहीं आती—दो प्रकार की खली होती है। तिल, अलसी कुसुम या बर्रे, सरसों, लाही, दुवां इत्यादि की खली खाने के काम में आती

हैं। इसलिये इनकी खली पशुओं को भोजन के साथ देने से पशुओं के भोजन का काम भी चलता है, वे बलिष्ट होते हैं और अधिक परिश्रम कर सकते हैं। अच्छा भोजन पाने से उनके गोबर की खाद अच्छी होती है। इस प्रकार खाने की खलियों की खाद का प्रयोग करने के लिये यही अच्छा है कि उनको पशुओं को खाने के लिये दिया जाय और उनका गोबर खाद के लिये यथाविधि सड़ाकर काम में लाया जाय। उन खेतों के जिनकी सिंचाई होती है और जिनमें अच्छी फसलें बोई जाती हैं जैसे कछियाना इत्यादि के लिये, खली की खाद अच्छी होती है।

प्रति वर्ष हजारों टन तेलहन अन्य देशों को बाहर भेजा जाता है। इस प्रकार पशुओं और धरती का बल कम होता जाता है और कृषि को क्षति पहुँचती है। इससे जहां तक संभव हो कृषिकार अपनी हिफाजत के लिये तेलहन की फसलें न बेचा करें।

साधारण अवस्था में यह व्यापार बंद नहीं हो सकता, इससे यदि संभव हो तो कृषक अधिक तेलहन बोकर कुछ अपने काम के लिये रख छोड़ा करे। बिना खानेवाली फसलें जैसे महुआ की खली, नीम की खली कूट कर खेतों में दी जाती है और उससे अच्छी खाद का काम चलता है।

२३—खानेवाली खली।

इसके रखने का प्रबंध अच्छे स्थानों पर होना चाहिए जिससे पानी के कीड़े मकोड़ों तथा दीमक और फफूंदी से उसकी रक्षा

हो। अच्छी खली पशुओं के भोजन के काम में लानी चाहिए और उनका गोबर खाद के काम में। खराब खली जिसमें दीमक लग गई है अथवा जो अधिक पुरानी होने से तीत हो गई है पशुओं के भोजन के काम में नहीं आ सकती। उसको खाद के काम में लाना चाहिए। खाने की खली प्रति एकड़ पांच मन के लगभग काम में लाई जाती है।

खाद देने की यह रीति है कि खली को ढेकुरी या मूसल से कूट डालना चाहिए। जब फसलें फूलने लगें अथवा वे बाढ़ की अवस्था में हों उस समय खेत में उसे फैला देना चाहिए, या गोड़ाई के समय खली पौधों की जड़ों के समीप गाड़ कर मिट्टी से तोप देना चाहिए।

खली देने के बाद सिंचाई न करनी चाहिए।

२४—खली जो खाई नहीं जाती।

नीम की खली।

नीम की निमकौड़ी सुखा कर कोल्हू में पेर कर तेल निकाला जाता है। तेल दवा के अथवा जलाने के काम में आता है। पौधों की बढ़ती हुई अवस्था में उन को यह खली देने से लाभ होता है। खली देने की रीति वही है जो ऊपर लिखी गई है। इस बात का विचार रहे कि यह खली खाने के काम में नहीं आती। नीम की खली से खेत के कीड़े मकोड़े, दीमक की क्षति में एक हद तक बड़ी सहायता मिलती है।

खली की खाद उन फसलों को दी जाती है जिनकी सिंचाई होती है। मात्रा १० से २० मन प्रति एकड़ होती है।

महुआ की खली।

महुए के वृक्ष से बैशाख के महीने में (अप्रैल-मई) में फूल चूते हैं और उनके फल पेड़ ही में लगे रह जाते हैं। जब फल तैयार हो जाते हैं तो वे जेठ तक तोड़ कर सुखा लिए जाते हैं। उनको कोल्हू में पेर कर तेल निकालते हैं। तेल घी के समान होता है जो बहुत से कामों में लाया जाता है। जाड़े के दिनों में यह बहुत जल्दी जम जाता है और उसमें सफेद दाने पड़ जाते हैं। कुछ लोग बेइमानी से इसे घी में मिलाते है। खली कूट कर नीम की खली के समान खेतों में दी जाती है। नीम से यह खली जोरदार होती है। प्रति एकड़ लगभग दस मन दी जाती है।

रेंडी की खली।

रेंडी का पेड़ खराब बलुई धरतियों पर खूब होता है। इसकी खली लाभदायक और सुलभ होती है। इसमें दाम भी कम लगते हैं और इससे पौधों को लाभ भी अच्छा पहुँचता है। इसका छिलका निकाल कर तेल पेरने से जो खली प्राप्त होती है वह छिलकेदार खली से अच्छी होती है। उसमें भोज्य पदार्थ अधिक और शीघ्र पौधों को प्राप्त होते हैं। छिलकेदार खली कड़ी होती है। रेंडी की खली से खेत के कीड़ों मकोड़ों की क्षति में सहायता मिलती है, पौधे आरोग्य रहते हैं। जिन खेतों में रेंडी की खली दी जाती है वे गहरे हरे रंग के हृष्ट पुष्ट दिखाई पड़ते हैं।

खली देने की यह रीति है कि इसे ढेंकुली या मूसल से कूट लेना चाहिए और नीम की खली के सदृश खेतों को

देना चाहिए। अथवा कूटी हुई खली को गोबर की खाद के साथ मिला देना चाहिए और खेत में ज्योंही खेत तैयार हो जावें देना चाहिए।

गेंहू, जौ, ऊख, कछियाना, तंबाकू के लिये रेंडी की खली अच्छी खाद है।

रेंडी अथवा नीम की खली बोरों में भर कर घावा में जहां से पानी खेतों में जाता है रख देनी चाहिए। खली घुल कर पानी में मिलता जायगी और उसका घुला हुआ अंश खेतों को प्राप्त होगा। पर इस बात का विचार रहे कि ऐसा पानी नष्ट होने से बचाया जाय और घावा खेतों से दूर न हो। यदि ऐसा होगा तो खली की हानि होगी। बची हुई खली की तलछट घूर की खाद के गड्हे में डाल देनी चाहिए।

नीम, महुए और रेंडी की खली का सड़े हुए गोबर की खाद के साथ मिलाकर प्रयोग किया जा सकता है। खली की खाद पौधों को गोबर की खाद के समान सुलभ और साधारण खाद है। खानेवाली खली पशुओं को हृष्ट पुष्ट करती है और उनके गोबर की खाद खेतों के काम में आती है जिस से अच्छे शस्य उत्पन्न होते हैं और पृथ्वी की उपज शक्ति अथवा देशी कोष संचित होते हैं। दुर्भाग्य से तेलहन की माँग अन्य देशों में अधिक है, जिससे देशी कोष खाली होता है पर उसके बदले खेतों को कुछ फायदा नहीं होता। कृषक भले ही महँगे तेलहन बेंचकर अपना कोष रुपए से परिपूर्ण कर लेवे पर धरती जिससे वह अन्न उपार्जन करके बेंचता है उसके

बदले में कुछ नहीं पाती। दाना मनुष्य और चारा पशुओं के काम में आता है। दरिद्र पशुओं का गोबर खाद के लिये मिलता है पर उसका भी बड़ा अंश ईंधन के काम में लाया जाता है।

पहाड़ी जिलों में तथा तराई में कुछ स्थानों पर जहाँ पशु कम पाले जाते हैं कृषक बालियाँ ले लेता है और डंठल खेत में खड़ा छोड़ देता है तथा उनमें आग लगा देता है जिस से वे राख हो कर धरती को फायदा पहुँचाते हैं। परंतु ये क्रिया मैदानों में नहीं बर्ती जा सकती क्योंकि पशुओं को भूसे की आवश्यकता होती है।

२५—हड्डी की खाद।

बहुत सी जातियाँ जिनका व्यवसाय कृषि है हड्डी छूना पसंद नहीं करतीं। हड्डी किसी प्राणी की हो खाद के काम में लाई जाती है। प्रति वर्ष लाखों मन हड्डी इस देश से दूसरे देशों को जाती है और वहाँ बहुत से कामों में आती है। उस से चाकू के दस्ते बनते हैं और साफ करके ऐसे ही अन्य बहुत से कामों में वह आती है। उस से चीनी साफ की जाती है और पीस कर तथा अन्य रासायनिक परिवर्तन से खाद के काम में लाई जाती है। हड्डी जो घुल सड़कर इस देश में किसी काम में आती थी वह अन्य देशों को चली जाती है। इस से देशी कोष की हानि होती है। बेचनेवाला भले ही कुछ धन प्राप्त कर लेवे पर उस से धरती को लाभ नहीं पहुँचता।

हड्डी देर में सड़ती और घुलती है इस कारण पौधे के काम लायक तुरंत नहीं होती। हड्डी बड़ी बड़ी लोहे की बनी हुई चक्कियों में तोड़ी जाती है और पीसने के बाद खाद के काम में लाई जाती है। खाद के काम में गोबर की खाद के समान इसका प्रयोग किया जाता है। बारीकी के अनुसार हड्डी का चूरा, बुरादा तथा मैदा बनाया जाता है।

हड्डी को कोयले के समान जला कर उस से हड्डी का कोयला बनाते हैं।

तेजाब डाल कर हड्डी गलाई जाती है जो खाद के काम में लाई जाती है। इस रीति के अनुसार हड्डी से पौधों को भोजन सुलभ रीति से प्राप्त होता है।

हड्डी में फासफोरस अंश अधिक मौजूद होता है। इसका प्रयोग सभी फसलों और सब खेतों के लिये किया जा सकता है। इसे गोबर की खाद के साथ मिला कर देना उत्तम होता है। यदि गोबर की खाद के गड्हे में हड्डी का मैदा, बुरादा अथवा चूरा सड़ने के लिये डाल दिया जाय तो उस खाद की उत्तमता का नतीजा शीघ्र देखने में आ सकता है।

२६—विशेष खाद।

कई प्रकार की मुख्य मुख्य खादों के नाम ऊपर लिखे गए हैं। वे खाद के काम में लाई जाती हैं। पर भारतवर्ष में ये खादें सब जगह नहीं प्राप्त होतीं। इनको दूर से लाने में इनका दाम बहुत होता है जिसके अनुसार फायदे का परता साधारण अवस्था में नहीं पड़ सकता। इस लिये उनका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं।

२७—नोना मिट्टी।

इस से शोरा बनाया जाता है। शोरे में संयुक्त नाइट्रोजन और पोटाश का अंश अधिक होता है। नोना मिट्टी पुराने मकानों पर पाई जाती है। इसका पर्त नम धरतियों पर जमा हुआ दिखाई पड़ता है। यह गोभी भांटा तंबाकू इत्यादि फसलों को जिन्हें नाइट्रोजन और पोटाश की आवश्यकता होती है, लाभकारी है। यह पानी के साथ घुल कर बह जाती है इसलिये सिंचाई के बाद बढ़ती हुई फसलों के ऊपर छिड़क दी जाती है।

२८--तालाब की मिट्टी।

खुली हुई धरती के खेतों को तालाब की मिट्टी की खाद लाभदायक होती है। तालाबों में बहुत से पानी के जीव जंतु रहते हैं जैसे मछली, घोंघे, सिवार, मेंढक इत्यादि। वे पानी सूखने पर मर जाते हैं तथा उनके अंश मिट्टी में मिल जाते हैं और पौधों के भोजन के काम में आते हैं। आसपास का बहुत सा जल जिसमें गाँव का पानी, पशुओं का गोबर मूत्र इत्यादि मिला होता है, घुलकर तालाब में पहुँचता है। प्रति एकड़ लगभग दस मन मिट्टी दी जा सकती है।

छोटे गड़हों और पोखरियों की मिट्टी अवस्था के अनुसार तालाब की मिट्टी से अधिक उपजाऊ और बलिष्ट होती है।

२९—चूने की खाद।

ऊपर वर्णन हो चुका है कि चूना पौधों के मुख्य अंशों में से है। चूनेवाली मिट्टी, घोंघा, सीपी, बुझा हुआ चूना, पौधों के लिये अच्छी खाद है।

इसका प्रभाव प्रायः साधारण खादों से इस प्रकार भिन्न है कि और खादों में स्वयं पौधों का भोजन अंश मौजूद रहता है परंतु चूने के प्रभाव से दूसरी खादों में तथा पृथ्वी में जो पौधों का भोजन संचित रहता है वह इस अवस्था में आ जाता है कि पौधा उसका प्रयोग कर सकता है। ऐसी खाद का प्रभाव या तो स्वयं पृथ्वी पर पड़ता है या इनके कारण से दूसरे भोजन पदार्थों का प्रयोग होता है। इन्हें अंगरेजी में इनडाइरेक्ट मैन्योर अथवा परोक्ष खाद कहते हैं।

चूना पौधों की हृष्ट पुष्ट उत्पत्ति के लिये आवश्यक खाद है। जिस धरती में चूने की कमी है और इस कारण से पौधे हृष्ट पुष्ट नहीं रह सकते उनको चूने की खाद देने से शीघ्र लाभ पहुँचता है। जैसे, यदि गेहूं जौ इत्यादि की फसलें बाढ़ के समय पीली पड़ गई हों तो उनकी अवस्था का कारण समझ कर चूने की खाद दे देने से वे ठीक अवस्था में आ जाते हैं। धरती मे मौजूद चूना प्रायः पृथिवी के नीचे की तह में चला जाता है जिससे ऊपर की तह कमजोर पड़ जाती है। अच्छी जोताई और गोड़ाई से चूना फिर ऊपर चला आता है और पृथ्वी ठीक हो जाती है। यदि ऐसा न हो तो चूने की खादि का अभाव समझना चाहिए। धरती में जो पोटाशिक पदार्थ संयुक्त दशा में रहते हैं उन्हें चूना अलग करके पौधों को भोजन प्राप्त कराता है। चूना साधारण पानी में जिसमें कार्बोनिक एसिड गैस घुली रहती है, घुल भी सकता है।

चूना हमेशा बुझा कर खाद के काम में लाना चाहिए

क्यों कि वे बुझा चूना बहुत गरम होता है। बुझा हुआ चूना पृथ्वी पर शीघ्र असर करता है और उसके गुण देखने में शीघ्र आते हैं। चूना धरती पर रखकर सावधानी से उसपर थोड़ा थोड़ा पानी छिड़कना चाहिए। इस प्रकार वह बुझ जाता है। बुझाते समय चूना बहुत गरम हो जाता है इस लिये जलने से बचना चाहिए।

चिकनी मिट्टी में जो चिकनाहट होती है वह चूने की खाद से कम हो जाती है। ऐसी धरती जब जिमीन सूखती है बड़े बड़े ढेलों में नहीं बँधती, और पानी में तर होने से उसमें अधिक काँदा जैसा निरी चिकनी मिट्टी में हो जाता है नहीं होता। उसमें कुछ भुरभराहट भी आजाती है।

बुझा हुआ चूना खेत में फैला कर हल द्वारा धरती में मिला देना चाहिए। अधिक काल तक पड़े रहने से चूना रासायनिक क्रिया द्वारा खरिया मिट्टी बन जाता है। खरिया मिट्टी में गुण कम होते हैं, वह चूने के समान तेज नहीं होती। चूना दाल वाली फसलों को विशेष करके लाभदायक है। लग भग तीन से चार मन प्रति एकड़ चूने की खाद काफी होती है। चूने की खाद खेत बोने से पहले दी जाती है। एक ही खेत में प्रति वर्ष चूने की खाद न देनी चाहिए। पांच वर्ष में एक बार खाद का देना काफी है, क्योंकि यह तेज होता है।

३०—मिलुवां खाद।

खाद के मिलाने में बड़ी सावधानी से विचार करना चाहिए। साधारण लीद, हड्डी, खली इत्यादि जांतव खादों के

आपस में मिलाने में विशेष युक्ति की आवश्यकता नहीं, पर विशेष खादों के संयोग से भीषण रासायनिक क्रियाएँ उपस्थित होती हैं। जैसे चूनेवाली धरती में गोबर तथा अन्य नौसादर युक्त खाद का मेल देने से अमोनिया गैस बनती है और वह उड़कर खराब हो जाती है। चूने और नौसादर का योग न होना चाहिए।

३१–विशेष खादों का असर।

विशेष खादें जिनका नाम ऊपर दिया गया है अधिक तर शीघ्र अपना असर दिखाती हैं। वे पौधों को बाढ़ की अवस्था में दी जाती है। नाइट्रोलिम से पौधों की पत्तियां जल जाती हैं, इस कारण वह जोताई के साथ दी जाती है।

३२–खेतों की उपज।

उपज दो प्रकार की होती है, प्राकृतिक अथवा कृत्रिम। प्राकृतिक उपज पृथ्वी में वर्तमान उत्पादन शक्ति को कहते हैं। इससे सूचित होता है कि पृथ्वी में पौधे के भोजन के अंश वर्तमान रहते हैं और प्राकृतिक परिवर्तन से वे पौधों के काम में आने योग्य हुआ करते हैं। ऐसी उपज जल्दी नाश नहीं होती। यद्यपि वह धीरे धीरे पौधों को भोजन पहुँचाती है पर उसकी उपज कायम रहती है।

कृत्रिम उपज कृत्रिम रूप से खाद अथवा पौधों की आवश्यकताओं को पूरा करने से प्राप्त होती है। यदि ये आवश्यकताएँ बराबर पूरी न की जाया करें तो उपज जाती रहती है। जैसे अच्छे बाग की धरती में, जो खूब मेहनत से बनाई गई है

और जिसमें खूब खाद दी गई है यदि बराबर भारी फसलें बोई जायँ और उसमें खाद का देना बंद कर दिया जाय तो कुछ समय में ऐसी धरती निर्बल पड़ जायगी। ऐसी बनाई धरती की उपज-शक्ति इस प्रकार खराब करना उचित नहीं है, क्योंकि थोड़ी देख भाल से बनी हुई धरती की उत्पादन शक्ति कायम रहती है और उसकी हिफाजत न करने से अधिक परिश्रम और व्यय से संचित की हुई शक्ति नष्ट हो जाती है जिसके पुनः संचय में अधिक व्यय और परिश्रम करना पड़ता है।

३६—खाद में किफायत।

विधिवत खाद की हिफ़ाजत करने से यह देखा जाता है कि जहां गाड़ियों खाद लगती थी वहां कम मेकदार में खाद से उत्तम काम निकलता है। वैज्ञानिक नियमों का अनुसरण हर हालत में लाभदायक है।

पन्द्रहवां परिच्छेद ।

मिलुवाँ शस्य, शस्यचक्र, चौमास छोड़ना ।

धरती में खाद देने के अतिरिक्त कृषिकार प्रायः उन रीतियों का अनुसरण भी करता है जिनसे वह अपनी धरती से किफायत के साथ लाभ उठा सके और धरती की उपज को भी कायम रख सके। वह क्रम से धरती के अनुसार फसल अदल बदल कर बोता है। एक फसल में एक फसल तो दूसरी फसल में दूसरी फसल बोता है। वह समय समय पर खेतों को पलिहर छोड़ता है, जिस से उसकी धरती की उत्पादन शक्ति की रक्षा होती है।

खेतों में अदल बदल कर फसल बोना शस्यचक्र अर्थात् बड़ी सावधानी और अनुभव से बैठाया जाता है, नहीं तो पैदावार अच्छी नहीं होती। साधारण कृषक यद्यपि इन रीतियों का कारण नहीं जानता और उनको वैज्ञानिक भाषा में प्रगट नहीं कर सकता तथापि परंपरा के अनुभव से उसको शस्यचक्र का ऐसा ठीक ज्ञान होता है कि प्रायः वह एक फसल के बाद दूसरी फसल के बोने का चुनाव करने में ग़लती नहीं करता।

१—मिलुवाँ फसल का बोना।

कई फसलें मिला कर बोने से यह बात रहती है कि यदि एक फसल न हुई तो उसके साथ वाली दूसरी फसल

तो होगी। खरीफ़ की फसल में इस प्रकार की अस्थिरता अधिक होती है। अवध के अधिक भागों में चावल के साथ कोदों मिलाकर बोते हैं।

यदि पानी मिला तो धान अच्छी तरह से बढ़ता है और यदि पानी न मिला तो कोदों की फसल मिल जाती है। ज्वार अरहर बोने का आम तौर पर रिवाज देखा जाता है जिसका एक कारण यह है कि जोताई के परिश्रम में बचत होती है। खेत ज्वार के लिये बोया जाता है, साथ में अरहर भी मिला कर बो देते हैं। ज्वार की फसल जल्दी बढ़ती है। उसके साथ साथ अरहर धीरे धीरे बढ़ती जाती है। यदि ज्वार की फसल जोरदार हुई तो अरहर की फसल दब जाती है। जब ज्वार की फसल काट ली जाती है अरहर तेजी से बढ़ने लगती है और उस से समय रहने के अनुसार ज्वार के बाद अच्छी फसल मिलती है। यदि ज्वार कमजोर है तो अरहर ज़ोर से बढ़ सकती है।

मिलुवाँ फसल बोने से पृथिवी में जल का संचय रहता है। वह भाफ बनकर उड़ने से बच जाता है। पानी पड़ने से धरती कड़ी हो जाती और उसके भीतर की केश नलिकाओं का तार बराबर हो जाता है जिस से पानी व्यर्थ जाने लगता है। ज्वार अरहर के साथ उर्द अथवा और कोई लता की फसल बो देते हैं। यह धरती को ढके रहती है और सूर्य्य की तीक्ष्ण गरमी से बचाती है।

मिलुवाँ फसल बोने में यह भी विचार होता है कि भिन्न भिन्न प्रकार के पौधों की फसलों की जड़ें अधिक अथवा

कम गहराई तक बढ़ती हैं और अपना भोजन पृथिवी की भिन्न भिन्न सतह से प्राप्त करती हैं। एक ही प्रकार की फसल केवल एक सतह से भोजन प्राप्त कर सकती है। मिलवाँ फसलों की जिनसों को एक साथ ही कई सतहों से लाभ पहुँचता है और कई फसलें लेकर उनसे पैदावार अधिक प्राप्त होती है। दाल की फसलों को मिला कर बोने से उनसे नाइट्रोजन मिलता है। उदाहरण के तौर पर खरीफ़ में सनई, मूंग, उर्द, मोठ, अरहर और नील दाल की फसलें हैं। रबी में चना मटर, मसूर इत्यादि हैं।

रबी में मौसिम की इस प्रकार की अस्थिरता कम होती है जैसी कि खरीफ में। सिंचाई का विचार करके दाल और अनाज की फसलें एक साथ बोते हैं जैसे, गोजई, चना, मटर, जौ, सरसों, गेहूं इत्यादि।

२—शस्य का अदल बदल कर बोना।

शस्यचक्र।

एक ही खेत पर कई प्रकार के शस्य बोने को शस्य का फेर फार कर बोना अथवा शस्यचक्र (Rotation of Crops) कहते हैं। अदल बदल कर फसलों के बोने से खाद में बचत होती है और जहाँ तक संभव होता है धरती पर ज़ोर कम पड़ती है। भिन्न भिन्न शस्यों के भोजन की आवश्यकता भिन्न होती है। जिंसों (Cereals) की फसलों की जैसे जौ गेहूं की आवश्यकताएँ और भोजन भिन्न होते हैं और दाल की फसलों की आवश्यकता भिन्न होती है। यदि

किसी एक फसल में एक ही प्रकार की फसल बार बार बोई जायगी तो धरती से एक ही प्रकार के भोजन की खींच होगी और अधिक भोजन पदार्थ संचार होने का समय न मिलेगा। खेत की उत्पादन शक्ति कायम रखने के लिये अधिक खाद और अन्य कृषि संवर्धी क्रियाओं की आवश्यकता होगी।

इनमें से कुछ पौधों की जड़ों की प्रकृति अधिक गहराई तक जाने की है और कुछ धरती की सतह के पास ही रह जाती हैं। दाल की फसलों की जड़ें, तमाखू की जड़, रेंड़ी इत्यादि फसलों की जड़ गहराई तक जाती है। जौ, गेहूं, मकई ज्वार के पौधों की जड़ें धरती की सतह के पास रहती हैं।

एक फसल के उत्पन्न करने में जितनी खाद की आवश्यकता होती है प्रायः उस खाद का सब अंश उसी फसल में खतम नहीं हो जाता। खाद का शेष भाग यद्यपि वही फसल दोबारा उत्पन्न करने के योग्य न हो पर उसके बाद उससे दूसरी कोई फसलें बोने से अच्छा नतीजा निकलता है जैसे तंबाखू के बाने के बाद ऊख बोना।

कुछ शस्यों के, जिनका वर्णन हरियाली की खाद के संबंध में हुआ है, पश्चात् दूसरे शस्य बोने से लाभ होता है जैसे ज्वार बोकर तब ऊख बोवें तो ऊख की फसल अच्छी होगी।

शस्यचक्र से खर पतवार के नाश करने में सहायता मिलती है क्यों कि क्रमशः पृथिवी में वर्तमान पौधों के सभी भोजन अंश फसल के काम में आते रहते हैं। घनी बोआई और मिलुवाँ फसलों की बोआई धरती से खर पतवार साफ करने में अधिक गुनकारी होती है।

कई प्रकार की फसलों के बोने से साल में धंधा बराबर लगा रहता है और कृषक को कई प्रकार की फसलें मिल जाती हैं।

यदि एक फसल के लिये मौसिम खराब हुआ तो दूसरी फसल के उत्पन्न होने की आशा की जा सकती है। जैसे जब एक फसल मारी जाती है कृषक उसके बाद कोई दूसरी फसल बोता है।

एक ही फसल के बार बार बोने से उसमें रोग लग जाते हैं, उस पर कीड़ों के आक्रमण होते हैं जिससे कृषक की बड़ी हानि होती है और वह विवश हो उस शस्य का बोना बंद कर देता है। इसका एक कारण यह होता है कि इन ईतियों के बीज तथा अंडे धरती में बने रहते हैं और जब उनकी भक्ष्य फसल तैयार होने लगती है वे अपना आक्रमण प्रति फसल अधिक बल से शुरू कर देते हैं। फसल बदल देने से वे भोजन न पाकर मर जाते हैं, क्योंकि वे दूसरी फसल पर, जो उनका भोजन नहीं है, नहीं जी सकते; जैसे कपास का कीड़ा ज्वार तथा मटर अथवा ऊख पर नहीं जीता। गेहूं की गेरुई चने अथवा मटर पर नहीं लगती। इस बात का प्रबंध होना चाहिए कि पास में भक्ष्य फसल और कहीं तो नहीं है, नहीं तो कीड़े नष्ट न हो सकेंगे।

(१) धरती में कितनी खाद दी जाती है अथवा कितनी खाद उसे प्राप्त हो सकती है (२) धरती की भौतिक और रासायनिक अथवा उसकी विशेष शक्तियों का विचार, (३) स्थान, पानी का प्राप्त होना, बाजार निकट होना इत्यादि, (४) बिक्री,

मांग, (५) कृषक की आवश्यकताएँ, (६) मौसिम, (७) शस्यों के रोग और अन्य ईतियां-प्रभृति कारणों का विचार करके खेतों में शस्यचक्र बैठाने का विचार उचित होता है।

भारतवर्ष में प्राय: फसलें अदल बदल कर बोने का रिवाज है और कृषक इसके फायदों को भली भांति जानते हैं। स्थानीय हालतों के अनुसार वे शस्यचक्र बना लेते हैं। धान के खेतों में धान के अतिरिक्त बहुत कम दूसरी फसल बोई जाती हैं, पर अवसर और सुभीते के अनुसार चना, तीसी, लतरी अथवा मटर भी बोते हैं। गाँव के नजदीक तथा उपरोक्त कारणों के विचार के अनुसार धनाऊ धरतियों पर मूल्यवान और साल में कई फसलें उत्पन्न होती हैं।

३—कई फसलों का बोना।

बहुत से मुल्क ऐसे हैं जहाँ साल में केवल एक ही फसल बोई जाती है। भारतवर्ष में भी बहुत से स्थान ऐसे हैं जहाँ साल में केवल एक ही फसल धरती से प्राप्त होती है। इसका कारण कहीं कहीं तो यह होता है कि धरती खराब होती है, एक फसल भी जो होती है अच्छी नहीं होती। कहीं कहीं धरती अच्छी होती है परंतु वहाँ की आबोहवा और अन्य बातें सुविधा के अनुसार नहीं होतीं, जंगली जानवरों का भय होता है जिस से पशु शस्य और आदमियों की हिफाजत नहीं हो सकती, कहीं खेत और खेती की सुविधाएँ अच्छी हैं पर कृषक निरुत्साही तथा आलसी हैं। इस अवस्था में उन्नति के दो मार्ग हैं। ऐसे स्थान जहाँ किसी कृषि की कोई सुविधा जैसे

पानी का प्राप्त न होना, बैलों का न होना, बीज का न मिलना, नील गाय, बंदर इत्यादि जानवरों का हमला करना इत्यादि कारण मौजूद हैं वहां उनके निवारण का उपाय करना चाहिए।

दूसरे कृषकों को अन्य स्थानों की कृषी की दशा दिखा-कर उत्साह दिलाना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि लगान बहुत कम है तो वह बढ़ाई जा सकती है। यदि लगान अधिक है तो उसे कम कर देना उचित है अथवा कृषि संबंधी सुविधाओं की उन्नति कर देनी चाहिए। यदि कृषक दरिद्र हैं उन्हें कम सूद पर रुपया दिया जाना चाहिए। यदि खेतों के लिये उपराचढ़ी होती हो तो सब से अधिक लगान देनेवाले को खेत दिया जाना चाहिए परंतु यह विचार कर लेना उचित है कि आसामी देनेवाला है या नादेहंद है। ठीक लगान बराबर दे देने वाला आसामी इमांदार होता है। एक फसल में अधिक लगान दे कर बैठ जानेवाला असामी ठीक नहीं होता। जहाँ कृषकों की कमी है समझ बूझकर काम करना चाहिए। बोई जानेवाली धरती पर आबोहवा की तासीर पड़ती है उस पर बिबिवत खेती करने से और खाद देने से उसकी उपज कायम रहती है और बढ़ती है। परती छूटी हुई धरती अकाम धन के समान है जो एक कोने में गड़ा है। अंगरेजी राज्य में तथा अन्य किसी स्थापित राज्य में कृषी करने की परिपूर्ण सुविधा प्राप्य है। खेत और उनके शस्यों का अमन होने के कारण एक प्रकार से दृढ़ बीमा सा हो गया है। हमारे सौभाग्य से हमें ऐसा अवसर मिला है जिसमें हमें कृषि की उन्नति करने की सब सुविधाएँ प्राप्त हैं, या हो सकती हैं।

भारतवर्ष की आबोहवा ऐसी है, और धरती भी ऐसी है कि सुवर्णमयी कही जाती है। यहाँ साल में कई फसलें उत्पन्न करके कृषक धनवान हो सकता है। अपने उद्योग से यदि वह एक फसल की पैदावार अपने पास रख लेवे तो वह निश्चिंत हो सकता है।

बाजार की माँग, ले जाने की सुविधाएँ जैसे रेल, सड़कें इत्यादि का होना, कृषकों को अनाज उत्पन्न करने और धन कमाने के लिये उत्तेजित करते हैं। जमींदार इनको स्थापित करने में उसके सहायक हो सकते हैं। गोयँड़े के खेत तथा शहरों के खेत इस प्रकार साल भर में शायद ही कभी खाली छोड़े जाते हैं। उनमें एक न एक फसल अनाज या तरकारी की बोई ही रहती है। जो काम एक स्थान पर हो सकता है उन सुविधाओं के अनुसार उद्यम से दूसरे स्थानों पर भी उसका होना संभव है। रेतीली, परती, मरायल धरती पर उद्यम से इस समय बाग लगे हुए हैं। हमें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सुविधाओं को उत्पन्न कर के उनकी रक्षा करनी चाहिए। ईश्वर उनकी सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं।

धरती पर और उसकी उपज पर प्रति दिन अधिक बल पड़ता जाता है। धुनियें, लकड़ी, पत्थर का काम करनेवाले इत्यादि जो मिलों और बड़े बड़े कारखानों का मोकाबला नहीं कर सकते अपने व्यवसाय छोड़ कर कृषि पर अवलंबित हैं। नई धरती जोत में आती जाती है और स्थापित राज्य में कृषि पर भरोसा बढ़ता जाता है जिस से धरती की माँग और कीमत बढ़ती जाती है। इस अवस्था में यह भी कर्तव्य उप-

स्थित है कि कृषि अच्छी तरह से की जाय, उस से अधिक और उमदा शस्य उत्पन्न किए जाँय और धरती को उचित बदला दिया जाय जिस से उसकी पैदावार न घटे।

४-खेत का परती छोड़ना।

अधिक फसले बोते बोते अथवा अन्य किसी विशेष कारण से जब खेत की उत्पादन शक्ति कम हो जाती है अथवा जाती रहती है अथवा यह होता है कि शस्य बोने से बोआई की कीमत नहीं वसूल होती या फसल खराब होती है तो कृषक समझता है कि उसकी धरती कमजोर पड़ गई है और उसको आराम देने की आवश्यकता है। इस संबंध में यह विचारणीय है कि कृषि करने के बुरे तरीकों के कारण तो ऐसा नहीं हुआ है। इस विषय में खेतों को परती छोड़ कर कुछ समय के लिये कृषक उन्हें आराम देता है। धरती की परती अवस्था में भी कुछ लोग कोई साधारण दाल अथवा जिन्स की फसल बोकर गोरू अथवा भेड़ बकरियों को खिलाते हैं। इस प्रकार उनके गोबर की खाद परती जमीन को मिल जाती है। फसल कट जाने के पश्चात् दूसरी फसल की बोआई तक जो धरती परती रहती है उसे इस प्रकार कुछ अवकाश मिल जाता है जिस से उसमे पौधों का भोजन संचित हो जाता है, जैसे रबी की फसल के बाद खरीफ की फसल बोने में लगभग तीन महीने का अवकाश मिल जाता है अथवा रबी के बाद दूसरे साल रबी बोने में नौ मास के लगभग अवकाश मिल जाता है।

खेत के अवकाश काल में अधिकतर और हर घड़ी अनुकूल अवस्थाओं में रासायनिक और भौतिक क्रियाएँ होती रहती हैं। उनमें छोटे छोटे कीड़ों की जिन्हें बैकटीरीया कहते हैं वृद्धि होती है और वे पौधों के अनुकूल हालतें धरती में पैदा करते रहते हैं। इस प्रकार पौधों का बहुत सा भोजन एकत्रित होता है जो आगामी शस्यों के काम में आता है और कृषक का अभिप्राय धरती परती छोड़ने का यही रहता है।

इस प्रकार धरती को परती छोड़ने का कृषक चौमास रखना या पलिहर छोड़ना कहते हैं। चौमास छोड़ने के बाद खेत में कोई कीमती फसल बोते हैं। छोटे छोटे खेत के कृषक को यथासंभव खेत परती छोड़ने का अवसर कम रहता है क्योंकि उसके पास खेत कम होते हैं और अपने भरण पोषण के लिये उसे शस्य उत्पन्न करने अथवा लगान देने के दबाव में पड़ा रहना होता है।

जहां पानी अधिक बरसता है वहां धरती को पलिहर अवस्था में छोड़ने में हानि होती है क्योंकि धरती के घुल जानेवाले पदार्थ जैसे नाईट्रेट्स इत्यादि पानी के साथ बह जाते हैं। ऐसी अवस्था में खेतों में कोई शस्य बोने से इस हानि का बचाव किया जा सकता है। इससे धरती पर खड़ी फसलें उन पदार्थों का उपयोग करती हैं और उन्हें बहने से रोकती हैं। संयुक्त प्रांत में अथवा अन्य स्थानों में जहां पानी बरसने की कम संभावना होती है साफ परती छोड़ने में कोई हर्ज नहीं। जब आवश्यकता के अनु-

सार परती बहुत दिनों के लिये छोड़ी जाय तो उसपर सनई गुवार प्रभृति फसलें बोने से धरती के भोजनतत्व में अधिक फर्क नहीं पड़ता। इस प्रकार कोई बढ़िया फसल परती भूमि पर बोने को भी पाश्चात्य देशी किसान एक प्रकार की परती ही ख्याल करते हैं।

सोलहवाँ परिच्छेद।

शस्य की कटाई, लवाई, मड़ाई।

१—समय।

फसलें जिस उद्देश्य से बोई जाती हैं, जब वह पूर्ण हो जाता है तो शस्य तैयार समझा जाता है और उसके एकत्रित करने का समय आ जाता है। यह किसी क़ायदे से नहीं वरन् अनुभव से ज्ञात होता है कि अब फसल के काटने का समय आगया है। तैयार शस्य के खेत में पड़े रहने से बड़ी हानि होती है। चोरी हो जाना, हवा पानी से शस्य का खराब हो जाना, पक कर दानों का झरना, चिड़ियों और पशुओं से शस्य को हानि पहुँचना साधारण आपदाएँ हैं। ऊख अथवा रेशे की फसलों को भी हानि पहुँचती है। जब ऊख तैयार हो गया तो उसका रस खराब होने लगता है और उसके रस में कमी होने लगती है। रेशे की फसलों के अधिक काल तक पड़े रहने से उनका रेशा कड़ा होजाता है।

संयुक्तप्रांत में शस्य की कटाई का समय अगस्त अथवा भादों के महीने से आरंभ होता है और बराबर बैसाख के महीने तक जारी रहता है। भादों में नील की फसल की कटाई होती है और बहुत सी छोटी छोटी फसलें काकुन, कुटकी, सांवा इत्यादि फसलें तैयार होती हैं। भादों के अंत तक अथवा कुँवार के महीने तक कटाई खतम हो जाती है और

अगेता धान की कटाई होती है। अन्य दाल की फसले, कपास और पछैता धान कुवाँर से अगहन तक काटे और मांडे जाते हैं। कार्तिक की एकादशी से ऊख की पेराई शुरू हो जाती है और माघ तक जारी रहती है। इसी समय मूंगफली की खोदाई का समय होता है। तब तक अरहर, मटर, चने की कटाई होती है। इसके उपरांत रबी की बड़ी फसलों, गेहूं, जौ इत्यादि की कटाई और मड़ाई का समय आ जाता है और चैत्र अथवा वैसाख तक चलता है।

तंबाकू बैसाख अथवा ज्येष्ठ में काटा जाता है और बनाया जाता है। आलू फूस माघ में खोदे जाते हैं। चैत से कुँवार तक कोंहड़ा, लौकी, करेला, खीरा, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज का मोसिम रहता है। बैसाख ज्येष्ट में चना अथवा सांवा काटते हैं।

पूर्वी जिलों में रबी की फसल पश्चमी जिलों की अपेक्षा प्रायः एक मास के लगभग पहले पक कर तैय्यार हो जाती है। इसका कारण यह है कि पश्चिम में सर्दी कुछ अधिक दिनों तक रहती है। इस कारण से उनके पकने में विलंब होता है। पश्चिम में खरीफ की फसलें जल्दी पक कर तैय्यार होती हैं क्योंकि पश्चिम में उतना पानी नहीं बरसता जितना पूर्वी जिलों में।

२—कटाई के औजार।

हँसिया या दरेती—स्थानी अवस्था के अनुसार हँसिया या दरेती कई आकार प्रकार की बनाई जाती है। कहीं उसकी

सान सपाट होती है; कहीं उसकी बाढ़ में आरी के समान दंदाने बने रहते हैं।

खुर्पी, कुदारी, फावड़ा, देसी हल, खोदने के काम में आए जाते हैं।
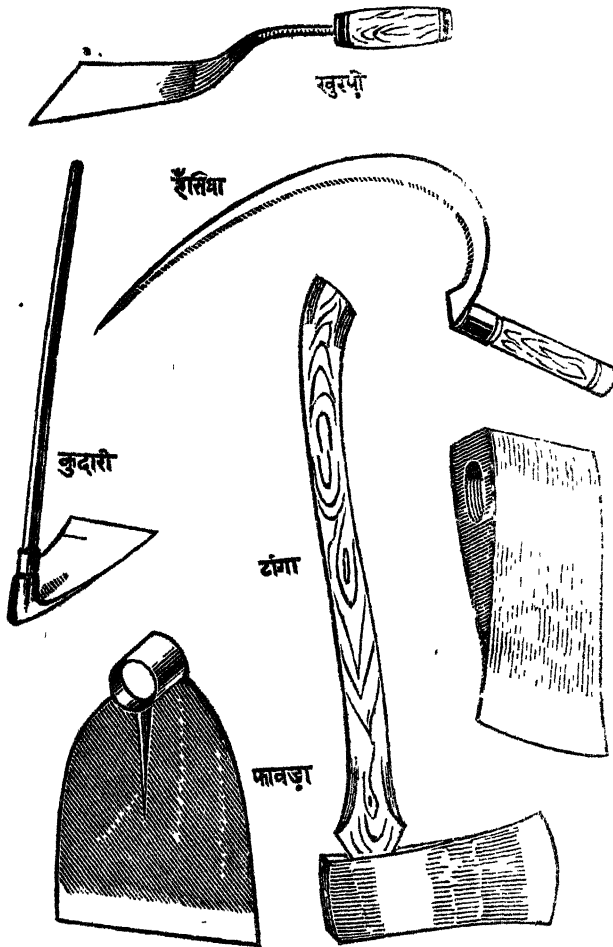
कस्सी या बांकी—अरहर अथवा ऊख काटने के काम में लाई जाती है।

गँड़ासी—चारा काटने अथवा अरहर, ऊख की फसलें काटने के काम में आती है।

३—कटाई की रीतियां।

रेशे की फसलें जैसे अलसी इत्यादि जड़ से उखाड़ ली जाती हैं। कमजोर पौधे उर्द, मूंग, मटर प्रभृति हाथ से बटोर लिए जाते हैं क्योंकि उनको उखाड़ने में कुछ भी मेहनत नहीं पड़ती। यदि पौधे कुछ हरे हुए तो उन्हें हँसिया से काट लेते हैं।

ज्वार, मकई, बाजरा प्रभृति पौधों के भुट्टे हँसिया से काट कर जमा किए जाते हैं। उनको लाठी से पीट कर दाना अलग कर लेते हैं। मकई के भुट्टों को आपस में रगड़ कर उनका दाना छोड़ाते हैं। मकई के भुट्टे के दाने छोड़ाने की एक मशीन भी होती है।

अधिकतर अनाज के पौधे धरती से लगाकर हँसिया से काट लेते हैं। जैसे गेहूं, धान, जौ इत्यादि।

आलू, गाजर, शलगम, मूंगफली, प्रभृति फसलें धरती से खोदी जाती हैं। कपास तरकारी प्रभृति फसलें हाथ से चुनी जाती हैं। कभी कभी गेहूं प्रभृति अनाज की बालियां अलग और पेड़ी अलग काटते हैं और अलग दांते हैं।

[illegible] के भुट्टे से दाना अलग करने की मशीन।
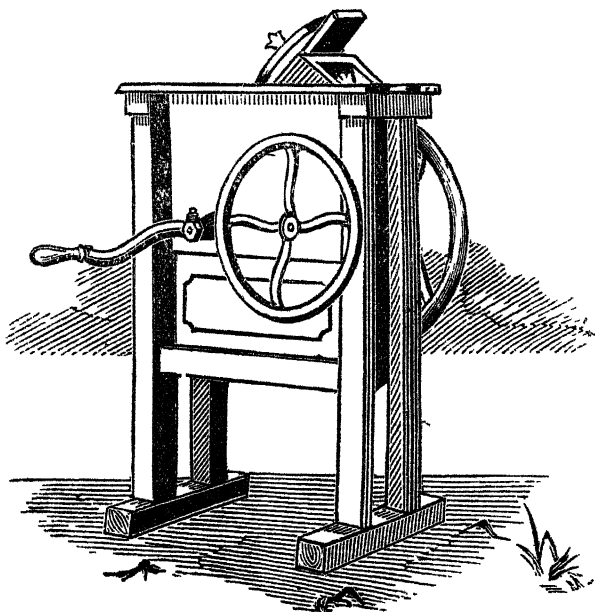
पहाड़ी अंचल में बालियां काट कर दाना निकाल लिया जाता है। पेड़ी खेत में छोड़ देते हैं। जब जोताई का समय आता है उन में आग लगा देते हैं। राख खाद का काम देती है। यह रिवाज खाद के विचार से एक हद तक अच्छी है। इसका कारण यह है कि पहाड़ी अंचल में लोग पशु बाँध कर नहीं खिलाते। इससे उन्हें भूसे की परवा नहीं

रहती । मैदान में पशुओं को अधिक तर अपने स्वामी के दिए हुए भोजन का अवलंब रहता है ।

४—लवाई (Gleaning)

फसल काटते समय कुछ अनाज खेतों में गिर जाता है। इस को एकत्रित करने को लवाई कहते हैं। इसको छोटे छोटे लड़के तथा लड़कियां अथवा औरतें बीन लेती हैं या कूंचे से बटोर लेती हैं। जो कुछ बच जाता है वह चिड़ियों तथा चरनेवाले पशुओं के काम में आता है ।

लवाई की मजदूरी बीनी हुई शस्य का एक अंश होता है, जो जितना लनता है वह उतना ही अधिक पाता है ।

५—मड़ाई।

अधिकतर अनाज की फसलें काट कर खलिहान में एकत्रित की जाती हैं । खलिहान किसी आम या दूसरे वृक्षों के समूह के बीच जहां फैलाव की जगह हो धरती को समतल करके लीप पोत कर बनाया जाता है। कुछ लोग खेतों ही में धरती बराबर करके उसे गोबर से लीप कर खलिहान बनाते हैं। कहीं चारदीवारी से घिरे हुए स्थानों में खलिहान बनाए जाते हैं । खलिहान में शस्य की हिफाजत चोरों से, पशु पक्षियों से, अग्नि से, हवा से, अथवा वर्षा से की जाती है ।

आम के बाग में रबी की फसल का खलिहान रखने से आमों की निगरानी भी होती है। प्राय: खलिहान में गाँव भर की फसलें एकही स्थान में रखी जाती हैं पर यह गाँव

के रिवाज और सुविधा के अनुसार होता है। इसमें कितने ही लाभ हैं।

कटा हुआ शस्य घाम में फैलाया जाता है। इस पर बैल, भैंसे, चलाए जाते हैं जिससे उनके चिरे हुए खुरों के नीचे अनाज दब कर भूस से अलग होता जाता है। फैले हुए शस्य के स्थान को पैरी कहते हैं। बैलों को चलाने को दौंरी हाकना कहते हैं, और इस काम को शस्य का दाँना कहते हैं। जब तक भूसा बारीक नहीं होता दौंरी जारी रहती है। दौंरी में एक साथ अधिक शस्य रखने से उस पर एक साथ अधिक बैल चलाने की अवश्यकता होती है, इस प्रकार जल्दी दाना निकलता है और अच्छा अनाज निकलता है। हाकने में आसानी और मजदूरी में किफायत होती है। कहीं कहीं सुभीते के अनुसार धान के पौधों को तख्ते पर पीट कर धान अलग कर लेते हैं और कहीं कहीं धान पर दौंरी चलाते हैं और पुआल से धान अलग कर लेते हैं। पुआल झगरा की तरह अलग जमा करते हैं। उसे गँडासी से काटकर पशुओं को खिलाते हैं।

गेहूँ, जौ, चना उर्द, मूँग, मटर प्रभृति फसलों का दाना भूसे से अलग कर लेते हैं। यदि भूसा मोटा रह जाता है तो केवल भूस पर दौंरी चला कर उसे महीन करते हैं और पशुओं को खिलाते हैं।

६—ओसाई।

पैरी पर जब शस्य अच्छी तरह से टूट जाते हैं कृषक उन्हें डलियों में भर कर अपने सर की ऊँचाई तक उठा कर दोनों हाथों से हवा के रुख खड़े होकर धीरे धीरे

ओसाई

गिराते हैं। इस क्रिया को ओसाना कहते हैं। हाथ धीरे धीरे हिलाया जाता है जिससे शस्य धरती पर गिरता जाता है। अनाज भूसे से भारी होता है इसलिये वह उसके पैरों के पास गिरता है और भूसा कुछ दूर पर हलका होने के कारण हवा के वेग से गिरता है। ओसाने में हवा के वेग की बड़ी आवश्यकता होती है। जब हवा नहीं चलती कंबल या चादर से दो आदमी सामने हवा करते हैं और उसके सामने तीसरा आदमी शस्य ओसाता है। रबी के शस्यों के लिये चैत्र अथवा फाल्गुन मे ऐसे ही कभी हवा का अभाव हो तो हो, नहीं तो हवा की कमी नहीं रहती। यदि ऐसा होता है तो उसके लिये कल के पंखों से हवा कर सकते हैं अथवा ऊपर कही गई रीति से कंबल से हवा कर लेते है। पैरी पर यदि अनाज से कूड़ा करकट अलग कर दें तो अनाज साफ रहता है।

ओसाई के बाद कुछ लोग अनाज सूप में पछोर कर और बना कर साफ कर के रखते हैं। अधिक अनाजवाले ऐसा नहीं कर सकते। कुछ लोग लाभ के लिये अधिक गर्दा और खराब शस्य मिला लेते है कि तौल भारी हो जाय परंतु इस से भाव खराब हो जाता है।

कटाई, मड़ाई और ओसाई में अनाज की सफाई का विचार रहने से उसके पुनः साधारण अवस्था में साफ करने का न तो रिवाज है और न उसकी आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि अनाज अधिक होता है और सूप से पछोरने की क्रिया में अधिक परिश्रम और समय लगता है।

७—विशेष शस्य।

विशेष शस्य जैसे ऊख की पैदावार को एकत्रित करने की रीतियाँ आवश्यकता के अनुसार होती हैं। कहीं वे चूसने के काम के लिये बाजार में भेजे जाते हैं। कहीं पेर कर

ऊख पेरने का कोल्हू।
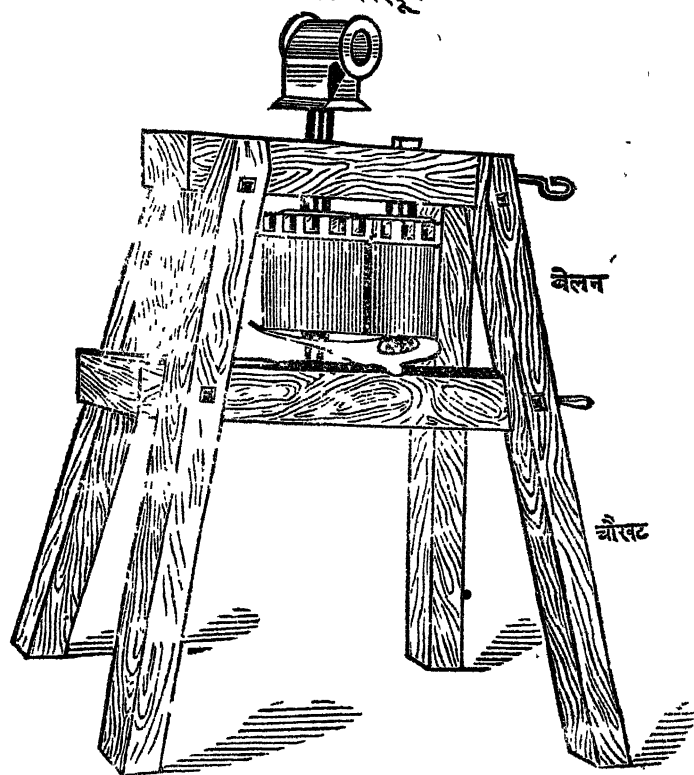
उनसे रस निकालते हैं। रस उबाल कर उससे राब, गुड़ तथा चीनी बनाते हैं।
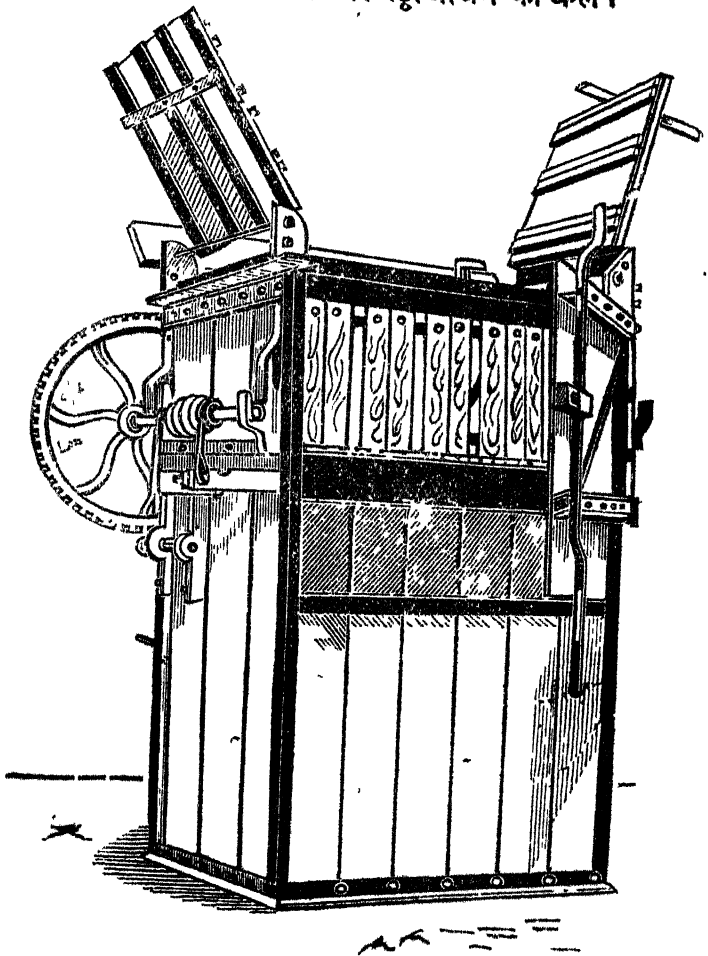
नील की खेती जब से संयुक्त-रंग का प्रचार हुआ बंद हो गई और उसके कारखाने टूट गए। उसके काटने और भिगोने की रीतियाँ विस्तृत हैं।

कपास की फसल हाथों से चुनकर एकत्रित की जाती है। उसके बीज रूई से चर्खी अथवा जिनी (मशानिंग) से अलग किए जाते हैं। तंबाकू की पत्तियाँ नोच कर सुखाई जाती हैं। उन्हें कूट कर अथवा कड़ाही में उबाल कर विविध विधि के अनुसार खाने पीने और सूंघने की तंबाकू बनाते हैं।

सनई के पौधे पानी में दबाए जाते हैं उनको पानी में पीट कर सन अलग कर लेते हैं। फिर कल द्वारा उनके गट्ठे बाँधकर बेचने के लिये भेजे जाते हैं।

पोस्ते की बोंड़ी सूई से पाछी जाती है। उसका रस एकत्रित कर के कच्ची अफयून, अफयून के मोहकमे को दे देना होता है।

सत्रहवाँ परिच्छेद।

ईतियां और उनका निवारण।

फसलों को बोआई से कटाई तक बहुत प्रकार की ईतियों का सामना करना पड़ता है। कुछ ऐसी हैं जिनका कि निवारण स्वयं काश्तकार कर सकता है, कुछ ऐसी हैं जो एक साधारण काश्तकार के हाथों से बाहर है। उनको निवारण करने के लिये कई काश्तकारों को मिल कर उपाय करना पड़ता है। ये ईतियां पशु, पक्षी, कीट, पत्तिंगे, गिरुई लवा प्रभृति होती हैं। व्यवहार से प्रतीत होता है कि जो आपदा जितने ही छोटे स्वरूप में है उससे उतनी ही अधिक हानि पहुँचती है। जहां तक संभव हो जब उनकी तादाद कम हो उसी समय उनसे छुटकारा पाने का इंतजाम करना चाहिए। जब वे बढ़ जाती हैं उनसे बचने का उपाय करना कठिन और मूल्यवान् हो जाता है।

१—पशु ईतियां।

मनुष्य—भुट्टे, फूल, खरबूजे, ककड़ी प्रभृति तरकारियां चोरा लेते हैं। बोता कोई और है चोर जब फसल तैयार हो जाती हैं दूसरे की खेती काट लेते हैं।

पशु—गाय, बैल, भैंस, घोड़े, बकरियां इत्यादि उगते तथा तैयार शस्य में पहुँच कर हानि पहुँचाते हैं। गांवों में प्रति दिन यह सुनने में आता है कि आज उसने मेरे खेत को

चोरा लिया। आज उसके गोरू छूट गए थे। कोई कोई तो यथार्थ में जब सब सो जाते हैं पारी पारी से अपने गोरू चरने को छोड़ देते हैं और बहाना करते हैं कि छूट गए थे। प्रायः चतुर और तेज पशु छोड़े जाते हैं, भद्दे और बोदे पशुओं के पकड़ जाने, चोरी चले जाने का भय रहता है। कभी कभी उन्हें पकड़ कर मवेशीखाने में डाल देते हैं, कहीं चोर बाहर लेजाकर बेंच देते हैं, कहीं कहीं उन्हें मार डालते हैं।

बंदर तथा लंगूर—जहां पर अधिक हैं बोई फसल के बीज बीन बीन कर खा जाते हैं जिससे पौधे जमते ही नहीं। कहीं उगती फसल को नोच डालते हैं। कहीं तैयार फसल लूट लेते हैं।

सूअर और नील गाय—जो खेत जंगली अंचल में हैं उनको जानवरों के झुंड से बड़ी हानि पहुँचती है। सूअर प्रायः रात के समय हमला करते हैं। जड़ें उन्हें रुचिकर होती हैं। उन्हें खोद खोद कर वे खाते हैं और उगी फसलों को पायमाल कर देते हैं। नीलगाय झुंड की झुंड मिल कर फसलें चर लेती हैं और उन्हें रौंद डालती हैं।

हरिन—उगती फसल को अधिक हानि पहुँचाते हैं। वे खेतों को रौंद भी डालते हैं।

सिआर—मकाई के भुट्टे खा जाते हैं। तैयार फसल नोचते हैं, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज प्रभृति तरकारियां खराब कर डालते हैं, ऊख को भी इनसे बड़ी हानि पहुँचती है। दूसरी फसलों को भी इनसे बड़ी हानि पहुँचती है।

खरहा—खरगोश उगती फसल चर लेते हैं और तैयार फसल खा जाते हैं।

साही—आलू, मूंगफली, शकरकंद प्रभृति जड़वाली फसलें खोद कर खा जाती हैं। उगते पौधों तथा पेड़ों को रौंदती हैं। तैयार फसलें और फल खा जाती हैं।

चूहे—खेतों में बस जाते हैं। दूर दूर तक बिल खोदते हैं। तैयार फसलें खा जाते हैं और बहुत सा अनाज या बालियां चुरा कर बिलों में एकत्रित करते हैं।

गिलहरियाँ—पक्के फल तथा तैयार शस्य कुतुर देती हैं। इसी प्रकार विविध प्रकार से अन्य पशु भी हानि पहुँचाते हैं।

२—निवारण।

इन आपदाओं का निवारण रखवारी करने से हो सकता है और प्राय: जब से फसल बोई जाती है पारी पारी कृषक के परिवार के लोग या मजदूरे अपने खेतों की रखवारी करते हैं। दिन भर में वे कई बार खेतों पर ढेलवास लिए घूमते हैं या सन काता करते हैं और खेत की देख भाल करते जाते हैं। रात्रि के समय कोई कोई रखवाली नहीं करते! ऐसे लोग कई आदमी मिलकर एक बूढ़ी औरत या आदमी को नौकर रख देते हैं जो रात भर की घटनाओं का पता रखता है। कुछ लोग स्वयं रखवाली करते हैं और रात में भी एक दो फेरा खेतों का करते हैं। कुछ फसलों की रखवाली के लिये खेतो में मचान बाँधते हैं और ढेलवास लेकर उस पर से

हांक लगाया करते हैं। कुछ फसलों की रखवाली के लिये जब पानी का भय नहीं रहता और सांप बीछी का डर जैसा बरसात में रहता है जाता रहता है तो किसी उचित स्थान पर मंडई डाल कर रखवाली करते हैं।

जानवरों को डराने तथा उन्हें भगा देने के लिये किसी थूनी के सहारे फटा हुआ बांस या टीन का कनस्तर टांग देते हैं। इस में रस्सी लगी रहती है जिसको रखवार मचान पर से खींचते हैं। इसका शोर सुनकर पशु डर जाते हैं और भाग जाते हैं। रखवार हल्ला करते हैं और आग जलाते हैं। खेतों में जहां तहां आदमियों की भद्दी शकलें सरपत बांध कर बनाते हैं और उस पर कंबल ओढ़ाते हैं, या काली हांडी रख देते हैं। अँधेरी रात में एक मंडई से दूसरी मंडई या मचान तक बात चीत भी हुआ करती है। कृषक तंबाकू पीता रहता है और खांसता रहता है। कुछ लोग फसलों के तैय्यार हो जाने पर बड़ी मुस्तैदी से रखवाली करते हैं। वे खेत ही पर भोजन बनाकर खा लेते हैं अथवा उनके घर से कुछ खाने को आ जाता है। ऊँची जाति वाले घर से खा पीकर तब रखवारी करने चलते हैं।

कहीं कहीं कुछ लोगों के पास पुराने ढब की पथरकला रहती है। ऐसी बन्दूकों से पशुओं को भय दिखाने में अच्छी सहायता मिलती है।

चूहों के भगाने के लिये खेतों में तथा उनकी बिलों में पानी भर देने से वे भाग जाते हैं। थोड़े चूहे होते हैं तो एक नीच जाति जिन्हें मुसहर कहते हैं उनको फँसा कर खा जाते हैं।

खेतों की हिफाज़त चहारदीवारी से की जाती है। उसके बनाने का वर्णन ऊपर आ चुका है।

३—पक्षी।

बहुत से पक्षी केवल दाने पर बसर करते हैं। इस प्रकृति के पक्षी कृषि को अधिक हानि पहुँचाते हैं। वे बोए हुए खेतों का दाना चुग लेते हैं, तैय्यार शस्य और फल खा जाते हैं या कुतुर देते हैं, अनाज खा जाते हैं और बालियाँ गिरा देते हैं जैसे तोता और कौवा। रखवार गोफान में ढेला रखकर अथवा हाथ से ढेला फेंक कर चिड़ियों को उड़ा देता है। पक्षियों को उड़ाने के लिये कनस्तर और फटे बाँस से भी शोर मचाते हैं।

कुछ लोग कौवों को डराने के लिये एक मरा हुआ कौवा बांस पर ऊपर लटका देते हैं।

पौधों को हानि पहुँचानेवाले बहुत से कीड़े होते हैं। कुछ पक्षी इन कीड़ों को खा जाते हैं जिससे उनकी तादाद घट जाती है। ऐसे पक्षी कृषकों के मित्र होते हैं। आमिषी पक्षी प्रायः दाने को कम हानि पहुँचाते हैं।

४—कीड़े मकोड़े।

कीड़े मकोड़े अगणित प्रकार के होते हैं। इनका अध्ययन जीवन-शास्त्र के अंतर्गत एक विस्तृत विषय है। कीड़ों मकोड़ों का कृषि से बहुत संबंध है। इनके द्वारा पुष्पों में पराग और गर्भ केसर का संयोग होता है जिससे दाना बनता है। ये कीड़े तथा तितलियाँ फूलों पर रस तथा शहद के लिये बैठती हैं जिससे पराग केसर उनके बदन पर लग जाता है।

जब वे दूसरे फूल पर जाते हैं पराग केसर उन पर गिर जाता है और वह गर्भ केसर तक पहुँच जाता है।

बहुत से कीड़े कृषि को लाभ पहुँचाते हैं। वे अन्य हानिकारक कीड़े मकोड़ों को खा जाते हैं।

बहुत से कीड़े कृषि को हानि पहुँचाते हैं। उनकी पेड़ी में छेद कर देते हैं, उनकी पत्तियाँ, दाना, फूल तथा फल खा जाते हैं जिस से पौधे बढ़ने नहीं पाते और उनकी पैदावार घट जाती है अथवा बिलकुल मर जाती है। जब तक इनकी संख्या कम रहती है इनके साथ युद्ध किया जा सकता है पर जब इनकी संख्या बढ़ जाती है इनका नाश करना कठिन और महँगा हो जाता है।

इनकी क्षति एक कृषिकार के दूर करने से नहीं होती, क्योंकि एक खेत के कीड़े मर जाने पर दूसरे खेत में कीड़े फैल जाते हैं। इनके तथा गिरुई के दूर करने के लिये सब कृषकों के सहमत होने की आवश्यकता है।

छेदा एक प्रकार का कीड़ा है जो मटर, अरहर, चने की फलियों में घुसकर दाना खा जाता है।

अर्ई, ढोला, गिरुई, भुड़िला स्थान स्थान पर छेद करने वाले कीड़ों के नाम हैं। वे बढ़ते हुए पौधों में अंडे देते हैं जिन से कीड़े उत्पन्न हो कर पौधों को हानि पहुँचाते हैं।

बागों में गुलाब प्रभृति वृक्ष तथा खेतों में अधिक तर सरसों लाही और दुवां के खेतों में माहो से बड़ी हानि पहुँचती है। ये छोटे छोटे कीड़े हरे रंग के होते हैं। आलू में छेद कर देनेवाला भुड़िला आलू के पौधों में छेद कर देता
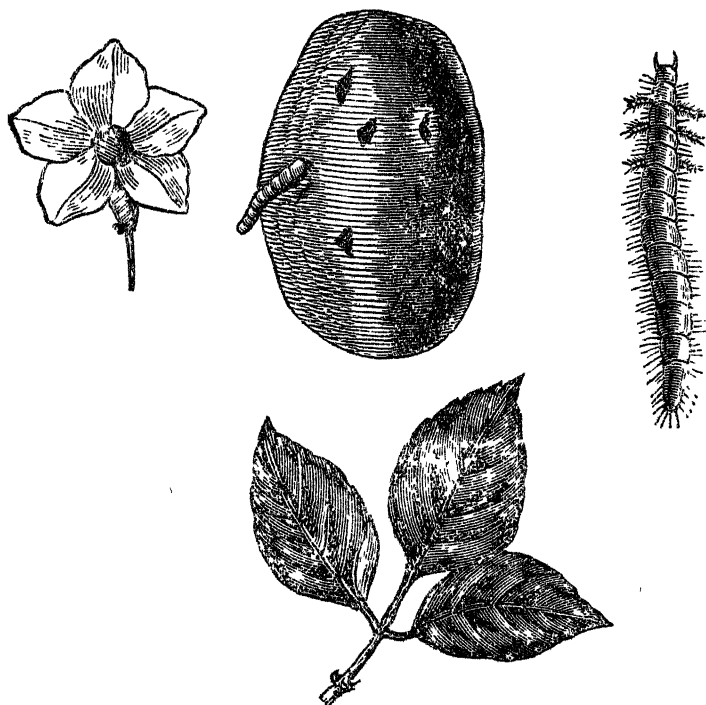
आलू का कीड़ा।

है तथा आलू को जब वे जमा करके रखें जाते हैं खा जाता है। रूई के कीड़े उसके पेड़, रूई, बीज, फल, फूल को हानि पहुँचाते हैं।

५—निवारण।

कीड़े मकोड़े के अंडे नष्ट कर देने चाहिएँ। यह खेतों की गर्मी में फसल कट जाने पर गहरी जोताई करने और

मिट्टी उलट देने से आसानी से हो सकता है। खेतों को जोताई के साथ यदि किसी पौधे की खूँटिया बाकी रहें तो उन्हें निकाल देना चाहिए क्योंकि कीड़े उनपर पलते हैं। और कहीं यदि कोई लकड़ी या खरपतवार हो जिसपर कीड़े के अंडों का भय हो तो उसे जला देना चाहिए।

पौधे के अंशों को जिनपर कीड़ों से हानि पहुँच रही हो निकाल देना चाहिए जिस से कि वे पौधे के अधिक भाग पर दखल न जमा सकें। इस अलग किए हुए अंश को जला देना चाहिए। पौधों पर दवाई छिड़क देने से कीड़े मर जाते हैं। ये दवाइयां अंगरेजी दवाईखानों तथा बागवानी या कृषि संबंधी आवश्यकताएं बेचनेवालों के यहां मिल सकती हैं।

अदल बदल कर फसल बोने से भी कीड़ों से पीछा छूट जाता है।

कुछ कीड़े, पँतगे और गुबरैले रोशनी के पास आते हैं। रात्रि के समय खेत में चिराग रख देने से उसके पास कीड़े जमा होते हैं। एक मिट्टी के बर्तन में पानी भर कर उस में मिट्टी का तेल डाल दो। पानी में पत्थर, ईंट, या भारी लकड़ी की दीवट रख कर उसपर तेज दीपक रखना चाहिए। आग जला देने से कीड़े उस रोशनी में आकर गिरते और स्वयं नष्ट हो जाते हैं।

६—दीमक, टिड्डी, घुन।

दीमक प्राय: निर्जीव वस्तुओं पर नमी के कारण फैल जाती है। पर इन्हीं पर उनका आक्रमण बंद नहीं है। वह गेहूं

जौ, ऊँख, गन्ने, मूंगफली प्रभृति बहुत से पौधों को जब वे खेत में लगे रहते हैं खा जाती है या अन्य स्थान पर हानि पहुँचाती हैं। जहां पर इन का अड्डा हो उसे खोद कर जला देना चाहिए। ताजा गोबर एक स्थान पर रख दिया जाय तो उस पर दीमक एकत्रित होगी। जब वह एकत्रित हो जाय तो उसे तुरंत जला देना चाहिए। इसमें सावधानी इस बात की होनी चाहिए कि अधिक दीमक न फैलने पावें, उन्हें शीघ्रता से नाश कर देना चाहिए और इस बात का पता लगाना चाहिए की दीमकों की रानी कहां है, उसके नाश कर देने से कुल दीमक नष्ट हो जाते हैं।

इन्हें नष्ट करने की दूसरी रीति यह है कि सिंचाई कर दी जाय।

नीम या रेंडी की खली दीमक लगनेवाले खेतों में देनी चाहिए।

जब खेत काटे जांय उनकी जोताई तत्काल कर देना चाहिए और खूंटियां निकाल देनी चाहिए। जब उन्हें भोजन का अवलंब न रहेगा वे नष्ट हो जाँयगी।

टिड्डी—टिड्डी बलुए मैदानों में बढ़ती हैं। राजपूताना और सिंध की ओर से इन का झुंड का झुंड उड़ता है। वे गिनती में इतनी अधिक होती है कि हरियाली का विनाश कर देती हैं। इस से तो देखने में वैसी हानि नहीं मालूम होती पर संयुक्त हानि बहुत ज्यादा होती है। जब इनका आक्रमण होता है टीन के कनस्तर, ढाल, तासे बजाकर हल्ला करने से अथवा आग जलाने से उसका थोड़ा बहुत निवारण हो जाता है।

रेगिस्तानी मैदानों मे जहां ये अंडे देती हैं वहां उनके अंडे नष्ट कर देने चाहिएँ अथवा जब वे अंडे से बाहर निकल कर फुदकने लगे तो उन्हें बोरियों में बटोर कर नष्ट कर देना चाहिए।

घुन—प्रति वर्ष अनाज के व्यापारियों का बहुत सा अन्न घुन खराब कर देते हैं अथवा खा डालते हैं। छोटे छोटे कृषक उनका इतजाम कर लेते है। वे अपना अनाज थोड़ा थोड़ा करके धूप में सुखाते हैं और फटकते हैं। बड़े बड़े व्यापारी जिनके पास अनाज का खत्ता होता है कई बार अनाज नहीं निकाल पैठाल सकते। यदि अनाज घुनने लगता है और उसकी देख भाल नहीं होती तो वह खराब होने लगता है। दाना खोखला होने लगता है और बहुत सा कन्ना निकलता है। वह बोने के बीज के काम का नहीं रहता। खाने में इसमें कडुवापन आजाता है।

अनाज को अच्छी तरह सुखाकर रखने से उसमें घुन नहीं लगता और अगर लगता है तो बहुत कम। इसका सहल और उपयोगी सिद्धांत यही है कि अनाज अच्छी तरह सुखाकर रखा जाय। इसके पश्चात् उसको रखने में सावधानी होनी चाहिए कि उस पर नमी न असर करने पावे। बरसात के दिनों में अनाज न खुलना चाहिए। जहां घुन का भय अधिक रहता है वहां अनाज कई खानों में अथवा कई स्थानों पर रखना चाहिए जिससे यदि एक स्थान पर घुन लगे तो दूसरे स्थान का बचाव हो। यदि खाते पक्के बने हुए हैं तो उन्हें अच्छी तरह से साफ करके उनमें

अनाज भरना चाहिए। कच्चे खातों को खूब लीप पोत और सुखा कर तब उनमें भूसे की तह देकर अनाज रखना चाहिए।

कोठले, कुंड और घड़ों में अनाज रखकर उन्हें बंद कर देना चाहिए अर्थात् मिट्टी की गगरी या हाँडी रख कर मिट्टी से उसको मुँह पर लस देना चाहिए जिससे बाहर से नमी न असर करे।

कीड़े मकोड़ों की रहन सहन आदि का अध्ययन जीवन-शास्त्रवेत्ताओं ने किया है। कृषि संबंधी उनके व्यवहार के अनुसार उनसे अपने शस्य की हिफाजत करने अथवा उन को नष्ट करने की रीतियां जानी गई हैं जिससे कृषक अपनी अवस्था की उन्नति कर सकता है। इस ज्ञान के अनुसार एक सहल रीति यही है कि अनाज खूब सुखाकर रखा जाय। अनाज में यदि घुन लग जाय तो उसको यदि संभव हो तो साफ करके नहीं तो उसी तरह उसके साथ नेपथेलीन रखे अथवा कार्बन बाई सलफाइड के अनाज पर डालने से अनाज की हिफाजत होती है। दोनो दवाएँ अंग्रेजी दवाखानों में मिलती है। कार्बन बाइ सलफाइड को आग या किसी प्रकार की लौ से बचाना चाहिए, नहीं तो वह भभक उठेगी।

७—फंजाई।

बनस्पति संसार में फंजाई एक प्रकार के छोटे श्रेणी के पौधों को कहते हैं। ये अपना भोजन स्वंय नहीं बना सकते वरन दूसरे पौधों द्वारा बनाया हुआ भोजन प्राप्त करते हैं। ये अवसर पाकर किसी दूसरे पौधे पर फैल जाते हैं और उस पौधे का रस चूस लेते हैं। इस प्रकार रस की लूट से

पौधा अपना खाद्य पदार्थ एकत्रित नहीं कर सकता, दाना पोढ़ा नहीं होने पाता और पैदावार की कमी होती है तथा पौधा मुर्झा जाता है। फंजाई बहुत प्रकार के हैं, उनकी रहन सहन भिन्न भिन्न होती है। प्रायः गिरुई या रतवा, और कंडवा से जिस को अधिक हानि पहुँचती है।

ये प्रायः नमी पाकर बढ़ती हैं। बदली का होना इनके बढ़ने में सहायक होता है। ये खेत भर के शस्य पर अपना दखल बहुत जल्द जमा लेने की चेष्टा करती हैं। गेहूं, जौ, तीसी पर जो गिरुई लगती है उसका रंग पीला, लाल अथवा भूरे लाल रंग का होता है। इसकी जीवनचर्या भिन्न है। वह पौधे के सब अंगों पर फैल जाती है जिससे इनकी एकट्ठा हानि बहुत हो जाती है।

जब पौधा तैय्यार हो जाता है एक प्रकार की फंजाई दाने पर आक्रमण करती है जिससे आटा काला हो जाता है। नमी पाकर पौध उगते और बढ़ते दिखाई देते हैं परंतु उनका दाना बिलकुल मारा जाता है। ऐसी फसल के देखने से धोखा हो जाता है कि बढ़ती हुई फस्ल बेकाम है या अच्छी, और जब तक डाली पर नजर न डाली जाय उसकी असली-अत नहीं प्रतीत होती।

फंजाई के बीज बहुत हलके और छोटे होते हैं। ये एक फसल से दूसरी फसल तक पौधे पर अथवा धरती पर पड़े रहते हैं और जब उनके अनुकूल मौसिम होता है, बढ़ निकलते हैं और पौधों को हानि पहुँचाते हैं। इस अवस्था में फसलों के अदल बदल कर बोने से लाभदायक परिणाम

देखे जाते हैं। यदि एक फसल पर कीड़े या फंजाई का आक्रमण हो तो उसके पश्चात् कुछ समय तक ऐसी फसल बोई जाय जिन पर उस प्रकार की फंजाई का असर न पड़े और उनकी वृद्धि न हो। इन ईतियों की जीवनचर्या से विदित होता है कि एक का जीवन दूसरे से भिन्न है। ऐसा देखा गया है कि एक प्रकार के ऊख के बजाय दूसरे प्रकार का ऊख बोया गया तो नए प्रकार के ऊख पर फँजाई का आक्रमण नहीं हुआ। एक प्रकार के गेहू पर प्रति वर्ष गेरुई लगती थी उसी जगह दूसरे प्रकार का गेहूं बोने से उसका आक्रमण नहीं हुआ। ऐसी फसलों का प्रबंध और उन्नति साधारण बात नहीं है। इस का पता लगाना और स्थान और काल के अनुसार उनका प्रबंध करना अनुभव का काम है। इस विषय में स्थानीय फसलें जो कामयाबी से बोई गई हैं उनका पता सरकारी कृषि विभाग में लग सकता है जहां कृषि के विद्वान ऐसी छान बीन किया करते हैं अथवा स्वयं जमींदार उसका अनुभव कर सकते हैं।

८—खर पतवार।

खर पतवार के बीज सभी जगह उत्पन्न हो जाते हैं। यदि कृषक सावधानी से उन्हें न निकाले तो ऐसा होता है कि वे बोई हुई फसल से अधिक वेग से बढ़ते हैं और फसल को दबा लेते हैं। इनकी जड़ मूल से निराई कर देने से इनका निवारण हो सकता है। खेत को साफ करने के लिये इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि उनको फूलने फलने

से पहिले ही खोद कर निकाल दिया जाय ताकि आगामी बार इनके बीज धरती में न गिरने पावें और प्रति वर्ष इनकी कमी होती जाय, जब तक कि ये साफ न हो जाय। यद्यपि यह कठिन है पर सब को उद्योग करना उचित है। फलने पर इनके बीज धरती में गिर जाते हैं और प्रति वर्ष अपने समय पर बढ़ते हैं। बीज हलके होने के कारण वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ जाते हैं अथवा कृषक की लापरवाही से खाद के साथ खेत में आते हैं या पशु ऐसे वनस्पतियों का भोजन करते हैं और उनके गोबर के साथ वे खेत तक पहुँच जाते हैं।

अट्ठारहवां परिच्छेद ।

शस्य ।

कृषि की साधारण रीतियों के वर्णन के उपरांत हम पाठकों को अधिक समय तक एक एक फसल के बोने काटने और उनके संबंध की अन्य क्रियाओं के विशेष वर्णन में नहीं लगाना चाहते। इस कारण विस्तारपूर्वक वर्णन का क्रम छोड़कर नीचे एक तालिका दी जाती है जिस से संक्षेप में हर एक फसल की परिचर्या जो संयुक्त प्रांत में वर्ती जाती है, विदित हो जायगी।

हमने हर एक फसल के लिये विस्तारपूर्वक व्यवस्था लिखी किंतु इस स्थान पर हमें वह फजूल मालूम होती है क्योंकि हर एक फसल के बोने काटने और उन फसलों के संबंध की अन्य क्रियाएँ स्थान स्थान पर मनुष्य की अवस्था के अनुसार भिन्न भिन्न होती हैं। इस अवस्था में केवल संयुक्त प्रांत की कृषि के वर्णन से सब को लाभ नहीं पहुँच सकता, परंतु एक प्रांत की व्यवस्था ज्ञात हो जाने पर अन्य स्थानों की बातों का पता लगाने में सुगमता हो जायगी।

१—तीन फसलें।

फसलें तीन हैं—

खरीफ—अथवा बरसात की फसल। इसे सावनी या अगेटी भी कहते हैं।

रबी—अथवा जाड़े की फसल। इसे चैती भी कहते हैं।

ज़ायद—अथवा गर्मी की फसल इसे जेठ, वैशाख की फसल कहते हैं। इसमें प्रायः ककड़ी खरबूजा चना अथवा बोरो धान बोते हैं।

२—ऋतुचक्र।

बसंत	ग्रीष्म	वर्षा
चैत, वैशाख	जेठ, आषाढ़	स्रावन, भादों
अप्रैल, मई	जून, जुलाई	अगस्त, सितंबर

शरद्	हेमंत	शिशिर
कुवार, कार्तिक	अगहन, पूस	माघ, फागुन
अक्तूबर, नवंबर	दिसंबर, जनवरी	फरवरी, मार्च

एक जोड़ी बैल के लिये ७ से १० बीघा धरती चाहिए। एक एकड़ धरती के लिये १०–१५ घंटा समय लगता है। एक एकड़ निराई या मिट्टी चढ़ाई के लिये १०–१५ आदमी लगते हैं। गेहूं की फसल काटने में १०–१२ आदमी लगते हैं।

नीचे उन चीजों के नाम दिए जाते जो भिन्न भिन्न फसलों में बोई जाती हैं—

३–खरीफ (बरसात)

अनाज—

(१) मकई — Zeamays.

(२) धान — Oryza sativa.

(३) ज्वार — Andronopogon sorghum, sorghum vulgare.

अन्य फसलें—

(२३) शकरकंद	Ipomaea batatas.
(२४) रामदाना	Amaranthus candatus.

४–रबी (जाड़ा)

अनाज—

(१) गेहूं	Triticum sativum.
(२) जौ	Hordeum vulgare.
(३) जई	Avena sativa.

दाल—

(४) चना	Cicer arietinum.
(५) मटर	Pisum arvense.
(६) मसूर	Ervum lens.
(७) केसारी	Lathyrus sativus.

तेलहन—

(८) सरसों	Brassica campestris.
(९) लाही	Brassica juncea.
(१०) दुआं	Eruca sativa.
(११) अलसी	Linum usitatissimum.
(१२) कुसुम, बर्रे	Carthamus tinctorius.

अन्य शस्य—

(१३) पोस्ता	Papaver somniferum.
(१४) तंबाकू देसी	Nicotiana tabacum.
„ कलकतिया	Nicotiana rustica.

(१५) मूली	Raphanus sativus.
(१६) गाजिर	Dancus carota.
(१७) आलू	Salanum tubersum.

५—चारे की फसलें।

(१) लूसर्न

(२) गिन्नी घास

६—विशेष समय की फसलें।

(१) नील	Indigofera tinctoria.
(२) ऊख	Saccharum officinarum.
(३) चेना	Panicum miliaceum.
(४) सिंघाड़ा	Trapa bispinosa.
(५) पान	Piper betle.

७—कछियाना।

(१) बंडा, अरुई	Colocasia indica.
(२) शलजम	Brossica campestris.
(३) प्याज	Allium cepa.
(४) लहसुन	Alium sativum.
(५) जमींकंद	Amorphophallus campanulatus.
(६) गोभी (फूल)	Brassica obracea.
(७) गांठ गोभी	
(८) करमकल्ला (पातगोभी)	
(९) पोदीना	Mentha sylvestris.
(१०) बथुआ	Chenopodium album.

(११) चौराई — Amarantus gangeticus.

(१२) पालक — Spinach.

(१३) पोई — Basella rubra.

(१४) परवल — Trichosanthes disica.

(१५) घिया तरोई — Luffa egyptiaca.

(१६) करेला — Momordica charantia.

(१७) चचींदा — Trichosanthes anguina.

(१८) ककड़ी — Cucumis melo var utilis.

(१९) तरबूज — Citrullus vulgaris.

(२०) खरबूजा — Cucumis melo.

(२१) फूट — Cucumis momordica.

(२२) पेठा — Benincasa cerifera.

(२३) सीताफल — Cucurbita moschata.

(२४) खीरा — Cucumis sativus.

(२५) कद्दू — Lagenaria valgaris.

(२६) बैंगन भांटा — Salanum melongena.

(२७) मरसा, अनारदाना, पोआ — Amarantus paniculatus.

(२८) स्ट्राबेरी — Fragaria vesca.

(२९) विलायती बैंगन — Lycopersicum esculentum.

(३०) भिंडी, रामतरोई — Hibiscus esculentus.

(३१) आरारूट — Maranta arundinacea.

(३२) अद्रक — Zinziber officinale.

(३३) सौंफ

(३४) धनिया Coriandrum sativum.
(३५) हल्दी Curcuma longa.
(३६) लाल मिर्च Capsicum annoum.
(३७) सोवा
(३८) मेथी
(३९) सेम

इन सब फसलों का विशेष ब्योरा आगे दी हुई सारिणी से विदित होगा ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद।

पशुपालन।

भारतवर्ष ऐसे कृषिप्रधान देश में कृषि का कुल बोझा पशुओं पर और उनमें भी अधिकतर गोसतान पर है। भैंसों और ऊंट द्वारा थोड़ी बहुत सहायता मिलती है। हल चलाना, पानी उठाना, अनाज ढोना, अनाज ले जाना, खाद देना इत्यादि सभी काम पशुओं द्वारा होते हैं। इन्हीं का भरोसा है और इन्हीं द्वारा अन्न उपार्जन होता है। इनका पालन करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। इनके साथ कोई अन्याय करना बड़ी कृतघ्नता है।

इनकी नसलकशी का सब जगह उचित ध्यान नहीं दिया जाता। नसलकशी के मुख्य मुख्य स्थान हैं जहां जरूरत के अनुसार पशु मिलते हैं। दूध देनेवाले पशु, गाड़ी खींचनेवाले पशु, हल चलानेवाले पशु अपने अपने विशेष गुणों और आवश्यकता की पूर्ति करने के गुणों के अनुसार चुने जाते हैं। कृषि के लिये सब से अच्छे और जरूरी कामकाजी पशु वे होते हैं जो सख्ती बरदाश्त कर सकें, तेज, मजबूत और मेहनती हों। ऐसे पशु उसी समय उत्पन्न हो सकते हैं, जब उनके माता पिता बलवान् होंगे। इसलिये नसलकशी में इस बात पर मुख्य ध्यान रखना चाहिए।

हर जगह अपनी आवश्यकता के अनुसार पशुओं के न मिलने से कृषि का कारबार ठीक नहीं चलता। बिना अच्छे पशुओं के अच्छा काम नहीं होता।

हर जगह अच्छे पशु नहीं मिलते । ऐसी जगहों में उन्हें बाहर से मँगाना अच्छा होता है ।

सब जगह नसलकशी के लिये सुविधा नहीं होती। इसके लिये चारा पानी आबोहवा आदि आवश्यक हैं । भरपूर भोजन न पाने से पशु बलिष्ठ नहीं होते; इसलिये जहां पशुओं को ये सुविधाएँ हैं वहाँ ही के पशु अच्छे होते हैं ।

१—पशुओं का भोजन ।

काम काजी पशुओं के खरीदने में दाम लगा कर उन्हें बाँध रखना ही कृषक का कर्तव्य नहीं होता, उसे जहाँ तक बन पड़े पशुओं के भोजन का उचित प्रबंध करना चाहिए। भोजन का प्रयोजन यह है कि उससे पेट भरे और बल बढ़े । केवल पेट भर देनेवाले भोजनों में इतनी शक्ति नहीं होती कि वे बल प्रदान करें । इस काम के लिये भोजन में बल प्रदान करने के अंश वर्तमान होने आवश्यक हैं ।

पशु प्राणी भी उन्हीं पदार्थों से बना हुआ है जिनसे कि पौधे बने हैं, परंतु वह उन्हीं पदार्थों को जिन्हें पौधे भोजन के लिये प्रयोग करते हैं, खा पीकर नहीं रह सकता । वह उन्हीं पदार्थों को दूसरे रूप में अपने भोजन के काम में लाता है जो कि अधिकांश पौधों के अंश होते हैं।

पौधों के अंश में अधिक तत्व दाने में होता है । उसके भूसे और करबी में भी पौधों के अनुसार थोड़ा बहुत तत्व रहता है । भोजन की आवश्यकता पूर्ण करने के लिये पशु में बल और मांस उत्पन्न करने के लिये उसको पूर्ण तत्व का भोजन

देना उचित है। केवल करबी और पुवाल में बल देनेवाले बहुत ही कम तत्व हैं। इससे पशु जीवित रहते हैं पर अच्छा काम नहीं कर सकते।

जहां अच्छे पशु हैं वहां के कृषक धनवान हैं। उनके पास अधिक धरती होती है जिसमें से कुछ भाग में वे अपने पशुओं के लिये चारा पैदा करते हैं। परंतु वे कृषक जिनके पास धरती कम है अपने और अपने कुटुंबियों के लिये काफी अन्न उत्पन्न करने में व्यग्र रहते हैं जिससे वे और उनके पशु दरिद्र बने रहते हैं।

पशुओं को चारा, दाना, बिनौला, खली और नमक का देना उचित है। खली को कूटकर पानी में भिगो देना चाहिए। जाड़े में आठ घंटे के लगभग और गर्मी में ४ घंटे के लगभग खली भीगी रहनी चाहिए। बिनौले कूटकर तथा दाना दल कर देना अच्छा है। प्रति सानी नमक और तेल का देना पशुओं को बलवान बनाता है। हरा चारा देने से पशु रूचि से भोजन करते हैं और उनमें अधिक बल आता है। हरा चारा दूध देनेवाले पशुओं को देना अच्छा फल देता है।

सरसों, तीसी, लाही, दुवां, तिल, कुसुम की खली अच्छी होती हैं। चोकर, चूनी, भूसी, दाना के साथ या उसके बजाय इस्तेमाल होती हैं।

सुबह और शाम, तथा काम करने के पहले और पश्चात् भोजन देना चाहिए। मनुष्यों पर अकाल पड़ने से पशुओं के चारे की कमी दुस्सह दुख देती है। खराब और कम भोजन

पानेवाले पशुओं में अधिक बीमारी फैलने का भय रहता है। जमींदारों को ऐसी दुर्घटना के लिये चारा एकत्रित करना चाहिए। सरकार की ओर से तथा बहुत से उदार धर्मात्मा सेठों और धनवानों से अकसर इसमें सहायता मिला करती है।

२—पानी।

पशुओं को साफ पानी देना चाहिए। जो पानी कृषक स्वय न व्यहार कर सके उसे पशुओं को न देना चाहिए। प्राय: पानी की कमी नहीं होती, काहिली और लापरवाही के कारण पशुओं को खराब पानी का कष्ट भुगतना पड़ता है।

वस्ती के पास के गँदले गढहों का पानी कदापि न देना चाहिए। जहां पोखरे, नहरें, नदी या अन्य शुद्ध जलाशय नहीं हैं वहां कुएँ से पानी पिलाना चाहिए। खराब पानी से पशुओं की तंदुरुस्ती खराब हो जाती है और उन पर बीमारी जल्दी असर करती है। पशुओं को नियत समय पर दिन में २-३ बार पानी पिलाना चाहिए।

३—रहन-सहन।

पशुओं से काम लेने के साथ साथ हमारा यह कर्तव्य भी है कि हम उन की हिफाजत करें। गर्मी और जाड़े की कठिनाइयों से उन्हें बचावें, बरसात में पानी के झोंकों से उनकी रक्षा करें। अच्छे और कीमती पशुओं की हिफाजत तो थोड़ी बहुत की जाती है पर सब जीवों पर दया रखना उचित है। अच्छी तरह पशुओं को रखने से उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है। वे बलवान बने रहते हैं और अधिक काम करते हैं। पर कठिनाइयों का सामना करने से उनकी हिम्मत टूट जाती है और वे कमजोर हो

जाते हैं, अधिक काम नहीं कर सकते। अच्छी रहन सहन के लिये साफदार हवादार मकान बनाने की आवश्यकता पड़ती है। पशुओं को बिछावन और ओढ़न दिया जाता है और यथा संभव अवस्था के अनुसार उनकी अन्य आवश्यकताएँ पूरी की जाती हैं।

जैसे मनुष्यों को कसरत की आवश्यकता स्वास्थ्य कायम रखने के निमित होती है वैसेही पशुओं को भी होती है। जब पशु काम में न हों उन्हें एक ही स्थान पर खूंटा सेने को न बाँधना चाहिए। उनके चरने और डोलने फिरने का बंदोबस्त होना उचित है।

४—बीमारियाँ।

अच्छी रीति से रखे गए, खिलाए पिलाए पशुओं को साधारणतः बीमारियाँ कम होती हैं। इनके विपरीत दशा होने पर पशु बीमार होते हैं परंतु यह कोई नियम नहीं है। कोई बीमार हो सकता है और अच्छा हो सकता है या मर जा सकता है। जहां तक शीघ्र मुमकिन हो बीमारियों का इलाज करना उचित है। साधारण बीमारियों का इलाज सुगमता से हो सकता है।

पशुओं में वबाई बीमारियाँ फैल जाने से कुल के कुल पशु एक ही बार या एक या दो बार कर के मर जाते हैं जिस से कृषिकार की बड़ी क्षति होती है। कभी कभी तो वह पुनः पशु खरीद न सकने के कारण खेती छोड़ देता है। इन बीमारियों के फैलने के निम्नलिखित मुख्य कारण हैं। उनसे बचने का उचित उपाय करना चाहिए। ऐसा करने से प्रायः देखा गया है कि पशु बच जाते हैं।

जब बवा फैलती है हर प्रकार से बीमार पशु को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए। उनके संबंध से, उनका जूठा चारा खाने से, उनका पानी पीने से तथा उनकी जूठी चरनी में खाने से, उनकी काठी या पगहा या रस्सी इस्तेमाल करने से यह रोग हैजे के समान छूत से लग जाता है।

एकही आदमी दोनों प्रकार के पशुओं से संबंध रखता है तो भी वह बीमारी फैलाता है। कुत्तों के इधर उधर आने जाने से बीमारी लग जाती है।

सड़क के किनारे हवा के रुख पशुओं को बाँधने से किसी बीमार पशु की बीमारी उसे लग जाती है।

बीमार मवेशियों के छुए नाल से या जिस औजार से उनके नाखून काटे गए हों उनके छू जाने से भी बीमारी लग जाती है।

मरे पशुओं के मवाद या उनके चमड़े के संसर्ग से भी बीमारी फैल जाती है। सारांश यह कि किसी प्रकार की असावधानी से यदि बीमार और स्वस्थ पशुओं का संबंध हो तो पशुओं में वबा फैल जाने का भय होता है। इस अवस्था के अनुसार चमारों को चमड़ा देना मुजिर है। इससे अच्छी एक तजुरबे की बात यह मालूम हुई है कि पशु को कुल मवाद के साथ जला देवे और जहां वह रहा हो साफ करके कई दफे आग सुलगा कर सफाई कर दे। यदि ईंधन न मिले तो छः फुट गहरे गड़हे में पशु की लाश गाड़ दे और ऊपर से चूना देकर डेढ़ फुट मिट्टी से पाट दे। किसी अभागे आदमी की नीयत चमड़े की ओर न डोले और उससे बीमारी का भय न उत्पन्न हो, इसलिये उचित है कि चमड़ा चाकू से काट कर खराब कर

दिया जाय। इस रीति से चमड़ा जल्दी गल जाता है और भय भी छूट जाता है।

"अलग रखने" के अतिरिक्त कोई साधारण बिना दाम का उपाय इन बीमारियों से बचने का नहीं मालूम है और चतुर कृषक हर अवसर पर अलग रखने के विचार का पालन करते हैं।

कृषि-विज्ञान के चमत्कार के उदय के साथ टीका लगाने की रीति प्रचलित करके प्रजावत्सल सरकार ने बड़ा उपकार किया है। मवेशियों को टीका लगाने से उनकी उतनी ही रक्षा हो जाती है जैसे मनुष्य की चेचक के टीका से। टीका लगाने में कुछ व्यय भी नहीं है। कृषि विभाग के अधीन तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के अधीन सरकारी पशु अस्पताल के शालिहोत्री मुफ्त टीका देकर कृषकों का बड़ा उपकार करते हैं। नई रीति होने के कारण इसके प्रतिकूल कुछ घृणा और तास्सुब है, जो ज्ञान के प्रकाश से नष्ट होता जाता है।

५—गोशाला।

कृषि का एक मुख्य अंग गोशाला है। दूध, दही, घी, मक्खन, केसीन, क्रीम इत्यादि दूध से अनेक अमृत तुल्य दुर्लभ पदार्थ तैयार होते हैं। उनसे उपयोगी और लाभकारी पदार्थ उत्पन्न होते हैं। यह एक अलग ही विषय है जिसके सूक्ष्म रूप से यहां वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है।

६—पशु-पालन।

अच्छी कृषि के लिये अच्छे पशुओं का उत्पन्न करना अत्यंत आवश्यक है। यह पशुपालन के उद्देश्य के अनुसार पहला उपकारी, आवश्यक और लाभकारी विषय है।

हमारे देश में प्राय: गोवंश की वृद्धि और उन्हीं के आश्रित खेती पर ध्यान दिया गया है। इनसे हमारी कृषि का विशेषत: कुछ काम चलता है। कहीं कहीं भैंसे से कुछ सहायता मिलती है। भैंसे दूध देती हैं और भैंसा गाड़ी हल खींचते हैं, बोझा ढोते हैं तथा अन्य प्रकार से उपयोगी सिद्ध होते हैं। उनके भोजन और रहन सहन का उचित प्रबंध करना दूसरा आवश्यक विषय है।

जिन्हें इस बात पर विचार नहीं है वे मुर्गी पालते, उनके अंडे तथा बच्चे खाने के लिये बेंचते और लाभ उठाते हैं। वे भेंड़ बकरियों को भी खाने के निमित्त तैयार करते हैं। भेंड़ बकरियों को वे दूध, ऊन और खाद के उद्देश्य से भी पालते हैं। मुर्गी और तीतर इत्यादि पक्षी फसल के कीड़ों को खा जाते हैं। उनकी बीट से खाद मिलती है।

७—चारा और उसका प्रबंध।

पशुओं को चैत से जेठ तक रबी की फसलों से भूसा मिलता है। कोई कोई साल भर के लिये भूसे का प्रबंध कर लेते हैं। चैत में भूसा सस्ता मिलता है, आषाढ़ से भादों तक बरसाती घास और करबी पर गुजीरा किया जाता है। पानी बरसने के कारण भूसे के अभाव में यदि घास न मिल सकी तो गीली धरती और बरसते पानी में घास करना बड़ा कठिन होजाता है। करबी या हरी ज्वार सब काश्तकारों के पास काफी नहीं होती जिससे कठिनाई झेलनी पड़ती है। काफी भूसा जैसे जौ, गेहूँ, चना, मटर, केसारी इत्यादि का

रख लेनेवाले निश्चिंत रहते हैं। हरे चारे के लिये कुछ हिस्सा अगैती चरी बो देने से कठिनाई मिट जाती है। कुवार से जब तक नया भूसा नहीं हो जाता खरीफ के घटिया शस्यों के लकड़े और पुवाल पर तथा भदई दाल के भूसे पर पशुओं को अवलंबित होना पड़ता है। हरी घास भी इस समय मुश्किल से मिलती है। ऐसे समय के लिये जब फसलें कटती हैं भूसा और करबी लेकर रख छोड़नी चाहिएँ। बरसात में उगी हुई बहुत सी खिलाने लायक घास सुखा कर साल भर के खर्च के लिये रख छोड़ना चाहिएँ। चारे के लिये लूसर्न एक अच्छी घास है जिसकी खेती से साल भर बराबर चारा मिलता है। बरसात में इसकी कटाई छोड़ दी जाती है। उस समय अन्य चारे भी मिल सकते हैं। बोआई भादों के अंत तक होती है। यह अत्यंत बलदायक और पुष्ट चारा है। मूँगफली के बोनेवाले भी अच्छे समय पर चारा पा जाते हैं जिससे उनके पशुओं का काम चलता है। सब से अच्छी बात चारे का रखना होता है।

चारा काटने के लिये खुरपी, हँसिया और गँड़ासी का इस्तेमाल किया जाता है। गँड़ासी से चारा छोटे छोटे टुकड़ों में काटा जाता है। जिनके पास अधिक पशु होते हैं उनके लिये दो चार आदमी गँड़ासी से चारा मारते हैं। ऐसी दशा में जिनके पास अधिक बैल गाय भैंसे हों, अथवा कई आदमी मिल कर कुट्टी काटने की मशीन मोल ले लेवें तो उनके समय और मेहनत में बचत हो जायगी। इसकी कीमत लगभग ४०) के है।

चारा काटने की मेशीन।
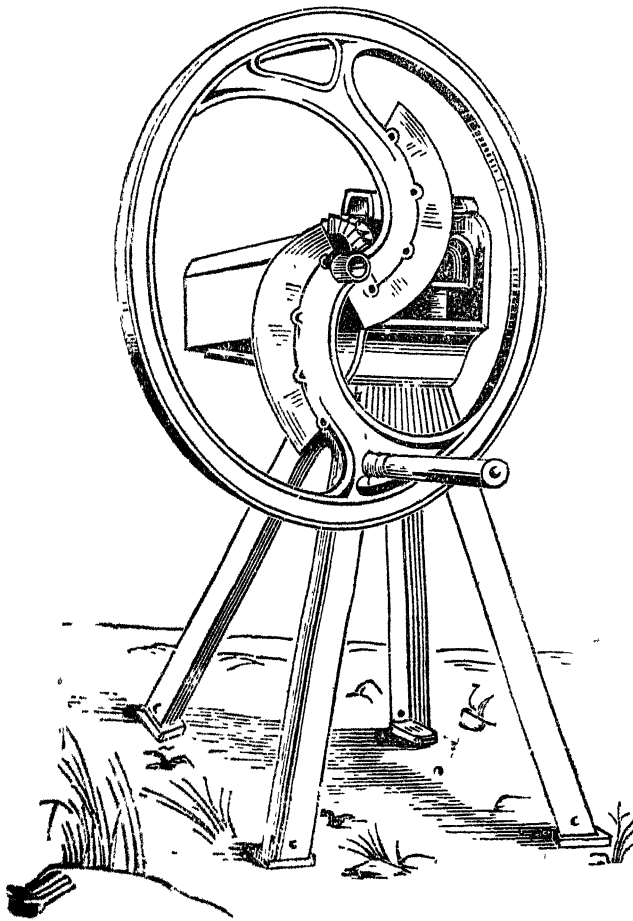
बीसवां परिच्छेद ।

कृषि-चमत्कार ।

पाश्चात्य और पाताल लोक में कृषि की अद्भुत उन्नति का हाल सुन कर एक हैरत उत्पन्न होती है । आज दिन तक अनेक विद्वानों ने कृषि में अद्भुत उन्नति की है । उन्होंने वनस्पति और रसायन विद्या में पारदर्शित विद्वता से नवीन चमत्कार दिखाया है और उसमें वे बराबर उन्नति करते जा रहे हैं । हमारे कृषिप्रधान देश में इन विद्वानों के स्थान पर लुटावन पासी और जोखू भर अपने टुटहूँ टूँ की राग अपने ठाकुर शहजोर सिंह के साथ अलाप रहे हैं । किसी को हल की मुठिया काट रही है, कोई खाद की बदबू से नाक दबाए है, कोई खेती को गँवारों का पेशा बतलाता है । किसी प्रकार जोई नहीं सोई सही कुछ खेतों में पबार दिया जाता है, न तो हल है न बैल, और न तो बीज मिलता है । खेती की उन्नति की कौन कहे। यदि एक फसल में हल है तो एक बैल है, दूसरी में बैल नहीं, पुनः बैल है तो बीज नहीं यह हमारी दशा है ।

ठाकुर साहब की खेती प्रायः उनके नौकरों के बुरे या अच्छे होने के अनुसार बदलती रहती है । अधिकांश मजदूर गँवार, अनपढ़, और विद्याहीन होते हैं ।

ठाकुर साहब मोकद्दमेबाजी में अपनी संपत्ति को नष्ट करने, उसमें अनेक दाँव पेंच लगाने और उसके साथ स्वयं

फँसते जाने में मकड़ी की जाले में फँसी हुई मक्खी के समान हो जाते हैं। वे अपनी गिरवीं को छोड़ाने के लिये फड़फड़ाया करते हैं। निज प्राप्त धन के महत्व को भूलकर वे पैत्रिक अथवा अकस्मात प्राप्त धन की आकांक्षा म लगे रहते हैं।

वे अपने मजदूरों का भी उचित प्रबंध नहीं कर सकते; न तो उनके रहने को मकान बनवा सकते हैं, न उनकी दरिद्रता दूर करने की चेष्टा करते हैं। यदि क्रोधित हुए तो उनका मकान भले ही उजाड़ने चलते हैं।

इन गृह कलहों और जंजालों के परे जहां स्वतंत्रता का मार्ग है वहां उन्नति की चाट है। वहां आलस्य का नाम नहीं है, समय नष्ट करने को कौन कहे एक समय में कितना ही कार्य संचित किया जाता है! रात दिन लोग किसी आदर्श शिखर की ओर निश्चित मार्ग से जाने की चेष्टा में लौलीन दिखाई देते हैं। विज्ञान के उच्च शिखर पर भी वे इसी प्रकार चढ़ते दिखाई देते हैं। रेल, जहाज बेतार की तारबर्की, टेलीफोन, टेलीग्राफ, व्योमयान, ग्रामोफोन इत्यादि विज्ञान कला कौशल के अद्भुत नमूने हैं। ये एक ही दिन में नहीं बने; एक ने उसका रूप खड़ा किया, दूसरे ने उसमें कुछ जोड़ा घटाया, क्रमशः निर्माण में उन्नति होती गई और उनका सफल स्वरूप खड़ा होगया। आज दिन इतने पर भी वे लोग अपने को बिलकुल परिपूर्ण नहीं समझते, और उनके विद्वान अपने अनुभव से अधिक उन्नति और कमाल दिखलाने की चेष्टा में अपना

सर टकराया करते हैं और मनुष्य के जीवन के प्रत्येक विभाग में उन्नति करने की चेष्टा में पड़े हैं।

कृषि भी इस से वंचित नहीं है। चाहे फोनोग्राफ की मधुर ध्वनि के बिना सुने मनुष्य भले रह सकता है पर बिना भोजन पाए कोई भी नहीं रह सकता। इस बात को संसार मे सभी जानते हैं और उसका अनुभव करते हैं। कितने ही विद्वानों ने अपना समस्त समय इस ओर लगा दिया है और मनुष्य के कल्याण की कितनी उन्नति की है।

लूथर वरबैंक नामी अमरीकन विद्वान ने छोटे फलों और फूलों को बहुत बड़ा और मीठा उत्पन्न कर के उनकी रीति दिखा दी है। जो जामुन और बेर झरबरी के समान होते थे उन्हें छोटे अमरूत के बराबर तक उसने उत्पन्न कर के दिखाया है। इसी प्रकार बनस्पति विज्ञानवेताओं ने बिना बीज के फल उत्पन्न किए हैं। कांटेदार और बिना कांटे के पौधे फल फूल उत्पन्न करते हैं। अधिक मीठा और स्वादिष्ट फल पैदा करते हैं। बिना भूसी का जौ, पाले से बचनेवाला गेहूं, तीन प्रकार की अरहर, बिना रोग की कपास हमारे देश में कृषिमार्तंड कृषि विज्ञानवेत्ताओं ने उत्पन्न की है जो प्रजावत्सल गवर्नमेंट के कृषि विभाग के उद्यमों का नतीजा है। यह प्रति दिन तरक्की कर रहा है और कृषकों का लाभ पहुँचा रहा है।

कोई समय था जब शक्कर केवल ऊँख से उत्पन्न होती थी। ऊख अधिकांश गर्म मुल्कों ही में होता था। जर्मनी के लोगों को एक साल शक्कर नहीं के बराबर मिली। वहां की सरकार ने अपने कृषिवेत्ता विद्वानों से यह प्रश्न पूछा—क्या शक्कर

ऊख के अतिरिक्त और किसी चीज़ से नहीं उत्पन्न कर सकते? इस पर वहां के धुरंधरों ने अनेक कष्ट उठाए और बहुत प्रयोग करने पर चुकंदर से शक्कर निकालने की ठानी और उसमें वे कामयाब हुए और आज सैकड़ों मन चुकंदर की शक्कर उत्पन्न होती है।

किसी समय भारतवर्ष में नील की बहुत खेती होती थी जिस से बहुत द्रव्य उपार्जन होता था। वैज्ञानिकों ने बनावटी नील का रंग उत्पन्न कर के ऐसा नील दिया कि बड़े बड़े कारखाने नष्ट होगए। ऐसा ही प्रयोग आटे से रासायानिक क्रियाओं द्वारा शक्कर बनाने में किया जा रहा है। क्या जाने ये क्रियाएँ फलीभूत होजायँ और आटे से शक्कर बनने लगे तो जो दशा नील की हुई वही ऊख की हो। क्योंकि रासायनिक क्रियाओं के योग वियोग से जो वस्तु तत्काल तैयार होती है उसके आगे महीनों कृषि कर्मों में परिश्रम करके वह वस्तु उत्पन्न कराई जाती है। ऐसी अवस्था में जब कृषि में ऐसी उन्नति हो कि रसायन शास्त्र से मोकबला कर सके तो काम चले।

कृषि-शास्त्र के वैज्ञानिक सिद्धांतों से यह सिद्ध हो गया है कि यदि किसी मनुष्य को लाभ का ध्यान न हो और उसके पास प्रयोग करने को काफी धन हो तो वह जिस शस्य को जहां और जिस समय चाहे बोकर इच्छित फल प्राप्त कर सकता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह बात असंभव नहीं है; इसको केवल व्यवहारिक रूप में लाने की आवश्यकता है।

जब यह मालूम होता है कि किसी वस्तु की मांग है तो उसे बोने से अधिक लाभ होता है। यदि ऐसी वस्तु साधारण समय से कुछ पहले प्राप्त हो जाय तो और भी अधिक दाम मिलते हैं। हमारे देश में मटर की फली, गोभी, मकई के भुट्टे बेर इत्यादि फल इसके उदाहरण हैं। अधिक लगान पर खेत लेकर लोग इन्हें बोने का प्रबंध करते हैं। सुनते हैं इंग्लैंड में दूर से इच्छित खाने की चीजें ले जाने के लिये बरफिस्तानी जहाज और रेलें बनी हुई हैं। कितने फ्रांस से बहुत सी वस्तुएँ लाया ले जाया करते हैं। आस्ट्रेलिया, अमेरिका और हिंदुस्तान तक से दूध, गोश्त, मक्खन, क्रीम, अंडे इत्यादि ले जाते हैं। इन जहाजों में वैज्ञानिक रीति से पदार्थों को संचित करने का प्रबंध रहता है जिससे बिगड़नेवाले पदार्थ भी खराब होने से बचे रहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि कृषिकार अपने पदार्थ युक्ति द्वारा दूर दूर भी भेज कर लाभ उठा सकते हैं और अपने रुपए का मूल और सूद समझ कर लाभ कर लेते हैं। इन्हीं प्रबंधों से गरम देश में उगने वाले पौधे फल फूल शीशे के मकानों में बोए जाते हैं, उनमें कृत्रिम रूप से भाफ की गरमी पहुँचाई जाती है और समयानुसार इच्छित फल प्राप्त किए जाते हैं। इसी प्रकार कृत्रिम झील झरने तालाब बना कर उनके ऊपर सर्द मुल्क के पौधे उत्पन्न करते हैं।

हमारे देश में बहुत सी उपयोगी वस्तुएँ उनका प्रयोग न जानने के कारण निष्फल फेंक दी जाती हैं अथवा उनसे सब से अधिक लाभ नहीं उठाया जाता। ऊख को लीजिए।

योरपवाले ऊँख की चीनी लेने के उपरांत उसके बचे शीरे से शराब बनाते हैं जिससे चीनी से किसी प्रकार कम रुपया नहीं उत्पन्न होता। साधारण आलू की फसल का हाल सुनिए। आलू से माँडा निकाल कर उससे कलफ करते हैं। आलू से शराब, स्पिरिट भी बनाते हैं जो मोटरकार और चूल्हों के जलाने के काम मे आती हैं। आलू से पशुओं के लिये भोजन बनाते हैं। दूध से प्राप्त केसीन पदार्थ से इसी प्रकार हाथी-दांत के तुल्य छाते की मूठें वा तशतरियों की पालिश इत्यादि तैयार होती है। आस्ट्रेलिया के एक विद्वान बालसिली जो बिजुली और बेतार की तारबर्की का प्रतिष्ठित पंडित है यथेच्छ कृत्रिम वर्षा करने का प्रयोग कर रहा है। उसकी युक्ति को कई विद्वानों ने युक्तिसंगत और कार्यकर बताया है जिससे कि आस्ट्रेलियन सरकार ने इस आविष्कार की उपयोगिता की विशेष रूप से परीक्षा करने के लिये आज्ञा और सहायता दी है। यदि यह आविष्कार यथार्थ मे सफलीभूत हो गया तो आस्ट्रेलिया और अफ्रीका के रेगिस्तानी भाग किसी समय हरे भरे हो जायँगे।

जिस समय अधिक शीत पड़ता है प्राय: पाले का भय होता है। यदि आकाश साफ हुआ, हवा बंद हो गई और शीत बढ़ता गया तो अवश्य पाला पड़ जाता है, महीनों की कमाई व्यय और परिश्रम पर पानी फिर जाता है और पाला पड़ जाने से शस्य खराब हो जाते हैं। अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि यदि घना धूआं कृत्रिम रूप से शस्य के ऊपर फैला दिया जाय तो पाला निवारण हो जाता है। इस अनुभव के

अनुसार कई प्रकार की आतशबाजियां बनाई गई हैं जिनके द्वारा धूआँ उत्पन्न करके पाले का निवारण करके शस्य बचा लेते हैं।

ऐसे ही अनेक उपायों के द्वारा कृषिकार अपने अनुकूल क्रियाओं का प्रयोग करता है। अनेक व्यय और मेहनत बचाने वाली मशीनों द्वारा खेत जोते, बोए और काटे जाते हैं, पानी और दवाएँ छिड़की जाती हैं, चारा काटा जाता है और शस्य एकत्रित किए जाते हैं।

भारतवर्ष में उत्तम कृषि का मुख्य कारण अच्छा बीज बहुत खराब हो गया है। उसके एकत्रित करने का सुप्रबंध होना अति आवश्यक है। अन्य देशों में केवल बीज बेचने के लिये बीज-शालाएँ स्थापित हैं जो अच्छा और निर्दोषित बलिष्ट बीज उत्पन्न करके और जाँच करके बेचती हैं। लाखों मन बीज हर साल बिकता है। यदि वे अच्छा बीज नहीं उत्पन्न कर सकते तो दूसरे स्थान से मँगा कर बोते हैं। यह एक उत्तम व्यवसाय है जिसको शिक्षित लोग उठा सकते हैं।

दूसरा अभाव अच्छे बैल प्राप्त करने का है। उसके लिये पशुशालाएँ और पशु-चिकित्सालय स्थापित होना अत्यंत आवश्यक है।

कृषि के लिये रुपए की आवश्यकता पूर्ण करने के निमित्त सहकारी बंकों का होना लाभदायक है। भारतवर्ष की दशा सुधारने और जमींदारों और काश्तकारों को सहायता देने के लिये कृषि-संरक्षक प्रजा-पालक सरकार ने कृषि विभाग कायम किया है जो एक अत्यंत दीर्घदर्शी और अनुभवी डायरेक्टर के संचालन में काम करता है। डाइरेक्टर कानून बनानेवाली

कौंसिल का मेंबर होता है और पास होनेवाले कानूनों पर राय देता है।

डायरेक्टर के अधीन कृषिवेत्ता विद्वान काम करते हैं और प्रजावर्ग को बिना किसी प्रकार की फीस या और कुछ लिए कृषि-कर्म्मों में घर बैठे सहायता देते हैं। कृषि विभाग के संबंध में प्रति सूबे में एक एक बड़े विद्यालय स्थापित हैं जिनमें छात्रों को कृषि की ऊँचा शिक्षा दी जाती है। भारतवर्ष में इस समय कानपुर, लायरपुर (पंजाब), पूना (बंबई), नागपुर (मध्यप्रदेश) तथा कोयंबटोर (मदरास), में ऐसे विद्यालय हैं। पूसा (बंगाल) में एक बहुत बड़ा कृषि कार्यालय बना हुआ है जहां धुरंधर कृषि विज्ञानवेत्ता कृषि को उन्नति देनेवाली बातों की छान बीन किया करते हैं।

जमींदार और कृषिकार जो कृषि-संबंधी उन्नति करना चाहते हों, अथवा जिन्हें अपने कार्य में कुछ कठिनाई हो वे कृषि विभाग से सहायता ले सकते हैं। एक पत्र लिख डांक द्वारा भेज देने से घर बैठे उसका उत्तर मिल जायगा। यदि किसी अफसर के भेजने की आवश्यकता होगी तो कृषि-विभाग कोई अफसर भेज कर जमींदार तथा कृषिकार की कठिनाई दूर कर देगा।

कृषि के ऊपर जो कुछ हमने लिखा है पाठकों को उसी पर संतोष न करना चाहिए। यह एक बहुत व्यापक विषय है। केवल पुस्तकों के पढ़ने से सब कुछ नहीं हो सकता। जहां आंखें खोल कर देखने की आवश्यकता है वहां आंखों से देखें, जहां हाथों की जरूरत हैं वहां हाथों से काम करें और अपने

लिये स्वयम् अनुभव प्राप्त करें। यदि किसी को कृषि का चमत्कार और इस विज्ञान की महिमा देखनी हो तो वह अपने जिले के सरकारी प्रयोगालय को देखे अथवा किसी कृषि महाविद्यालय में जाय। उसको वहां के कर्मचारी बड़े सत्कार से सब बातें दिखावेंगे और बतलावेंगे।

हम सौभाग्य से एक संगठित और स्थापित राज्य में रहते हैं जहां कहने सुनने और करने का अवसर हमें प्राप्त है। हमें अपनी योग्यता से अपनी उन्नति करनी चाहिए।

यह समय एक साथ मिलकर काम करने का है। दूसरे देशों में सहयोगी धंधों ने बड़ी उन्नति की है और वे करते चले जा रहे हैं। हमारे देश में भी सहकारी कृषि बंकों ने यह सिद्ध कर दिया है। उनकी सहायता से व्यापारी नियमों के अनुसार हमें अच्छा बीज उत्पन्न करने के लिये कृषिशालाएँ; दूध, दही और पशुपालन के लिये पशुशालाएँ; पशुओं के बीमा के लिये पशु बीमा कंपनी, रुपया का लेन देन करने के लिये सहकारी बंक, अनाज बेचने के लिये आढ़तें इत्यादि आवश्यक धंधों पर ध्यान देना चाहिए जिससे उद्योगी धंधों की उन्नति हो और हमारा देश सब प्रकार से संपन्न और सुखी हो।

परिशिष्ट ।

नाप ।

कृषक को अपने खेतों को नापने की आवश्यकता पड़ती है। इस देश में स्थान स्थान पर नाप बदलते देख पड़ते हैं। अंग्रेजी नाप जो जारी है उसके पैमाने हम नीचे लिखते हैं। नापने का विषय सरवे के अधीन है और उसका वर्णन हमारे विषय से परे है। परंतु साधारण ज्ञान के लिये हम कुछ पैमाने नीचे लिख देते हैं—

३ जौ या एक पैसे की लंबाई करीब एक इंच के होती है।

१२ इंच का एक फुट।

लंबाई के पैमाने।

३ फुट = १ गज ५½ गज = १ पोल

४० पोल या २२० गज = १ फरलांग

८ फरलांग या १७६० गज = १ मील

देशी पैमाने।

८ जौ = एक अंगुल	३ अंगुल = एक गिरह
८ गिरह = एक हाथ	२ हाथ = एक गज
१½ फुट = एक हाथ	१८ इंच = एक हाथ
२ बालिश्त = एक हाथ	४ अंगुल = एक मुट्ठी

३ मुट्ठी = एक बालिश्त

धरती नापने के अंग्रेजी पैमाने ।

७·९२ इंच = १ कड़ी
१०० कड़ी = १ जरीब गंटरी
४ पोल = ,,
२२ गज = ,,
१० जरीब = १ फरलांग
१०,०० कड़ी = १ फरलांग
८० जरीब = १ मील
८०,०० = १ मील
१ जरीब गंटरी = २२ गज
= ६६ फुट
= १० गठा
= १०० कड़ी
= ४ पोल

देशी पैमाना ।

३३ इंच = १ हिंदुस्तानी गज
११/१२ अंग्रेजी गज = १ हिंदुस्तानी गज
३ हिंदुस्तानी गज या २¾ अंग्रेजी गज = १ गट्ठा
१० गट्ठा या ६० हिंदुस्तानी गज या ५५ अंग्रेजी गज = १ जरीब
१ पोल = ६ हिंदुस्तानी गज = २ गट्ठा

क्षेत्रफल नापने का अंग्रेजी पैमाना ।

१४४ मु० इंच = १ मु० फुट
९ मु० फुट = १ मु० गज

$३०\frac{१}{४}$ मु० गज = १ मु० पोल

४० मु० पोल या १२१० मु० गज = १ मु० रोड

४ मु० रोड या ४८४० मु० गज = १ मु० एकड़

६४० मु० एकड़ = १ मु० मील

१०,००० मु० कड़ी या

४८४ मु० गज = १ मु० जरीब

१० मु० जरीब = १ मु० एकड़

१००००० मु० कड़ी = १ मु० एकड़

देशी पैमाने ।

२० तिनवांसी = १ अनवांसी

२० अनवांसी = १ कचवांसी

२० कचवांसी = १ बिसवांसी

१ बिसवांसी = १ बिसवा ।

२० बिसवा = १ बीघा

२० बिसवा या ३०२५ मु० गज = $१\frac{५}{८}$ एकड़ = १ बीघा

एक एकड़ = ३२ बिसवा

१ बीघा १० बिस्वा १७ धुर = १ एकड़

देशी पैमाना ।

एक जरीब लंबा × १ जरीब = १ बीघा

जरीब × गट्ठा = बिसवा

गट्ठा × गट्ठा = बिसवांसी

कदम × कदम = कच्ची बिसवांसी

जरीबें तीन किस्म की होती हैं—

(१) गंटरी

(२) सरवेरी या वर्कमेस्टरी

(३) शाहजहानी या हिंदुस्तानी

१ गंटरी जरीब = २२ गज अंग्रेजी

१ सरवेरी जरीब = ३३⅓ गज अंग्रेजी

१ शाहजहानी या हिंदुस्तानी जरीब = ५५ गज अंग्रेजी

५५ × ५५ गज अंग्रेजी = १ बीघा

६० गज हिंदुस्तानी × ६० गज हिंदुस्तानी = १ बीघा

= ३०२५ मु० गज अंग्रेजी

मील	फरलांग	पोल	गज	फुट	इंच
१ =	८ =	३२० =	१७६० =	५२८० =	६३३६०
	१ =	४० =	२२० =	६६० =	७९२०
		१ =	५½ =	१६½ =	१९८
			१ =	३ =	३६
				१ =	१

१ पोल = २५ कड़ी

Printed by G. K. Gurjar. at Shri Lakshmi Narayan
Press, Jatanbei, Benares City.

मनोरंजन पुस्तकमाला।

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल।

(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।

(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।

(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा।

(५) ,, २ ,, ,,

(६) ,, ३ ,, ,,

(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।

(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा।

(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकीराम दूबे बी०ए०

(१०) भौतिक विज्ञान—ले० संपूर्णानंद बी. एस-सी., एल-टी०

(११) लालचीन—लेखक वृजनंदन सहाय।

(१२) कबीरबचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय।

(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी.ए.

(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा।

(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा।

(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमार देव शर्म्मा।

(१७) वीरमणि—लेखक श्यामबिहारी मिश्र एम० ए०
शुकदेव बिहारी मिश्र बी. ए.।

(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी।

(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार।

(२०) हिंदुस्तान, पहला खंड—ले० दयाचंद्र गोयलीय बी० ए०

(२१) ,, दूसरा खंड— ,, ,,

(२२) महर्षि सुकरात—लेखक वेणीप्रसाद।

(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी., एल-टी.

(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामबिहारी मिश्र एम. ए.
और शुकदेवबिहारी मिश्र बी. ए.।

(२५) सुंदरसार—संग्रहकर्ता हरिनारायण पुरोहित बी. ए.।

(२६) जर्मनी का विकास, पहला भाग—लेखक सूर्यकुमार
वर्म्मा।

(२७) ,, ,, दूसरा भाग ,, ,,

(२८) कृषि-कौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसाद सिंह एल. ए-जी।